श्री साई सच्चरित्र

(हिन्दी)

(श्री साईबाबा की अद्‌भुत जीवनी तथा उनके अमूल्य उपदेश)

मूल ग्रन्थ (मराठी भाषा) के रचयिता

कै. श्री. गोविन्दराव रघुनाथ दाभोलकर (हेमाडपन्त)

हिन्दी अनुवादक

श्री. शिवराम ठाकुर

विशेष सहाय्य

प्रो. आद्याप्रसाद त्रिपाठी

श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था, शिर्डी

श्री साई सत्चरित्र (हिंदी)

प्रकाशक :
अध्यक्ष,
श्री साईबाबा संस्थान विश्वस्तव्यवस्था, शिर्डी
ता. राहाता, जि. अहमदनगर.

मुंबई कार्यालय :
साईनिकेतन,
८०४-बी, डॉ. आंबेडकर रोड,
दादर, मुंबई - ४०० ०१४.

२० वाँ संस्करण : सन २०१४

प्रतियाँ : १,००,०००

मूल्य : रु. ३०.००

मुद्रक :

It gives me immense joy to present this edition of Shri Sai Satcharitra to all the Sai devotees.

Sadguru's word and teachings are pearls of wisdom.

Why should language Deprive devotees and seekeres from tasting the nectar of the sayings and leelas of Saibaba? And this is what inspiered the Translator of this book Shri. Shivram Thakur, translate Sri Sai Satcharita in Hindi.

I am sure the readers will be filled with joy on reading the teaching and glory of Sai Baba's life.

May Baba bless you all !

श्री साई सच्चरित्र

विषय सूची

।। ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः।।

श्री साई सच्चरित्र

अध्याय-१

वंदना, गेहूँ पीसने वाला एक अद्‌भुत सन्त, गेहूँ पीसने की कथा तथा उसका तात्पर्य ।

पुरातन पद्धति के अनुसार श्री हेमाडपंत श्री साई सच्चरित्र का आरम्भ वन्दना द्वारा करते है ।

(१) प्रथम श्री गणेश को साष्टांग नमन करते है, जो कार्य को निर्विघ्न समाप्त कर उसको यशस्वी बनाते है और कहते हैं कि श्री साई ही गणपति हैं ।

(२) फिर भगवती सरस्वती को, जिन्होंने काव्य रचने की प्रेरणा दी और कहते हैं कि श्री साई भगवती से भिन्न नहीं हैं, जो कि स्वयं ही अपना जीवन संगीत बयान कर रहे हैं।

(३) फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जो क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्ता हैं और कहते हैं कि श्री साई और वे अभिन्न हैं । वे स्वयं ही गुरु बनकर भवसागर से पार उतार देंगे ।

(४) फिर अपने कुलदेवता श्री नारायण आदिनाथ की वन्दना करते है, जो कि कोंकण में प्रगट हुए । कोंकण वह भूमि है, जिसे श्री परशुरामजी ने समुद्र से निकालकर स्थापित किया था । तत्पश्चात् वे अपने कुल के आदिपुरुषों को नमन करते हैं ।

(५) फिर श्री भारद्वाज मुनि को, जिनके गोत्र में उनका जन्म हुआ । पश्चात् उन ऋषियों को जैसे-याज्ञवल्क्य, भृगु, पाराशर, नारद, वेदव्यास, सनक-सनंदन, सनत्कुमार, शुक, शौनक, विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव, जैमिनी, वैशंपायन, नवयोगिंद्र, इत्यादि तथा आधुनिक सन्त जैसे - निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई, जनार्दन, एकनाथ, नामदेव,

तुकाराम, कान्हा, नरहरि आदि को नमन करते हैं ।

(६) फिर अपने पितामह सदाशिव, पिता रघुनाथ और माता को, जो उनके बचपन में ही गत हो गई थीं । फिर अपनी चाची को, जिन्होंने उनका भरण-पोषण किया और अपने प्रिय भ्राता को नमन करते हैं ।

(७) फिर पाठकों को नमन करते है, जिनसे उनकी प्रार्थना है कि वे एकाग्रचित्त होकर कथामृत का पान करें ।

(८) अन्त में श्री सच्चिदानंद सद्‌गुरु श्री साईनाथ महाराज को, जो कि श्री दत्तात्रेय के अवतार और उनके आश्रयदाता है और जो ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' का बोध करा कर समस्त प्राणियों में एक ही ब्रह्म की व्याप्ति की अनुभूति कराते है ।

सर्व श्री पाराशर, व्यास और शांडिल्य आदि के समान भक्ति के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कर अब ग्रंथकार महोदय निम्नलिखित कथा प्रारंभ करते हैं ।

गेहूँ पीसने की कथा

''सन १९१० में मैं एक दिन प्रातःकाल श्री साईबाबा के दर्शनार्थ मस्जिद में गया । वहाँ का विचित्र दृश्य देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि साईबाबा मुँह हाथ धोने के पश्चात् चक्की पीसने की तैयारी करने लगे । उन्होंने फर्श पर एक टाट का टुकड़ा बिछा, उस पर हाथ से पीसने वाली चक्की रखी । उन्होंने कुछ गेहूँ डालकर पीसना आरम्भ कर दिया ।''

मैं सोचने लगा कि बाबा के चक्की पीसने से क्या लाभ है ? उनके पास तो कोई है भी नहीं, और वे अपना निर्वाह भी भिक्षावृत्ति द्वारा ही करते है । इस घटना के समय वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों की भी ऐसी ही धारणा थी । परंतु उनसे पूछने का साहस किसे था । ? बाबा के चक्की पीसने का समाचार शीघ्र ही सारे गाँव में फैल गया और उनकी यह विचित्र लीला देखने हेतु तत्काल ही नर-नारियों की भीड़ मस्जिद की ओर दौड़ पड़ी ।

उनमें से चार निडर स्त्रियाँ भीड़ को चीरती हुई उपर आईं और बाबा को

बलपूर्वक वहाँ से हटाकर उनके हाथ से चक्की का खुँटा छीनकर तथा उनकी लीलाओं का गायन करते हुये उन्होंने गेहूँ पीसना प्रारम्भ कर दिया ।

पहले तो बाबा क्रोधित हुए, परन्तु फिर उनका भक्तिभाव देख वे शान्त होकर मुस्कराने लगे । पीसते – पीसते उन स्त्रियों के मन में ऐसा विचार आया कि बाबा के न तो घरद्वार हैं और न इनके कोई बाल-बच्चें हैं तथा न कोई देखरेख करने वाला ही हैं । वे स्वयं भिक्षावृत्ति द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं, अतः उन्हें भोजनादि के लिये आटे की आवश्यकता ही क्या हैं ? बाबा तो परम दयालु हैं । हो सकता है कि यह आटा वे हम सब लोगों मे ही वितरण कर दें । इन्हीं विचारों में मग्न रहकर गीत गाते-गाते ही उन्होंने सारा आटा पीस डाला । तब उन्होंने चक्की को हटाकर आटे का चार समान भागों में विभक्त कर लिया और अपना-अपना भाग लेकर वहाँ से जाने उद्यत हुईं । अभी तक शान्त मुद्रा में निमग्न बाबा तत्क्षण ही क्रोधित हो उठे और उन्हें अपशब्द कहने लगे – ''स्त्रियों ! क्या तुम पागल हो गई हो ? तुम किसके बाप का माल हड़पकर ले जा रही हो ? क्या कोई कर्ज़दार का माल है, जो इतनी आसानी से उठाकर लिये जा रही हो ? अच्छा, अब एक काम करो कि इस आटे को ले जाकर गाँव की मेंड़ (सीमा) पर बिखेर आओ ।''

मैंने शिरडीवासियों से प्रश्न किया कि जो कुछ बाबा ने अभी किया है, उसका यथार्थ में क्या तात्पर्य हैं ? उन्होंने मुझे बतलाया कि गाँव में विषूचिका (हैजा) का जोरों से प्रकोप हैं और उसके निवारणार्थ ही बाबा का यह उपचार है । अभी जो कुछ आपने पीसते देखा था, वह गेहूँ नहीं, वरन् विषूचिका (हैजा) थी, जो पीसकर नष्ट कर दी गई हैं । इस घटना के पश्चात् सचमुच विषूचिका की संक्रामकता शांत हो गई और ग्रामवासी सुखी हो गए ।

यह जानकर मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा । मेरा कौतुहल जागृत हो गया । मैं स्वयं से प्रश्न करने लगा कि आटे और विषूचिका (हैजा) रोग का भौतिक तथा पारस्परिक क्या सम्बध है ? इसका सुत्र कैसे ज्ञात हो ? घटना बुद्धिगम्य सी प्रतीत नहीं होती । अपने हृदय की सन्तुष्टि के हेतु इस मधुर लीला का मुझे चार शब्दों में महत्त्व अवश्य प्रकट करना चाहिए । लीला पर

चिन्तन करते हुये मेरा हृदय प्रफुल्लीत हो उठा और इस प्रकार बाबा का जीवन-चरित्र लिखने के लिये मुझे प्रेरणा मिली। यह तो सब लोगों को विदित ही है कि यह कार्य बाबा की कृपा और शुभ आशिर्वाद से सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

आटा पिसने का तात्पर्य

शिरडीवासियों ने इस आटा पीसने की घटना का जो अर्थ लगाया, वह तो प्रायः ठीक ही है, परन्तु उसके अतिरिक्त मेरे विचार से कोई अन्य अर्थ भी है। बाबा शिरडी में ६० वर्षों तक रहे और इस दीर्घ काल में उन्होंने आटा पीसने का कार्य प्रायः प्रतिदिन ही किया। पीसने का अभिप्राय गेहूँ से नहीं, वरन् अपने भक्तों के पापों, दुर्भाग्यों, मानसिक तथा शारीरिक तापों से था। उनकी चक्की के दो पाटों में ऊपर का पाट भक्ति तथा नीचे का कर्म था। चक्की की मुठिया जिसे पकड़कर वे पीसते थे, वह था ज्ञान। बाबा का दृढ विश्वास था कि जब तक मनुष्य के हृदय से प्रवृत्तियाँ, आसक्ति, घृणा तथा अहंकार नष्ट नहीं हो जाते, जिनका नष्ट होना अत्यन्त दुष्कर है, तब तक ज्ञान तथा आत्मानुभूति संभव नहीं है।

यह घटना कबीरदास जी की इसके तदनुरूप घटना की स्मृति दिलाती है। कबीरदास जी एक स्त्री को अनाज पीसते देखकर अपने गुरु निपटनिरंजन से कहने लगे कि मैं इसलिये रुदन कर रहा हूँ कि जिस प्रकार अनाज चक्की में पीसा जाता है, उसी प्रकार मैं भी भवसागर रूपी चक्की में पीसे जाने की यातना का अनुभव कर रहा हूँ।[१] उनके गुरु ने उत्तर दिया कि घबराओ नहीं, **चक्की के केन्द्र में जो ज्ञान रूपी दंड है, असी को दृढता से पकड़ लो, जिस प्रकार तुम मुझे करते देख रहे हो। उससे दूर मत जाओ, बस, केन्द्र की ओर ही अग्रेसर होते जाओ और तब यह निश्चित है कि तुम इस भवसागर रूपी चक्की से अवश्य ही बच जाओगे।**

।। श्री सद्गुरु साईनाथर्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

---

१. चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।
दो पाटों के बीच में, साबत बचा न कोय ।। - कबीर

अध्याय-२

ग्रन्थ लेखन का ध्येय, कार्यारम्भ में असमर्थता और साहस, गरमागरम बहस, अर्थपूर्ण उपाधि 'हेमाडपन्त', गुरु की आवश्यकता ।

गत अध्याय में ग्रन्थकार ने अपने मौलिक ग्रन्थ श्री साई सच्चरित्र (मराठी भाषा) में उन कारणों पर प्रकाश डाला था, जिनके द्वारा उन्हें ग्रंथ रचना के कार्य को आरंभ करने की प्रेरणा मिली । अब वे ग्रन्थ पठन के योग्य अधिकारियों तथा अन्य विषयों का इस अध्याय में विवेचन करते है ।

ग्रंथ लेखन का हेतु

किस प्रकार विषूचिका (हैजा) के रोग के प्रकोप को आटा पिसवाकर तथा उसको ग्राम के बाहर फेंकवा कर रोका तथा उसका उन्मूलन किया, बाबा की इस लिला का प्रथम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है । मैंने और भी लीलाएँ सुनीं, जिूसे मेरे ह्रदय को अति आनंद हुआ और यही आनंद का स्त्रोत काव्य रुप में प्रकट हुआ । मैंने यह भी सोचा कि इन महान् आश्चर्यजनक लीलाओं का वर्णन बाबा के भक्तों के लिये मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद सिद्ध होगा तथा उनके पाप समूल नष्ट हो जाएँगे । इसलिये मैंने बाबा की पवित्र जीवन गाथा और उनके मधुर उपदेशों का लेखन प्रारम्भ कर दिया । श्री साई की जीवनी न तो उलझनपूर्ण है और न संकीर्ण ही, वरन् सत्य और आध्यात्मिक मार्ग का वास्तविक दिग्दर्शन कराती है ।

कार्य आरम्भ करने में असमर्थता और साहस

श्री हेमाडपन्त को यह विचार आया कि मैं इस कार्य के लिये उपयुक्त पात्र नहीं हूँ। मैं तो अपने परम मित्र की जीवनी से भी भली-भाँति परिचित नहीं हूँ और न ही अपनी प्रकृति से । तब फिर मुझ

सरिखा मूढमति भला एक महान् संतपुरुष की जीवनी लिखने का दुस्साहस कैसे कर सकता है ? अवतारों की प्रवृत्ति के वर्णन में वेद भी अपनी असमर्थता प्रगट करते है । किसी सन्त का चरित्र समझने के लिये स्वयं को पहले सन्त होना नितातं आवश्यक है । फिर मैं तो उनका गुणगान करने के सर्वथा अयोग्य ही हूँ । संत की जीवनी लिखने में एक महान् साहस की आवश्यकता है और कहीं ऐसा न हो कि चार लोगों के समक्ष हास्य का पात्र बनना पड़े, इसलिये श्री साई बाबा की कृपा प्राप्त करने के लिये मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा ।

महाराष्ट्र के संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है कि संतचरित्र के रचयिता से परमात्मा अति प्रसन्न होता हैं । तुलसीदासजी ने भी कहा है कि - ''साधुचरित शुभ से सरिस कपासू । निरस विषद गुणमय फल जासू ।। जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा । वंदनीय जेहि जग जस पावा ।।'' भक्तों को भी संतों की सेवा करने की इच्छा बनी रहती है । संतों की कार्य पूर्ण करा लेने की प्रणाली भी विचित्र ही हैं । यथार्थ प्रेरणा तो संत ही किया करते हैं, भक्त ता निमित्त मात्र, या कहिये कि कार्यपूर्ति के लिये एम यंत्र मात्र है । उदाहरणार्थ शक सं. १७०० में कवि महीपति को संत-चरित्र लेखन की प्रेरणा हुई । ईश्वर ने सन्तों में अंतःप्रेरणा पैदा की और कार्य पूर्ण हो गया । इसी प्रकार शक सं.१८०० में श्री दासगणु की सेवा स्वीकार हुई । महीपति ने चार काव्य रचे - भक्तविजय, संतविजय, भक्तलीलामृत और संतलीलामृत, और दासगणु ने केवल दो-भक्तलीलामृत और संतकथामृत-जिसमें आधुनिक संतों के चरित्रों का वर्णन है । भक्तलीलमृत के अध्याय ३१, ३२ और ३३ तथा संत कथामृत के ५७ वें अध्याय में श्री साईबाबा की मधुर जीवनी तथा अमूल्य उपदेशों का वर्णन सुन्दर एवं रोचक ढंग से किया गया है । इनका उद्धरण श्री साईलीला पत्रिका के अंक ११, १२ और १७ में दिया गया है। पाठकों से इनके पठन का अनुरोध है । इसी प्रकार श्री साईबाबा की अद्भूत लीलाओं का वर्णन एक बहुत सुन्दर छोटी सी पुस्तिका-श्री साईनाथ भजनमाला में किया गया है । इसकी रचना बान्द्रा की श्रीमती सावित्रीबाई रघुनाथ तेंदुलकर ने की है ।

श्री दासगणु महाराज ने भी श्री साईबाबा पर कई मधुर कविताओं की रचना की है। एक और भक्त अमीदास भवानी मेहता ने भी बाबा की कुछ कथाओं को गुजराती में प्रकाशित किया है । ' साई प्रभा ' नामक पत्रिका में भी कुछ लीलाएँ शिरडी के ' दक्षिणा भिक्षा संस्थान ' द्वारा प्रकाशित की गई है । अब प्रश्न यह उठता है कि जब श्री साईनाथ महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाला इतना साहित्य उपलब्ध है, फिर और एक ग्रन्थ ' साई सच्चरित्र ' रचने की आवश्यकता ही कहाँ पैदा होती है ? इसका उत्तर केवल यही है कि श्री साईबाबा की जीवनी सागर के सदृश अगाध, विस्तृत और अथाह है । यदि उसमें गहरे गोते लगाये जाएँ तो ज्ञान एवं भक्ति रूपी अमूल्य रत्नों की सहज ही प्राप्ति हो सकती है, जिसे मुमुक्षुओं का बहुत लाभ होगा । श्री साईबाबा की जीवनी, उनके दृष्टान्त एवं उपदेश महान् आश्चर्य से परिपूर्ण हैं । दुःख और दुर्भाग्यग्रस्त मानवों को इनसे शान्ति और सुख प्राप्त होगा तथा लोक व परलोक में श्रेयस् की प्राप्ति होगी । यदि श्री साई बाबा के उपदेशों का, जो कि वैदिक शिक्षा के समान ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं, ध्यानपूर्वक श्रवण एवं मनन किया जाए तो भक्तों को अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाएगी, अर्थात् ब्रह्म से अभिन्नता, अष्टांग योग की सिद्धि और समाधि आनन्द आदि की प्राप्ति सरलता से हो जाएगी । यह सोचकर ही मैंने चरित्र की कथाओं को संकलित करना प्रारंभ कर दिया । साथ ही यह विचार भी आया कि मेरे लिये सबसे उत्तम साधना भी केवल यही है । जो भोले-भाले प्राणी श्री साईबाबा के दर्शनों से अपने नेत्र सफल करने के सौभाग्य से वंचित रहे हैं, उन्हें यह चरित्र अति आनन्ददायक प्रतीत होगा । अतः मैंने भी अपना अहंकार उनके श्री-चरणों पर न्योछावर कर दिया । मैंने सोचा कि अब मेरा पथ अति सुगम हो गया है और बाबा मुझे इहलोक और परलोक में सुखी बना देंगे ।

मैं स्वयं बाबा की आज्ञा प्राप्त करने का साहस नहीं कर सकता था । अतः मैंने श्री माधवराव उपनाम शामा से, जो कि बाबा के अंतरंग भक्तों में से थे, इस हेतु प्रार्थना की । उन्होंने इस कार्य के निमित्त श्री साईबाबा से विनम्र शब्दों में इस प्रकार प्रार्थना की, ''ये अण्णासाहेब आपकी जीवनी लिखने के

लिये अति उत्सुक हैं । परन्तु आप कृपया ऐसा न कहना कि मैं तो एक फकीर हूँ तथा मेरी जीवनी लिखने की आवश्यकता ही क्या हैं ? आपकी केवल कृपा और अनुमति से ही ये लिख सकेंगे, अथवा आपके श्री-चरणों का पुण्यप्रताप ही इस कार्य को सफल बना देगा । आपकी अनुमति तथा आशीर्वाद के अभाव में कोई भी कार्य यशस्वी नहीं हो सकता।'' यह प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई । उन्होंने आश्वासन और उदी देकर अपना वरद-हस्त मेरे मस्तक पर रखा, और कहने लगे कि ''इन्हें जीवनी और दृष्टान्तों को एकत्रित कर लिपिबद्ध करने दो, मैं इनकी सहायता करूँगा । **मैं स्वयं ही अपनी जीवनी लिखकर भक्तों की इच्छा पूर्ण करूँगा ।** परन्तु इनको अपना अहं त्यागकर मेरी शरण में आना चाहिए । जो अपने जीवन में इस प्रकार आचरण करतो है, उसकी मैं अत्यधिक सहायता करता हूँ । मेरी जीवन-कथाओं की बात तो सहज है, मैं तो इन्हें घर बैठे अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाता हूँ । जब इनका अहं पूर्णतः नष्ट हो जाएगा और खोजने पर लेशमात्र भी न मिलेगा, तब **मैं इनके अन्तःकरण में प्रगट होकर स्वयं ही अपनी जीवनी लिखूँगा । मेरे चरित्र और उपदेशों के श्रवण मात्र से ही भक्तों के हृदय में श्रद्धा जागृत होकर सरलतापूर्वक आत्मानुभूति एवं परमानंद की प्राप्ति हो जाएगी ।** ग्रन्थ में अपने मत का प्रतिपादन और दूसरों का खंडन तथा अन्य किसी विषय के पक्ष या विपक्ष में व्यर्थ के वादविवाद की कुचेष्टा नहीं होनी चाहिए ।''

अर्थपूर्ण उपाधि 'हेमाडपंत'

'वादविवाद' शब्द से हमको स्मरण हो आया कि मैंने पाठकों को वचन दिया हैं कि 'हेमाडपंत' उपाधि किस प्रकार प्राप्त हुई, इसका वर्णन करूँगा । अब मैं उसका वर्णन करता हूँ।

श्री काकासाहेब दीक्षित व नानासाहेब चाँदोरकर मेरे अतिघनिष्ठ मित्रों में से थे । उन्होंने मुझसे शिरडी जाकर श्री साईबाबा के दर्शनों लाभ उठाने का अनुरोध किया । मैंने उन्हें वचन दिया, परन्तु कुछ बाधा आ जाने के कारण मेरी शिरडी-यात्रा स्थगित हो गई । मेरे एक घनिष्ठ मित्र का पुत्र लोनावला में

रोगग्रस्त हो गया था । उन्होंने सभी सम्भव आधिभौतिक और आध्यात्मिक उपचार किये, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल हुए और ज्वर किसी प्रकार भी कम न हुआ । यह घटना देखकर मुझे विचार आया कि जब गुरु एक बालक के प्राणों की भी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तब उनकी उपयोगिता ही क्या है ? और जब उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं, तब फिर शिरडी जाने से क्या प्रयोजन ? ऐसा सोचकर मैंने यात्रा स्थगित कर दी । परन्तु जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा और वह इस प्रकार हुआ । प्रातांधिकारी नानासाहेब चाँदोरकर बसई के दौरे पर जा रहे थे । वे ठाणा से दादर पहुँचे तथा बसई जाने वाली गाड़ी की प्रतिक्षा कर रहे थे । उसी समय बांद्रा लोकल आ पहुँची, जिसमें बैठकर वे बांद्रा पहुँचे तथा शिरडीयात्रा स्थगित करने के लिये मुझे आड़े हाथों लिया । नानासाहेब का तर्क मुझे उचित तथा सुखदायी प्रतीत हुआ और इसके फलस्वरूप मैंने उसी रात्रि शिरडी जाने का निश्चय किया और सामान बाँधकर शिरडी को प्रस्थान कर दिया । मैने सीधे दादर जाकर वहाँ से मनमाड की गाड़ी पकड़ने का कार्यक्रम बनाया । इस निश्चय के अनुसार मैंने दादर जाने वाली गाड़ी के डिब्बे में प्रवेश किया । गाड़ी छूटने ही वाली थी कि इतने में एक यवन मेरे डिब्बे में आया और मेरा सामान देखकर मुझसे मेरा गन्तव्य स्थान पूछने लगा । मैंने अपना कार्यक्रम उसे बतला दिया । उसने मुझसे कहा कि मनमाड की गाड़ी दादर पर खड़ी नहीं होती, इसलिये सीधे बोरीबन्दर से होकर जाओ । यदि यह एक साधारण सी घटना घटित न हुई होती तो मैं अपने कार्यक्रम के अूसार दूसरे दिन शिरडी न पहुँच सकने के कारण अनेक प्रकार की शंका-कुशंकाओं से घिर जाता । परन्तु ऐसा घटना न था । भाग्य ने साथ दिया और दूसरे दिन ९-१० बजे के पूर्व ही मैं शिरडी पहुँच गया । यह सन् १९१० की बात है, जब प्रवासी भक्तों के ठहरने के लिये साठेवाड़ा ही एकमात्र स्थान था । ताँगे से उतरने पर मैं साईबाबा के दर्शन के लिये बड़ा लालायित था । उसी समय भक्त प्रवर श्री तात्यासाहेब नूलकर मस्जिद से लौटे ही थे । उन्होंने बतलाया कि इस समय श्री साईबाबा मस्जिद के मोड़ पर ही है । अभी केवल उनका

प्रारम्भिक दर्शन ही कर लो और फिर स्नानादि से निवृत्त होने के पश्चात् सुविधा से भेंट करने जाना । यह सुनते ही मैं दौड़कर गया और बाबा की चरणवन्दना की । मेरी प्रसन्नता का परावार न रहा । मुझे क्या नहीं मिल गया था ? मेरा शरीर उल्लसित सा हो गया । क्षुधा और तृषा की सुधि जाती रही । जिस क्षण से उनके भवविनाशक चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ, मेरे जीवन में एक नूतन आनन्द-प्रवाह बहने लगा । मैं उनका स्मरण कर उन्हें मानसिक प्रणाम किया करता हूँ । जैसा कि मेरे अनुभव में आया कि साई के दर्शन में ही यह विशेषता है कि विचार परिवर्तन सांसारिक भोगों से वैराग्य बढ़ता जाता है । केवल गत जन्मों के अनेक शुभ संस्कार एकत्रित होने पर ही ऐसा दर्शन प्राप्त होना सुलभ हो सकतो है । पाठकों, मैं आपसे शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि आप श्री साईबाबा को एक दृष्टि भरकर देख लेंगे तो आपको सम्पूर्ण विश्व ही साईमय दिखलाई पड़ेगा ।

गरमागरम बहस

शिरडी पहुँचने के प्रथम दिन ही बालासाहेब तथा मेरे बीच गुरु की आवश्यकता पर वादविवाद छिड़ गया । मेरा मत था कि स्वतंत्रता त्यागकर पराधीन क्यों होना तथा जब कर्म करना पड़ता है, तब गुरु की आवश्यकता ही कहाँ रही ? प्रत्येक को पूर्ण प्रयत्न कर स्वयं को आगे बढ़ाना चाहिए । गुरु शिष्य के लिय करता ही क्या है ? वह तो सुख से निद्रा का आनंद लेता है । इस प्रकार मैंने स्वतंत्रता का पक्ष लिया और बालासाहेब ने प्रारब्ध का । उन्होंने कहा कि जो विधि-लिखित है, वह घटित हो कर रहेगा, इसमें उच्च कोटि के महापुरुष भी असफल हो गए हैं । कहावत है – ' मेरे मन कछु और है, विधाता के कछु और ।' फिर परामर्शयुक्त शब्दों में बोले, 'भाई साहेब, यह निरी विद्वत्ता छोड़ दो । यह अहंकार तुम्हारी कुछ भी सहायता न कर सकेगा ।' इस प्रकार दोनों पक्षों के खंडन-मंडन में लगभग एक घंटा व्यतीत हो गया और सदैव की भाँति कोई निष्कर्ष न निकल सका । इसलिये तंग और विवश होकर विवाद स्थगित करना पड़ा । इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी मानसिक

शांति भंग हो गई तथा मुझे अनुभव हुआ कि जब तक घोर दैहिक बुद्धि और अहंकार न हो, तब तक विवाद संभव नहीं। वस्तुतः यह अहंकार ही विवाद की जड़ है।

जब अन्य लोगों के साथ मैं मस्जिद गया, तब बाबा ने काकासाहेब को संबोधित कर प्रश्न किया कि साठेवाड़ा में क्या चल रहा था ? किस विषय में विवाद था ? फिर मेरी ओर दृष्टिपात कर बोले कि इन 'हेमाडपन्त' ने क्या कहा। ये शब्द सुनकर मुझे अधिक अचम्भा हुआ। साठेवाड़ा और मस्जिद में पर्याप्त अन्तर था। सर्वज्ञ या अन्तर्यामी हुए बिना बाबा को विवाद का ज्ञान कैसे हो सकता था ?

मै सोचने लगा कि बाबा 'हेमाडपंत' के नाम से मुझे क्यों सम्बोधित करते हैं ? यह शब्द तो 'हेमाद्रिपंत' का अपभ्रंश है। 'हेमाद्रिपंत' देवगिरी के यादव राजवंशी महाराजा महादेव और रामदेव के विख्शात मंत्री थे। वे उच्च कोटि के विद्वान्, उत्तम प्रकृति और 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' (जिसमें आध्यात्मिक विषयों का विवेचन है) और 'राजप्रशस्ति' जैसे उत्तम काव्यों के रचयिता थे। उन्होंने ही हिसाब-किताब रखने की नवीन प्रणाली का आविष्कार किया था और बहीखाते की पद्धति को जन्म दिया था, और कहाँ मैं इसके विपरीत एक अज्ञानी, मूर्ख और मंदमति हूँ। अतः मेरी समझ में यह न आ सका कि मुझे इस विशेष उपाधि से विभूषित करने का क्या तात्पर्य है ? गहन विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहूँचा कि कहीं मेरे अहंकार को चूर्ण करने के लिये ही तो बाबा ने इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है, ताकि मैं भविष्य में सदैव के लिए निरभिमानी एवं विनम्र हो जाऊँ, अथवा कहीं यह मेरे वाक्चातुर्य के उपलक्ष में मेरी प्रशंसा तो नहीं है?

भविष्य पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि बाबा के द्वारा 'हेमाडपंत' की उपाधि से विभूषित करना कितना अर्थपूर्ण और भविष्यगोचर था। सर्वविदित है कि कालान्तर में दाभोलकर ने श्री साईबाबा संस्थान का प्रबन्ध कितने सुचारु एवं विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था। हिसाब-किताब आदि

कितने उत्तम प्रकार से रखे तथा साथ ही साथ महाकाव्य 'साई सच्चरित्र' की रचना भी की । इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण और आध्यत्मिक विषयों जैसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, शरणागति व आत्मनिवेदन आदि का समावेश है ।

गुरु की आवश्यकता

इस विषय में बाबा ने क्या उद्‌गार प्रकट किये, इस पर हेमाडपंत द्वारा लिखित कोई लेख या स्मृतिपत्र प्राप्त नहीं है । परन्तु काकासाहेब दीक्षित ने इस विषय पर उनके लेख प्रकाशित किये हैं । बाबा से भेंट करने के दूसरे दिन 'हेमाडपंत' और काकासाहेब ने मस्जिद में जाकर घर लौटने की अनुमति माँगी । बाबा ने स्वीकृति दे दी ।

किसी ने प्रश्न किया – 'बाबा कहाँ जाएँ ।'

उत्तर मिला – 'उपर जाओ ।'

प्रश्न – 'मार्ग कैसा है ?'

बाबा – अनेक पंथ है । यहाँ से भी एक मार्ग है । परन्तु यह मार्ग दुर्गम है तथा सिंह और भेड़िये भी मिलते है ।

काकासाहेब – यदि पथ प्रदर्शक भी साथ हो तो ?

बाबा – तब कोई कष्ट न होगा । पथ-प्रदर्शक तुम्हारी सिंह, भेड़िये और खन्दकों से रक्षा कर तुम्हें सीधे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा । परन्तु उसके अभाव में जंगल में मार्ग भूलने या गड्ढे में गिर जाने की संभावना है । दाभोलकर भी उपर्युक्त प्रसंग के अवसर पर वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने सोचा कि जो कुछ बाबा कह रहे हैं, वह 'गुरु की आवश्यकता क्यों है ?' इस प्रश्न का उत्तर है (साईलीला भाग १, संख्या ५ व पृष्ठ ४७ के अनुसार)। उन्होंने सदा के लिये मन में यह गाँठ बाँध ली कि अब कभी इस विषय पर वादविवाद नही करेंगे कि स्वतंत्र या परतंत्र व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के लिये कैसा सिद्ध होगा ? प्रत्युत्त् इसके विपरीत यथार्थ में परमार्थ-लाभ केवल गुरु के उपदेश-पालन में ही निहित है । इन उपदेशों का वर्णन मूल काव्य-ग्रंथ के

इसी हुए भी आत्मानुभूति के लिये राम को अपने गुरु वसिष्ठ और कृष्ण को अपने गुरु संदीपनि की शरण में जाना पड़ा था। इस मार्ग में उन्नति प्राप्त करने के लिये केवल श्रद्धा और धैर्य – ये ही दो गुण सहायक हैं।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३
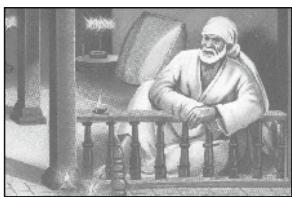
श्री साईबाबा की स्वीकृति, आज्ञा और प्रतिज्ञा भक्तों को कार्य-समर्पण, बाबा की लीलाएँ ज्योतिस्तंभ स्वरूप, मातृप्रेम, रोहिला की कथा, उनके मधुर अमृतोपदेश।

श्री साईबाबा की स्वीकृति और वचन देना

जैसा कि गत अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, बाबा ने सच्चरित्र लिखने की अनुमति देते हुए कहा कि सच्चरित्र लेखन के लिये मेरी पूर्ण अनुमति है। तुम अपना मन स्थिर कर, मेरे वचनों में श्रद्धा रखो और निर्भय होकर कर्तव्य पालन करते रहो यदि मेरी लीलाएँ लिखी गईं तो अविद्या का नाश होगा तथा ध्यान व भक्तिपूर्वक श्रवण करने से, दैहिक बुद्धी नष्ट होकर भक्ति और प्रेम की तीव्र लहर प्रवाहित होगी और जो इन लीलाओं की अधिक गहराई तक खोज करेगा, उसे ज्ञानरूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जाएगी।

इन वचनों को सुनकर हेमाडपंत को अति हर्ष हुआ और वे निर्भय हो गए। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि अब कार्य अवश्य ही सफल होगा।

बाबा ने शामा की ओर दृष्टिपात कर कहा - ''जो, प्रेमपूर्वक मेरा नामस्मरण करेगा, मैं उसकी समस्त इच्छायें पूर्ण कर दूँगा। उसकी भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। जो मेरे चरित्र और कृत्यों का श्रद्धापूर्वक गायन करेगा, उसकी मैं हर प्रकार से सदैव सहायता करूँगा। **जो भक्तगण हृदय और प्राणों से मुझे चाहते हैं, उन्हें मेरी कथाएँ श्रवण कर स्वभावतः प्रसन्नता होगी। विश्वास रखो कि जो कोई मेरी लीलाओं का कीर्तन करेगा, उसे परमानन्द और चिरसन्तोष की उपलब्धि हो जाएगी। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो कोई अनन्य भाव से मेरी शरण आता है, जो श्रद्धापूर्वक मेरा पूजन, निरन्तर स्मरण और मेरा ही ध्यान किया**

करता है, उसको मैं मुक्ति प्रदान कर देता हूँ ।''[1]

''जो नित्यप्रति मेरा नामस्मरण और पूजन कर मेरी कथाओं और लीलाओं का प्रेमपूर्वक मनन करते हैं, ऐसे भक्तों में सांसारिक वासनाएँ और अज्ञानरूपी प्रवृत्तियाँ कैसे ठहर सकती है ? मैं उन्हें मृत्यु के मुख से बचा लेता हूँ ।''

''मेरी कथाएँ श्रवण करने से मुक्ति हो जाएगी । अतः मेरी कथाओं को श्रद्धापूर्वक सुनो, मनन करो । सुख और सन्तोष-प्राप्ति का सरल मार्ग ही यही है । इससे श्रोताओं के चित्त को शांति प्राप्त होगी और जब ध्यान प्रगाढ़ और विश्वास दृढ़ हो जाएगा, तब अखंड चैतन्यघन से अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी । केवल 'साई' 'साई' के उच्चारणमात्र से ही उनके समस्त पाप नष्ट हो जाएँगे ।''

भिन्न-भिन्न कार्यों की भक्तों को प्रेरणा

भगवान अपने किसी भक्त को मन्दिर, मठ, किसी को नदी के तीर पर घाट बनवाने, किसी को तीर्थपर्यटन करने और किसी को भगवत् कीर्तन करने एवं भिन्न-भिन्न कार्य करने की प्रेरणा देते हैं । परन्तु उन्होंने मुझे ''साई-सच्चरित्र'' - लेखन की प्रेरणा की । किसी भी विद्या का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण मैं इस कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य था। अतः मुझे इस दुष्कर कार्य का दुस्साहस क्यों करना चाहिए ? श्री साई महाराज की यथार्थ जीवनी का वर्णन करने की सामर्थ्य किसे है ? उनकी कृपा मात्र से ही कार्य सम्पूर्ण होना सम्भव है । इसलिये जब मैंने लेखन प्रारम्भ किया तो बाबा ने मेरा अहं नष्ट कर दिया और उन्होंने स्वयं अपना चरित्र रचा । अतः इस चरित्र का श्रेय उन्हीं को है, मुझे नहीं । जन्मतः ब्राह्मण होते हुए भी मैं दिव्य चक्षु-विहीन था, अतः ''साई सच्चरित्र'' लिखने में सर्वथा अयोग्य था । परन्तु श्रीहरिकृपा से क्या सम्भव नहीं है? मूक भी वाचाल हो जाता है और पंगु भी गिरिवर चढ़ जाता है । अपनी

---

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। गीता ९ ।। २२ ।।

इच्छानुसार कार्य पूर्ण करने की युक्ति वे ही जानें। हारमोनियम और बंसी को यह आभास कहाँ कि ध्वनि कैसे प्रसारित हो रही है ? इसका ज्ञान तो वादक को ही है। चन्द्रकांतमणि की उत्पत्ति और ज्वार भाटे का रहस्य मणि अथवा उदधि नहीं, वरन् शशिकलाओं के घटने-बढ़ने में ही निहित है।

बाबा का चरित्र : ज्यातिस्तम्भ स्वरूप

समुद्र में अनेक स्थानों पर ज्योतिस्तम्भ इसलिये बनाये जाते हैं, जिससे नाविक चट्टानों और दुर्घटनाओं से बच जाएँ और जहाज को कोई हानि न पहुँचे। इस भवसागर में श्री साईबाबा का चरित्र ठीक उपर्युक्त भाँति ही उपयोगी है। वह अमृत से भी अति मधुर और सांसारिक पथ को सुगम बनाने वाला है। जब वह कानों के द्वारा हृदय में प्रवेश करता है, तब दैहिक बुद्धि नष्ट हो जाती है और हृदय में एकत्रित करने से समस्त कुशंकाएँ लोप हो जाती है। अहंकार का विनाश हो जाता है तथा बौद्धिक आवरण लुप्त होकर ज्ञान प्रगट हो जाता है। **बाबा की विशुद्ध कीर्ति का वर्णन निष्ठापूर्वक श्रवण करने से भक्तों के पाप नष्ट होंगे। अतः यह मोक्ष प्राप्ति का भी सरल साधन है।** सत्ययुग में शम तथा दम, त्रेता में त्याग, द्वापर में पूजन और कलियुग में भगवतकीर्तन ही मोक्ष का साधन है। यह अन्तिम साधन, चारों वर्णों के लोगों को साध्य भी है। अन्य साधन, योग, त्याग, ध्यान-धारणा आदि आचरण करने में कठिन हैं, परन्तु चरित्र तथा हरिकिर्तन का श्रवण तो अत्यंत ही सुलभ है। केवल उनपर ध्यान देने की ही आवश्यकता है। कथा-श्रवण और कीर्तन से इन्द्रियों की स्वाभाविक विषयासक्ति नष्ट हो जाती है और भक्त वासना-रहित होकर आत्मसाक्षात्कार की ओर अग्रेसर हो जाता है। इसी फल को प्रदान करने के हेतु उन्होंने सच्चरित्र की रचना करायी। भक्तगण अब सरलतापूर्वक चरित्र का अवलोकन करें और साथ ही उनके मनोहर स्वरूप का ध्यान कर, गुरु और भगवत्-भक्ति के अधिकारी बनें तथा निष्काम होकर आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त हों।''साई सच्चरित्र'' का सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होना, यह साई-महिमा ही समझें, हमें तो केवल एक निमित्त मात्र ही बनाया गया है।

मातृप्रेम

गाय का अपने बछड़े पर प्रेम सर्वविदित ही है । उसके स्तवन सदैव दुग्ध से पूर्ण रहते हैं और जब भूखा बछड़ा स्तन की ओर दौड़कर आता है तो दुग्ध की धारा स्वतः प्रवाहित होने लगती है। उसी प्रकार माता भी अपने बच्चे की आवश्यकता का पहले से ही ध्यान रखती है और ठीक समय पर स्तनपान कराती है । वह बालक का श्रृंगार उत्तम ढंग से करती है, परन्तु बालक को इसका कोई भान ही नहीं होता । बालक के सुन्दर श्रृंगारादि को देखकर माता के हर्ष का पारावार नहीं रहता । माता का प्रेम विचित्र, असाधारण और निःस्वार्थ है, जिसकी कोई उपमा नहीं है । ठीक इसी प्रकार सद्गुरु का प्रेम अपने शिष्य पर होता है । ऐसा ही प्रेम बाबा का मुझ पर था, उदाहरणार्थ वह निम्न प्रकार था :-

सन १९१६ में मैंने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया । जो पेन्शन मुझे मिलती थी, वह मेरे कुटुम्ब के निर्वाह के लिये अपर्याप्त थी । उसी वर्ष की गुरुपूर्णिमा के दिवस मैं अन्य भक्तों के साथ शिरडी गया । वहाँ अण्णा चिंचणीकर ने स्वतः ही मेरे लिये बाबा से इस प्रकार प्रार्थना की, ''इनपर कृपा करो । जो पेन्शन इन्हें मिलती है, वह निर्वाह-योग्य नहीं है । कुटुम्ब में वृद्धि हो रही है । कृपया और कोई नौकरी दिला दीजिये, ताकि इनकी चिन्ता दूर हो और ये सुखपूर्वक रहें ।'' बाबा ने उत्तर दिया कि ''इन्हें नौकरी मिल जाएगी, परन्तु अब इन्हें मेरी सेवा में ही आनन्द लेना चाहिए । इनकी इच्छाएँ सदैव पूर्ण होंगी, **इन्हें अपना ध्यान मेरी ओर आकर्षित कर, अधार्मिक तथा दुष्टजनों की संगति से दूर रहना चाहिए ।** इन्हें सबसे दया और नम्रता का बर्ताव और अंतःकरण से मेरी उपासना करनी चाहिए । यदि ये इस प्रकार आचरण कर सकें तो नित्यानन्द के अधिकारी हो जाएँगे ।''

रोहिला की कथा

यह कथा श्री साई बाबा के समस्त प्राणियों पर समान प्रेम की सूचक है । एक समय रोहिला जाति का एक मनुष्य शिरडी में आया । वह ऊँचा-पूरा,

सुदृढ़ एवं सुगठित शरीर का था । बाबा के प्रेम से मुग्ध होकर वह शिरडी में ही रहने लगा । वह आठों प्रहर अपनी उच्च और कर्कश आवाज़ में कुरान शरीफ़ के क़लमे पढ़ता और ''अल्लाहो अकबर'' के नारे लगाता था । शिरडी के अधिकांश लोग खेतों में दिन भर काम करने के पश्चात् जब रात्रि में घर लौटते तो रोहिला की कर्कश पुकारें उनका स्वागत करती थीं । इस कारण उन्हें रात्रि में विश्राम न मिलता था, जिससे वे अधिक कष्ट और असुविधा का अनुभव करने लगे । कई दिनों तक तो वे मौन रहे, परन्तु जब कष्ट असहनीय हो गया, तब उन्होंने बाबा के समीप जाकर रोहिला को मना कर इस उत्पात को रोकने की प्रार्थना की । बाबा ने उन लोगों की इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया । इसके विपरीत गाँववालो को आड़े हाथों लेते हुये बोले कि वे अपने कार्य पर ही ध्यान दें और रोहिला की ओर ध्यान न दें । बाबा ने उनसे कहा कि रोहिला की पत्नी बुरे स्वभाव की है और वह रोहिला को तथा मुझे अधिक कष्ट पहुँचाती है, परन्तु वह उसके क़लमों के समक्ष उपस्थित होने का साहस करने में असमर्थ है, और इसी कारण वह शांति और सुख में है । यथार्थ में रोहिला की कोई पत्नी न थी । बाबा का संकेत केवल कुविचारों की ओर था । अन्य विषयों की अपेक्षा बाबा प्रार्थना और ईश-आराधना को महत्त्व देते थे । अतः उन्होंने रोहिला के पक्ष का समर्थन कर, ग्रामवासियों को शांतिपूर्वक थोड़े समय तक उत्पात सहन करने का परामर्श दिया ।

बाबा के मधुर अमृतोपदेश

एक दिन दोपहर की आरती के पश्चात् भक्तगण अपने घरों को लौट रहे थे, तब बाबा ने निम्नलिखित अति सुन्दर उपदेश दिया :-

''तुम चाहे कहाँ भी रहो, जो इच्छा हो, सो करो, परन्तु यह सदैव स्मरण रखो कि जो कुछ तुम करते हो, वह सब मुझे ज्ञात है । **मैं ही समस्त प्राणियों का प्रभु और घट-घट में व्याप्त हूँ। मेरे ही उदर में समस्त जड़ व चेतन प्राणी समाये हुए है ।** मैं ही समस्त ब्रह्मांड का नियंत्रणकर्ता व संचालक हूँ । मैं ही उत्पत्ति, स्थिति व संहारकर्ता हूँ । मेरी भक्ति करने वालों को कोई

हानि नहीं पहुँचा सकता। मेरे ध्यान की उपेक्षा करनेवाला, माया के पाश में फँस जाता है। समस्त जन्तु, चींटियाँ तथा दृश्यमान, परिवर्तमान और स्थायी विश्व मेरे ही स्वरुप हैं।''

इस सुन्दर तथा अमूल्य उपदेश को श्रवण कर मैंने तुरन्त यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब भविष्य में अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी मानव की सेवा न करूँगा। ''तुझे नौकरी मिल जाएगी'' - बाबा के इन वचनों का विचार मेरे मस्तिष्क में बारबार चक्कर काटने लगा। मुझे विचार आने लगा, क्या सचमुच ऐसा घटित होगा? भविष्य की घटनाओं से स्पष्ट है कि बाबा के वचन सत्य निकले और मुझे अल्पकाल के लिये नौकरी मिल गई। इसके पश्चात् मैं स्वतंत्र होकर एकचित्त से जीवनपर्यन्त बाबा की ही सेवा करता रहा।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मेरी पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि वे समस्त बाधाएँ - जैसे आलस्य, निद्रा, मन की चंचलता व इन्द्रिय-आसक्ति दूर कर और एकचित्त हो अपना ध्यान बाबा की लीलाओं की ओर दें और स्वाभाविक प्रेम निर्माण कर भक्ति-रहस्य को जानें तथा अन्य साधनाओं में व्यर्थ श्रमित न हों। **उन्हें केवल एक सुगम उपाय का पालन करना चाहिए और वह है श्री साईलीलाओं का श्रवण।** इससे उनका अज्ञान नष्ट होकर मोक्ष का द्वार खुल जाएगा। जिस प्रकार अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए भी लोभी पुरुष अपने गड़े हुये धन के लिये सतत् चिन्तित रहता है, उसी प्रकार श्री साई को अपने हृदय में धारण करो। अगले अध्याय में श्री साईबाबा के शिरडी आगमन का वर्णन होगा।

।। श्री सद्गुरु साईनार्थार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

अध्याय-४
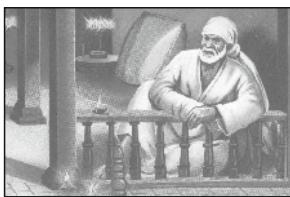
श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन, सन्तों का अवतार कार्य, पवित्र तीर्थ शिरडी, श्री साईबाबा का व्यक्तित्व, गौली बुवा का अनुभव, श्री विट्ठल का प्रगट होना, क्षीरसागर की कथा, दासगणु का प्रयाग - स्नान, श्री साईबाबा का शिरडी में प्रथम आगमन, तीन वाड़े ।

संतों का अवतार कार्य

भगवद्‌गीता (चौथा अध्याय ७-८) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ''जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ। धर्म-स्थापन, दुष्टों का विनाश तथा साधुजनों के परित्राण के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।'' साधु और संत भगवान के प्रतिनिधिस्वरूप हैं । वे उपयुक्त समय पर प्रगट होकर अपनी कार्यप्रणाली द्वारा अपना अवतार-कार्य पूर्ण करते हैं । अर्थात् जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं, जब शूद्र उच्च जातियों के अधिकार छीनने लगते हैं, जब धर्म के आचार्यों का अनादर तथा निंदा होने लगती है, जब लोग निषिद्ध भोज्य पदार्थों और मदिरा आदि का सेवन करने लगते हैं, जब धर्म आड़ में निंदित कार्य होने लगते हैं, जब भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी परस्पर लड़ने लगते हैं, जब ब्राह्मण संध्यादि कर्म छोड़ देते हैं, कर्मठ पुरुषों को धार्मिक कृत्यों में अरुचि उत्पन्न हो जाती हैं, जब योगी ध्यानादि कर्म करना छोड़ देते हैं और जब जनसाधारण की ऐसी धारणा हो जाती है कि केवल **धन, संतान और स्त्री ही सर्वस्व है तथा इस प्रकार जब लोग सत्य-मार्ग से विचलित होकर अधः पतन की ओर अग्रेसर होने लगते हैं, तब संत प्रगट होकर अपने उपदेशों एवं आचरण के द्वारा धर्म की संस्थापना करते हैं ।** वे समुद्र के ज्योतिस्तम्भ की तरह हमारा उचित मार्गदर्शन करते तथा सत्य पथ

पर चलने को प्रेरित करते हैं । इसी मार्ग पर अनेकों संत-निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोरा, गोणाई, एकनाथ, तुकाराम, नरहरि, नरसीभाई, सजन कसाई, सावंता माली और रामदास तथा कई अन्य संत सत्य-मार्ग का दिग्दर्शन कराने हेतू भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रगट हुए और इन सबके पश्चात् शिरडी में श्री साईबाबा का अवतार हुआ ।

पवित्र तीर्थ शिरडी

अहमदनगर जिले में गोदावरी के तट बड़े ही भाग्यशाली हैं, जिन पर अनेक संतों ने जन्म धारण किया और अनेकों ने वहाँ आश्रय पाया । ऐसे संतो में श्री ज्ञानेश्वर महाराज प्रमुख थे। शिरडी, अहमदनगर जिले के राहाता तालुका में है । गोदावरी नदी पार करने के पश्चात् मार्ग सीधा शिरडी को जाता है । आठ मील चलने पर जब आप नीमगाँव पहुँचेंगे तो वहाँ से शिरडी दृष्टिगोचर होने लगती है । कृष्णा नदी के तट पर अन्य तीर्थस्थान गाणगापुर, नृसिंहवाड़ी, और औदुम्बर के समान ही शिरडी भी प्रसिद्ध तीर्थ है । जिस प्रकार दामोजी ने मंगलवेढ़ा को (पंढरपुर के समीप), समर्थ रामदास ने सज्जनगढ़ को, दत्तावतार श्री नरसिंह सरस्वती वे वाड़ी को पवित्र किया, उसी प्रकार श्री साईनाथ ने शिरडी में अवतीर्ण होकर उसे पावन बनाया ।

श्री साईबाबा का व्यक्तित्व

श्री साईबाबा के सान्निध्य से शिरडी का महत्व विशेष बढ़ गया । अब हम उनके चरित्र का अवलोकन करेंगे । उन्होंने इस भवसागर पर विजय प्राप्त कर ली थी, जिसे पार करना महान् दुष्कर तथा कठिन है । शांति उनका आभूषण था तथा वे ज्ञान की साक्षात् प्रतिमा थे । वैष्णव भक्त सदैव वहाँ आश्रय पाते थे । दानवीरों में वे राजा कर्ण के समान दानी थे । वे समस्त सारों के साररूप थे । ऐहिक पदार्थों से उन्हें अरूचि थी । सदा आत्मस्वरुप में निमग्न रहाना ही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था । अनित्य वस्तुओं का आकर्षण उन्हें छू भी नही गया था । उनका हृदय शीशे के सदृश उज्ज्वल था । उनके

श्री-मुख से सदैव अमृत वर्षा होती थी। अमीर और गरीब उनके लिये दोनों एक समान थे। मान-अपमान की उन्हें किंचित्मात्र भी चिंता न थी। वे निर्भय होकर सम्भाषण करते, भाँति-भाँति के लोगों से मिलजुल कर रहते, नर्तकियों का अभिनय तथा नृत्य देखते और ग़ज़ल-कव्वालियाँ भी सुनते थे। इतना सब करते हुए भी उनकी समाधि किंचित्मात्र भी भंग न होती थी। अल्लाह का नाम सदा उनके ओठों पर था। जब दुनिया जागती तो वे सोते और जब दुनिया सोती तो वे जागते थे।[१] उनका अन्तःकरण प्रशान्त महासागर की तरह शांत था। न उनके आश्रम का कोई निश्चय कर सकता था और न उनकी कार्यप्रणाली का अन्त पा सकता था। कहने के लिये तो वे एक स्थान पर निवास करते थे, परन्तु विश्व के समस्त व्यवहारों व व्यापारों का उन्हें भली-भाँति ज्ञान था। उनके दरबार का रंग ही निराला था। वे प्रतिदिन अनेक किंवदंतियाँ कहते थे, परन्तु उनकी अखंड शांति किंचित्मात्र भी विचलित न होती थी। वे सदा मस्जिद की दीवार के सहारे बैठे रहते थे तथा प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल लेंडी और चावड़ी की ओर वायु-सेवन करने जाते तो भी सदा आत्मस्थित ही रहते थे। स्वतः सिद्ध होकर भी वे साधकों के समान आचरण करते थे। वे विनम्र, दयालु तथा अभिमानरहित थे। उन्होंने सबको सदा सुख पहुँचाया। ऐसे थे श्री साईबाबा, जिनके श्री-चरणों का स्पर्श कर शिरडी पावन बन गई। उसका महत्त्व असाधारण हो गया। जिस प्रकार ज्ञानेश्वर ने आलंदी और एकनाथ ने पैठण का उत्थान किया, वही गति श्री साईबाबा द्वारा शिरडी को प्राप्त हुई। शिरडी के फूल, पत्ते, कंकड़ और पत्थर भी धन्य हैं, जिन्हें श्री साई चरणाम्बुजों का चुम्बन तथा उनकी चरण-रज मस्तक पर धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भक्तगण को शिरडी एक दूसरा पंढरपुर, जगन्नाथपुरी, द्वारका, बनारस (काशी), महाकालेश्वरतथा गोकर्ण महाबलेश्वर बन गई। श्री साई का दर्शन करना ही भक्तों का वेदमंत्र था,

---

१. सुखिया सब संसार है, खाये अरू सोये।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरू रोये ।। - कबीर

जिसके परिणामस्वरूप आसक्ति घटती और आत्मदर्शन का पथ सुगम होता था । उनका श्री दर्शन ही योग-साधन था और उूसे वार्तालाप करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते थे । उनका पादसेवन करना ही त्रिवेणी (प्रयाग) स्नान के समान था तथा चरणामृत पान करने मात्र से ही समस्त इच्छाओं की तृप्ति होती थी । उनकी आज्ञा हमारे लिये वेद सदृश थी । प्रसाद तथा उदी ग्रहण करने से चित्त की शुद्धि होती थी । वे ही हमारे राम और कृष्ण थे, जिन्होंने हमें मुक्ति प्रदान की, वे सदा आत्म-स्थित, चैतन्यघन तथा आनंद की मंगलमूर्ति थे । कहने को तो शिरडी उनका मुख्य केन्द्र था, परन्तु उनका कार्यक्षेत्र पंजाब, कलकत्ता, उत्तरी भारत, गुजरात, ढाका और कोंकण तक विस्तृत था । श्री साईबाबा की कीर्ति दिन-प्रतिदिन चहुँ ओर फैलने लगी और जगह-जगह से दर्शनार्थ आकर उनके भक्त लाभ उठाने लगे । केवल दर्शन से ही मनुष्यों, चाहे वे शुद्ध अथवा अशुद्ध हृदय के हों, के चित्त को परम शांति मिल जाती थी । उन्हें उसी आनन्द का अनुभव होता था, जैसा कि पंढरपूर में श्री विठ्ठल के दर्शन से होता है । यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है । देखिये, एक भक्त ने यही अनुभव पाया है :-

गौली बुवा

लगभग ९५ वर्ष के वयोवृद्ध भक्त, जिनका नाम गौली बुवा थो, पंढरी के एक वारकरी थे । वे ८ मास पंढरपुर तथा ४ मास (आषाढ़ से कार्तिक तक) गंगातट पर निवास करते थै । सामान ढोने के लिये वे एक गधे को अपने पास रखते और एक शिष्य भी सदैव उनके साथ रहता था । वे प्रतिवर्ष वारी लेकर पंढरपूर जाते और लौटते समय श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आते थे । बाबा पर उनका अगाध प्रेम था । वे बाबा की ओर एकटक निहारते और कह उठते थे कि ये तो श्री पंढरीनाथ, श्री विठ्ठल के अवतार हैं, जो अनाथ-नाथ, दीन दयालु और दीनों के नाथ हैं । गौली बुवा श्री विठोबा के परम भक्त थे । उन्होंने अनेक बार पंढरी की यात्रा की तथा प्रत्यक्ष अनुभव किया कि श्री साईबाबा सचमुच में ही पंढरीनाथ हैं ।

विठ्ठल स्वयं प्रकट हुए

श्री साईबाबा की ईश्वर-चिंतन और भजन में विशेष अभिरूचि थी । वे सदैव ''अल्लाह मालिक'' पुकारते तथा भक्तों से कीर्तन-सप्ताह करवाते थे । इसे ''नामसप्ताह'' भी कहते हैं । एक बार उन्होंने दासगणु को कीर्तनसप्ताह करने की आज्ञा दी । दासगणु ने बाबा से कहा कि ''आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है, परन्तु इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि सप्ताह के अंत मे विठ्ठल अवश्य प्रगट होंगे ।'' परन्तु साथ ही भक्तों में श्रद्धा व तीव्र उत्सुकता का होना भी अनिवार्य है । ठाकुरनाथ की डंकपुरी, विठ्ठल की पंढरी, रणछोड़ की द्वारका यहीं तो है । किसी को दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । क्या विठ्ठल कहीं बाहर से आएंगे ? वे तो यहीं विराजमान हैं । **जब भक्तों में प्रेम और भक्ति का स्त्रोत प्रवाहित होगा तो विठ्ठल स्वयं ही यहाँ प्रगट हो जाएँगे ।**

सप्ताह समाप्त होने के बाद विठ्ठल भगवान इस प्रकार प्रगट हुए । काकासाहेब दीक्षित सदैव की भाँति स्नान करने के पश्चात् जब ध्यान करने को बैठे तो उन्हें विठ्ठल के दर्शन हुए । दोपहर के समय जब वे बाबा के दर्शनार्थ मस्जिद पहुँचे तो बाबा ने उनसे पूछा, ''क्यों विठ्ठल पाटील आए थे न ? वे बहुत चंचल हैं । उनको दृढ़ता से पकड़ लो । यदि थोड़ी भी असावधानी की तो वे बचकर निकल जाएँगे ।'' यह प्रातःकाल की घटना थी और दोपहर के समय उन्हें पुनः दर्शन हुए। उसी दिन एक चित्र बेचने वाला विठोबा के २५-३० चित्र लेकर वहाँ बेचने आया । यह चित्र ठीक वैसा ही था, जैसा कि काकासाहेब दीक्षित को ध्यान में दर्शन हुए थे । चित्र देखकर और बाबा के शब्दों का स्मरण कर काकासाहेब को बड़ा विस्मय और पसन्नता हुई । उन्होंने एक चित्र सहर्ष खरीद लिया और उसे अपने देवघर में प्रतिष्ठित कर दिया ।

ठाणा के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री बी.व्ही.देव ने अपने अनुसंधान के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि शिरडी पंढरपुर की परिधि में आती है । दक्षिण में पंढरपुर श्रीकृष्ण का प्रसिद्ध स्थान है, अतः शिरडी ही द्वारका है ।

(साई लीला पत्रिका भाग १२, अंक १,२,३ के अनुसार)

द्वारका की एक और व्याख्या सुनने में आई है, जो कि कै. नारायण अय्यर द्वारा लिखित ''भारतवर्ष का स्थायी इतिहास'' में स्कन्दपुराण (भाग २, पृष्ठ ९०) से उद्धृत की गई है। वह इस प्रकार है :-

''चतुर्वर्णामपि वर्गाणां यत्र द्वाराणि सर्वतः।

अतो द्वारावतीत्युक्ता विद्वद्भिस्तत्ववादिभिः।।''

जो स्थान चारों वर्णों के लोगों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये सुलभ हो, दार्शनिक लोग उसे ''द्वारका'' के नाम से पुकारते हैं। शिरडी में बाबा की मस्जिद केवल चारों वर्णों के लिये ही नहीं, अपितु दलित, अस्पृश्य और भागोजी शिंदे जैसे कोढ़ी आदि सब के लिये खुली थी। अतः शिरडी को ''द्वारका'' कहना ही सर्वथा उचित है।

भगवंतराव क्षीरसागर की कथा

श्री विठ्ठलपूजन में बाबा को कितनी रुचि थी, यह भगवंतराव क्षीरसागर की कथा से स्पष्ट है। भगवंतराव के पिता विठोबा के परम भक्त थे, जो प्रतिवर्ष पंढरपुर वारी लेकर जाते थे। उनके घर में विठोबा की एक मूर्ति थी, जिसकी वे नित्यप्रति पूजा करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र भगवंतराव ने वारी, पूजन, श्राद्ध इत्यादि समस्त कर्म करना छोड़ दिया। जब भगवंतराव शिरडी आए तो बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे कि, ''इनके पिता मेरे परम मित्र थे। इसी कारण मैंने इन्हें यहाँ बुलाया है। इन्होंने कभी नैवेद्य अर्पण नहीं किया तथा मुझे और विठोबा को भूखों मारा है। इसलिये मैंने इन्हें यहाँ आने को प्रेरित किया है। अब मैं इन्हें हठपूर्वक पूजा में लगा दूँगा।''

दासगणु का प्रयागस्नान

गंगा और यमुना नदी के संगम पर प्रयाग प्रसिद्ध पवित्र तीर्थस्नान है। हिन्दुओं की ऐसी भावना है कि वहाँ स्नानादि करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते है। इसी कारण प्रत्येक पर्व पर सहस्त्रों भक्तगण वहाँ जाते है और स्नान का लाभ उठाते हैं। एक बार दासगणु ने भी वहाँ जाकर स्नान करने का निश्चय

किया । इस विचार से वे बाबा से आज्ञा लेने उनके पास गए। बाबा ने का कि **''इतनी दूर व्यर्थ भटकने की क्या आवश्यकता है ? अपना प्रयाग तो यही है । मुझ पर विश्वास करो ।''** आश्चर्य, महान् आश्चर्य ! जैसे ही दासगणु बाबा के चरणों पर नत हुए तो बाबा के श्री चरणों से गंगा-यमुना की धारा वेग से प्रवाहित होने लगी । यह चमत्कार देखकर दासगणु का प्रेम और भक्ति उमड़ पड़ी। आँखो से अश्रुओं की धारा बहने लगी । उन्हें कुछ अंतःस्फुर्ति हुई और उनके मुख से श्री साई बाबा की स्त्रोतस्विनी स्वतः प्रवाहित होने लगी।

श्री साईबाबा का शिरडी में प्रथम आगमन

श्री साईबाबा के माता पिता, उनके जन्म और जन्म-स्थान का किसी को भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्ध में बहुत छानबीन की गई । बाबा से तथा अन्य लोगों से भी इस विषय में पूछताछ की गई, परन्तु कोई संतोषप्रद उत्तर अथवा सूत्र हाथ न लग सका । यथार्थ में हम लाग इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ हैं । नामदेव और कबीरदास जी का जन्म अन्य लोगों की भाँति नहीं हुआ था । वे बाल-रूप में प्रकृति की गोद में पाये गए थे। नामदेव भीमरथी नदी के तीर पर गोनाई को और कबीर भगीरथी नदी के तीर पर तमाल को पड़े हुए मिले थे, और ऐसा ही श्री साईबाबा के सम्बन्ध में भी था । वे शिरडी में नीम-वृक्ष के तले सोलह वर्ष की तरूणावस्था में स्वयं भक्तों के कल्याणार्थ प्रकट हुए थे । उस समय भी वे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी प्रतीत होते थे । स्वप्न में भी उनको किसी लौकिक पदार्थ की इच्छा नहीं थी । उन्होंने माया को ठुकरा दिया था और मुक्ति उनके चरणों में लोटती थी । शिरडी ग्राम की एक वृद्ध स्त्री नाना चोपदार की माँ ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है - एक तरूण, स्वस्थ, फुर्तिला तथा अति रूपवान् बालक सर्वप्रथम नीम वृक्ष के नीचे समाधि में लीन दिखाई पड़ा। सर्दी व गर्मी की उन्हें किंचित्मात्र भी चिंता न थी । उन्हें इतनी अल्प आयु में इस प्रकार कठिन तपस्या करते देखकर लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । दिन में वे किसी से भेंट नहीं करते थे और रात्रि में निर्भय होकर एकांत मे घूमते थे । लोग आश्चर्यचकित होकर पूछते फिरते थे कि इस युवक का कहाँ

से आगमन हुआ है ? उनकी बनावट तथा आकृति इतनी सुन्दर थी कि एकबार देखने मात्र से लोग आकर्षित हो जाते थे । वे सदा नीम वृक्ष के नीचे बैठे रहते थे और किसी के द्वार पर न जाते थे । यद्यपिं वे देखने में युवक प्रतीत होते थे, परन्तु उनका आचरण महात्माओं के सदृश था। वे त्याग और वैराग्य की साक्षात् प्रतिमा थे । एक बार एक आश्चर्यजनक घटना हुई । एक भक्त को भगवान् खंडोबा का संचार हुआ । लागों ने शंका-निवारणार्थ उनसे प्रश्न किया कि ''हे देव ! कृपया बतलाइये कि ये किस भाग्यशाली पिता की संतान हैं और अनका कहाँ से आगमन हुआ है ?'' भगवान् खंडोबा ने एक कुदाली मँगवाई और एक निर्दिष्ट स्थान पर खोदने का संकेत किया । जब वह स्थान पूर्ण रूप से खोदा गया तो वहाँ एक पत्थर के नीचे ईंटे पाई गईं । पत्थर को हटाते ही एक द्वार दिखा, जहाँ पर चार दीप जल रहे थे। उन दरवाजों का मार्ग एक गुफा में जाता था, जहाँ गौमुखी आकार की इमारत, लकड़ी के तख्ते, मालायें आदि दिखाई पड़ीं। भगवान् खंडोबा कहने लगे कि इस युवक ने इस स्थान पर बारह वर्ष तपस्या की है । तब लोग युवक से प्रश्न करने लगे । परंतु उसने यह कहकर बात टाल दी कि यह मेरे श्री गुरूदेव की पवित्र भूमि है अतएव मेरा पूज्य स्थान है, तब लोगों ने उस दरवाजे को पूर्ववत् बन्द कर दिया। जिस प्रकार अश्वत्थ तथा औदुम्बर वृक्ष पवित्र माने जाते हैं, उसी प्रकार बाबा ने भी इस नीम वृक्ष को उतना ही पवित्र माना और प्रेम किया । म्हालसापति तथा शिरडी के अन्य भक्त इस स्थान को बाबा के गुरू का समाधि-स्थान मानकर सदैव नमन किया करते थे ।

तीन वाड़े

नीम वृक्ष के आसपास की भूमि श्री हरी विनायक साठे ने मोल ले ली और उस स्थान पर एक विशाल भवन का निर्माण किया, जिसका नाम साठे-वाड़ा रखा गया। बाहर से आने वाले यात्रियों के लिये वह वाड़ा ही एकमात्र विश्राम स्थान था, जहाँ सदैव भीड़ रहा करती थी । नीम वृक्ष के नीचे चारों ओर चबूतरा बाँधा गया । सीढ़ियों के नीचे दक्षिण की ओर एक छोटासा

मन्दिर है, जहाँ भक्त लोग चबूतरे के ऊपर उत्तराभिमुख होकर बैठते है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो भक्त गुरुवार तथा शुक्रवार की संध्या को वहाँ धूप, अगरबत्ती आदि सुगन्धित पदार्थ जलाते हैं,वे ईश-कृपा से सदैव सुखी होंगे । यह वाड़ा बहुत पुराना तथा जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था तथा इसके जीर्णोद्धार की नितान्त आवश्यकता थी, जो संस्थान द्वारा पूर्ण कर दी गई । कुछ समय के पश्चात् एक दूसरे वाड़े का निर्माण हुआ, जिसका नाम दीक्षित-वाड़ा रखा गया। काकासाहेब दीक्षित, कानूनी सलाहकार (Solicitor) जब इंग्लैंड में थे, तब वहाँ उन्हें किसी दुर्घटना से पैर में चोट आ गई थी। उन्होंने अनेक उपचार किये, परन्तु पैर अच्छा न हो सका। नानासाहेब चाँदोरकर ने उन्हें बाबा की कृपा प्राप्त करने का परामर्श दिया । इसलिये उन्होंने सन् १९०९ में बाबा के दर्शन किए। उन्होंने बाबा से पैर के बदले अपने मन की पंगुता दूर करने की प्रार्थना की। बाबा के दर्शन से उन्हें इतना सुख प्राप्त हुआ कि उन्होंने स्थायी रूप से शिरडी में रहना स्वीकार कर लिया और इसी कारण उन्होंने अपने तथा भक्तों के हेतु एक वाड़े का निर्माण कराया। इस भवन का शिलान्यास दिनाकं ९-१२-१९१० को किया गया । उसी दिन अन्य दो विशेष घटनाएँ घटित हुई - (१) श्री दादासाहेब खापर्डे को घर वापस लौटने की अनुमति प्राप्त हो गई और (२) चावड़ी में रात्रि को आरती आरम्भ हो गई। कुछ समय में वाड़ा सम्पूर्ण रूप से बन गया और रामनवमी (१९११) के शुभ अवसर पर उसका यथाविधि उद्घाटन कर दिया गया। इसके बाद एक और वाड़ा-मानो एक शाही भवन-नागुपर के प्रसिद्ध श्रीमंत बूटी ने बनवाया। इस भवन के निर्माण में बहुत धनराशि लगाई गई। उनकी समस्त निधि सार्थक हो गई, क्योंकि बाबा का शरीर अब वहीं विश्रान्ति पा रहा है, और फिलहाल वह ''समाधि मंदिर'' के नाम से विख्यात है। इस मंदिर के स्थान पर पहले एक बगीचा था, जिसमें बाबा स्वयं पौधों को सींचते और उनकी देखभाल किया करते थे। जहाँ पहले एक छोटी-सी कुटी भी नहीं थी, वहाँ तीन-तीन वाड़ों का निर्माण हो गया। इन सब में साठे-वाड़ा पूर्वकाल में बहुत ही उपयोगी था।

बगीचे की-कथा, वामन तात्या की सहायता से स्वयं बगीचे की देखभाल, शिरडी से श्री साईबाबा की अस्थायी अनुपस्थिति तथा चाँद पाटील की बारात में पुनः शिरडी लौटना, देवीदास, जानकीदास और गंगागीर की संगति, मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती, मस्जिद में निवास, श्री डेंगले व अन्य भक्तों पर प्रेम तथा अन्य घटनाओं का अगले अध्याय में वर्णन किया गया है ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्मतु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-५
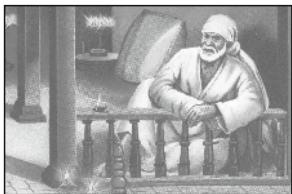
चाँद पाटील की बारात के साथ श्री साई बाबा का पुनः आगमन, अभिनंदन तथा "श्री साई" शब्द से सम्बोधन, अन्य संतों से भेंट, वेशभूषा व नित्य कार्यक्रम, पादुकाओं की कथा, मोहिद्दीन के साथ कुश्ती, मोहिद्दीन की जीवन परिवर्तन, जल का तेल में रुपान्तर, मिथ्या गुरु जौहरअली ।

जैसा गत अध्याय में कहा गया है, मैं अब श्री साई बाबा के शिरडी से अन्तर्धान होने के पश्चात् उनका शिरडी में पुनः किस प्रकार आगमन हुआ, इसका वर्णन करूँगा ।

चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः आगमन

जिला औरंगाबाद (निजाम स्टेट) के धूपगाँव में चाँद पाटील नामक एक धनवान् मुस्लिम रहते थे । जब वे औरंगाबाद को जा रहे थे तो मार्ग में उनकी घोड़ी खो गई । दो मास तक उन्होंने उसकी खोज में घोर परिश्रम किया, परन्तु उसका कहीं पता न चल सका । अन्त में वे निराश होकर उसकी जीन को पीठ पर लटकाये औरंगाबाद को लौट रहे थे । तब लगभग १४ मील चलने के पश्चात् उन्होंने एक आम्रवृक्ष के नीचे एक फकीर को चिलम तैयार करते देखा, जिसके सिर पर एक टोपी, तन पर कफनी और पास में एक सटका था । फकीर के बुलाने पर चाँद पाटील उनके पास पहुँचे । जीन देखते ही फकीर ने पूछा, "यह जीन कैसी ?" चाँद पाटील ने निराशा के स्वर में कहा "क्या कहूँ? मेरी एक घोड़ी थी, वह खो गई है और यह उसी की जीन है ।"

फकीर बोले – "थोड़ा नाले की ओर भी तो ढूँढो ।" चाँद पाटील नाले के समीप गए तो अपनी घोड़ी को वहाँ चरते देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि फकीर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, वरन् कोई उच्च

कोटि का मानव दिखलाई पड़ता है। घोड़ी को साथ लेकर जब वे फकीर के पास लौटकर आए, तब तक चिलम भरकर तैयार हो चुकी थी। केवल दो वस्तुओं की और आवश्यकता रह गई थी। एक तो, चिलम सुलगाने के लिये अग्नि और दूसरा साफी को गीला करने के लिये जल। फकिर ने अपना चिमटा भूमि में घुसेड़ कर ऊपर खींचा तो उसके साथ ही एक प्रज्ज्वलित अंगार बाहर निकला और वह अंगार चिलम पर रखा गया। फिर फकीर ने सटके से ज्योंही बलपूर्वक जमीन पर प्रहार किया, त्योंही वहाँ से पानी निकलने लगा और उसने साफी को भिगोकर चिलम को लपेट लिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध कर फकीर ने चिलम पी और तत्पश्चात् चाँद पाटील को भी दी। यह सब चमत्कार देखकर चाँद पाटील को बड़ा विस्मय हुआ। चाँद पाटील ने फकीर से अपने घर चलने का आग्रह किया। दूसरे दिन चाँद पाटील के साथ फकीर उनके घर चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहा। पाटील धूपगाँव का अधिकारी था। उसके घर पर अपने साले के लड़के का विवाह होने वाला था और बारात शिरडी को जाने वाली थी। इसलिये चाँद पाटील शिरडी को प्रस्थान करने का पूर्ण प्रबन्ध करने लगा। फकीर भी बारात के साथ ही गया। विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया और बारात कुशलतापूर्वक धूपगाँव को लौट आई। परन्तु फकीर शिरडी में ही रुक गया और जीवनपर्यन्त वहीं रहा।

फकीर को ''साई'' नाम कैसे प्राप्त हुआ ?

जब बारात शिरडी में पहुँची तो खंडोबा के मंदिर के समीप म्हालसापति के खेत में एक वृक्ष के नीचे ठहराई गई। खंडोबा के मंदिर के सामने ही सब बैलगाड़ियाँ खोल दी गईं और बारात के सब लोग एक-एक करके नीचे उतरने लगे। तरुण फकिर को उतरते देख म्हालसापति ने ''आओ साई'' कहकर उनका अभिनन्दन किया तथा अन्य उपस्थित लोगों ने भी ''साई'' शब्द से ही सम्बोधन कर उनका आदर किया। इसके पश्चात् वे ''साई'' नाम से ही प्रसिद्ध हो गए।

अन्य संतों से सम्पर्क

शिरडी आने पर श्री साईबाबा मस्जिद में निवास करने लगे । बाबा के शिरडी में आने के पूर्व देवीदास नाम के एक सन्त अनेक वर्षों से वहाँ रहते थे । बाबा को वे बहुत प्रिय थे । वे उनके साथ कभी हनुमान मन्दिर में और कभी चावड़ी में रहते थे । कुछ समय के पश्चात् जानकीदास नाम के एक संत का भी शिरडी में आगमन हुआ । अब बाबा जानकीदास से वार्तालाप करने में अपना बहुत-सा समय व्यतीत करने लगे । जानकीदास भी कभी-कभी बाबा के स्थान पर चले आया करते थे; और पुणताम्बे के श्री गंगागीर नामक एक पारिवारिक वैश्य संत भी बहुधा बाबा के पास आया-जाया करते थे । जब प्रथम बार उन्होंने श्री साईबाबा का बगीचा सींचने के लिये पानी ढोते देखा तो उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ । वे स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि "**शिरडी परम भाग्यशालिनी है, जहाँ एक अमूल्य हीरा है ।** जिन्हें तुम इस प्रकार परिश्रम करते हुए देख रहे हो, वे कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं । अपितु यह भूमि बहुत भाग्यशालिनी तथा महान् पुण्यभूमि है, इसी कारण इसे यह रत्न प्राप्त हुआ है ।" इसी प्रकार श्री अक्कलकोट महाराज के एक प्रसिद्ध शिष्य संत आनन्द नाथ (येवलामठ) जो कुछ शिरडी निवासियों के साथ शिरडी पधारे, उन्होंने भी स्पष्ट कहा, कि "**यद्यपि बाह्यदृष्टि से ये साधारण व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हैं, परन्तु ये सचमुच असाधारण व्यक्ति है । इसका तुम लोगों को भविष्य में अनुभव होगा।**" ऐसा कहकर वे येवला को लौट गए । यह उस समय की बात है, जब शिरडी बहुत ही साधारण-सा गाँव था और साईबाबा छोटी उम्र के थे ।

बाबा का रहन-सहन व नित्य कार्यक्रम

तरुण अवस्था में श्री बाबा ने अपने केश कभी भी नहीं कटाये और वे सदैव एक पहलवान की तरह रहते थे । जब वे राहाता जाते (जो कि शिरडी से ३ मील दूर है) तो वहाँ से वे गेंदा, जाई और जूही के पौधे मोल ले आया करते थे । वे उन्हें स्वच्छ करके उत्तम भूमि देखकर लगा देते और स्वयं सींचते थे । वामन तात्या नाम के एक भक्त इन्हें नित्य प्रति दो मिट्टी के घड़े दिया करते थे।

इन घड़ो द्वारा बाबा स्वयं ही पौधों में पानी डाला करते थे। जैसे ही घड़े वहाँ रखते, वैसे ही वे फूट जया करते थे, क्योंकि वे बिना तपाये और कच्ची मिट्टी के बने रहते थे। दूसरे दिन तात्या उन्हें फिर दो नये घड़े दिया करते थे। यह क्रम तीन वर्षों तक चला और श्री साई बाबा के कठोर परिश्रम तथा प्रयत्न से वहाँ फूलों की एक सुन्दर फुलवारी बन गई। आजकल इसी स्थान पर बाबा के समाधि-मंदिर की भव्य इमारत शोभायमान है, जहाँ सहस्त्रों भक्त आते-जाते रहते हैं।

नीम वृक्ष के नीचे पादुकाओं की कथा

श्री अक्कलकोट महाराज के एक भक्त, जिनका नाम भाई कृष्णाजी अलीबागकर था, उनके चित्र का नित्य-प्रति पूजन किया करते थे। एक समय उन्होंने अक्कलकोट (शोलापूर जिला) जाकर महाराज की पादुकाओं का दर्शन एवं पूजन करने का निश्चय किया। परन्तु प्रस्थान करने के पूर्व अक्कलकोट महाराज ने स्वप्न में दर्शन देकर उनसे कहा कि आजकल शिरडी ही मेरा विश्राम-स्थल है और तुम वहीं जाकर मेरा पूजन करो। इसलिये भाई ने अपने कार्यक्रम में परिवर्तन कर शिरडी आकर श्री साईबाबा की पूजा की। वे आनन्दपूर्वक शिरडी मे छः मास रहे और इस स्वप्न की स्मृति-स्वरूप उन्होंने पादुकाएँ बनवाईं। शक सं. १८३४ में श्रावण में शुभ दिन देखकर नीम वृक्ष के नीचे वे पादुकाएँ स्थापित कर दीं। दादा केलकर तथा उपासनी महाराज ने यथाविधि स्थापना उत्सव सम्पन्न किया। एक दीक्षित ब्राह्मण पूजन के लिये नियुक्त कर दिया गया और प्रबन्ध का कार्य एक भक्त सगुण मेरु नायक को सौंपा गया।

कथा का पूर्ण विवरण

ठाणे के सेवानिवृत्त मामलतदार श्री बी.व्ही.देव, जो श्री साईबाबा के एक परम भक्त थे, उन्होंने सगुण मेरु नायक और गोविंद कमलाकर दीक्षित से इस विषय में पूछताछ की। पादुकाओं का पूर्ण विवरण श्री साई लीला भाग ११, संख्या १, पृष्ठ २५ में प्रकाशित हुआ है, जो निम्नलिखित है :- शक

१८३४ (सन् १९१२) में बम्बई के एक भक्त डॉ. रामराव कोठारे बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आए । उनका कम्पाउंडर और उनके एक मित्र भाई कृष्णजी अलीबागकर भी उनके साथ में थे । कम्पाउंडर और भाई के सगुण मेरु नायक तथा जी. के. दीक्षित से घनिष्ठ दोस्ती हो गई । अन्य विषयों पर चर्चा करते समय इन लोगों को विचार आया कि श्री साईबाबा के शिरडी में प्रथम आगमन तथा पवित्र नीम वृक्ष के नीचे निवास करने की ऐतिहासिक स्मृति के उपलक्ष्य में क्यों न पादुकाएँ स्थापित की जाएँ ? जब पादुकाओं के निर्माण पर विचार विमर्श होने लगा । तब भाई के मित्र कम्पाउंडर ने कहा कि यदि यह बात मेरे स्वामी कोठारे को विदित हो जाए तो वे इस कार्य के निमित्त अति सुन्दर पादुकायें बनवा देंगे । उन्होंने शिरडी आकर पादुकाओं की रूपरेखा बनाई तथा इस विषय में उपासनी महाराज से भी खंडोबा के मंदिर मे भेंट की । उपासनी महाराज ने उसमें बहुत सुधार किये और कमल फूलादि खींच दिये तथा नीचे लिचा श्लोक भी रचा, जो नीम वृक्ष के महात्म्य व बाबा की योगशक्ति का द्योतक था, जो इस प्रकार है :-

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्
सुधास्त्राविणं तिक्तमप्यप्रियं तम् ।
तरुं कल्पवृक्षाधिकं साधयन्तं
नमामीश्वरं सद्गुरुं साईनाथम् ।।

अर्थात् - मैं भगवान साईनाथ को नमन करता हूँ, जिनका सान्निध्य पाकर नीम वृक्ष कटु तथा अप्रिय होते हुये भी अमृत वर्षा करता था । (इस वृक्ष का रस अमृत कहलाता है) इसमें अनेक व्याधियों से मुक्ति देने के गुण होने के कारण इसे ''कल्पवृक्ष'' से भी श्रेष्ठ कहा गया है ।

उपासनी महाराज का विचार सर्वमान्य हुआ और कार्य रूप में भी परिणत हुआ । पादुकायें बम्बई में तैयार कराई गई और कम्पाउंडर के हाथों शिरडी भेज दी गई । बाबा की आज्ञानुसार इसकी स्थापना श्रावण की पूर्णिमा के दिन की गई । इस दिन प्रातःकाल ११ बजे जी.के. दीक्षित उन्हें अपने

मस्तक पर धारण कर खंडोबा के मंदिर से समारोह और धूमधाम के साथ द्वारकामाई में लाये। बाबा ने पादुकाएँ स्पर्श कर कहा कि, ''ये भगवान के श्री चरण हैं। इनकी नीम वृक्ष के नीचे स्थापना कर दो।'' इसके एक दिन पूर्व ही बम्बई के एक पारसी भक्त पास्ता शेट ने २५ रुपयों का मनीआर्डर भेजा। बाबा ने ये रुपये पादुकाओं की स्थापना के निमित्त दे दिये। स्थापना में कुल १०० रुपये व्यय हुये, जिनमें ७५ रुपये चन्दे द्वारा एकत्रित हुए। प्रथम पाँच वर्षों तक डॉ. कोठारे दीपक के निमित्त २ रुपये मासिक भेजते रहे। उन्होंने पादुकाओं के चारों ओर लगाने के लिये लोहे की छड़ें भी भेजीं। स्टेशन से छड़ें ढोने और छप्पर बनाने का खर्च (७ रुपये ८ आने) सगुण मेरु नायक ने दिये। आजकल जाखड़ी (नाना पुजारी) पूजन करते हैं और सगुण मेरु नायक नैवेद्य अर्पण करते तथा संध्या को दीपक जलाते है। भाई कृष्णाजी पहले अक्कलकोट महाराज के शिष्य थे। अक्कलकोट जाते हुए, वे शक १८३४ में पादुका-स्थापन के शुभ अवसर पर शिरडी आए और दर्शन करने के पश्चात् जब उन्होंने बाबा से अक्कलकोट प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी, तब बाबा कहने लगे, ''अरे! अक्कलकोट में क्या है ? तुम वहाँ व्यर्थ क्यों जाते हो ? वहाँ के महाराज तो यहीं (मैं स्वयं) हैं।'' यह सुनकर भाई ने अक्कलकोट जाने का विचार त्याग दिया। पादुकाएँ स्थापित होने के पश्चात् वे बहुधा शिरडी आया करते थे। श्री बी. व्ही. देव ने अंत मे ऐसा लिखा है कि इन सब बातों का विवरण हेमाडपंत को विदित नहीं था। अन्यथा वे श्री साई सच्चरित्र में लिखना कभी नहीं भूलते।

मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती और जीवन परिवर्तन

शिरडी में एक पहलवान था, जिसका नाम मोहिद्दीन तम्बोली था। बाबा का उससे किसी विषय पर मतभेद हो गया। फलस्वरूप दोनों में कुश्ती हुई और बाबा हार गए। इसके पश्चात् बाबा ने अपनी पोशाक और रहन-सहन में परिवर्तन कर दिया। वे कफनी पहनते, लंगोट बाँधते और एक कपड़े से सिर ढँकते थे। वे आसन तथा शयन के लिये एक टाट का टुकड़ा काम में लाते थे।

इस प्रकार फटे-पुराने चिथड़े पहन कर वे बहुत सन्तुष्ट प्रतीत होते थे । वे सदैव यही कहा करते थे कि ''गरीबी अव्वल बादशाही, अमीरी से लाख सवाई, गरीबों का अल्ला भाई ।'' गंगागीर को भी कुश्ती से बड़ा अनुराग था । एक समय जब वह कुश्ती लड़ रहा था, तब इसी प्रकार उसको भी त्याग की भावना जागृत हो गई । इसी उपयुक्त अवसर पर उसे देव वाणी सुनाई दी ''**भगवान के साथ खेल में अपना शरीर लगा देना चाहिए।**'' इस कारण वह संसार छोड़ आत्म-अनुभूति की ओर झुक गया । पुणाताम्बे के समीप एक मठ स्थापित कर वह अपने शिष्यों सहित वहाँ रहने लगा । श्री साईबाबा लोगों से न मिलते और न ही वार्तालाप करते थे । जब कोई उनसे कुछ प्रश्न करता तो वे केवल उतना ही उत्तर देते थे । दिन के समय वे नीम वृक्ष के नीचे विराजमान रहते थे । कभी-कभी वे गाँव की मेड़ पर नाले के किनारे एक बबूल-वृक्ष की छाया में भी बैठे रहते थे । और संध्या को अपनी इच्छानुसार कहीं भी वायु-सेवन को निकल जाया करते थे । नीमगाँव में वे बहुधा बालासाहेब डेंगले के घर जाया करते थे । बाबा श्री बालासाहेब को बहुत प्यार करते थे । उनके छोटे भाई, जिसका नाम नानासाहेब था, के द्वितीय विवाह करने पर भी उनको कोई संतान न थी । बालासाहेब ने नानासाहेब को श्री साई बाबा के दर्शनार्थ शिरडी भेजा । कुछ समय पश्चात् उनकी श्री कृपा से नानासाहेब के यहाँ एक पुत्ररत्न हुआ । इसी समय से बाबा के दर्शनार्थ लोगों का अधिक संख्या में आना प्रारंभ हो गया तथा उनकी कीर्ति भी दूर दूर तक फैलने लगी । अहमदनगर में भी उनकी अधिक प्रसिद्धि हो गई । तभी से नानासाहेब चांदोरकर, केशव चिदम्बर तथा अन्य कई भक्तों का शिरडी में आगमन होने लगा । बाबा दिनभर अपने भक्तों से घिरे रहते और रात्रि में जीर्ण-शीर्ण मस्जिद में शयन करते थे । इस समय बाबा के पास कुल सामग्री - चिलम, तम्बाकू, एक टमरेल, एक लम्बी कफनी, सिर के चारों ओर लपेटने का कपड़ा और एक सटका था, जिसे वे सदा अपने पास रखते थे । सिर पर सफेद कपड़े का एक टुकड़ा वे सदा इस प्रकार बाँधते थे कि उसका एक छोर बायें तक वे इन्हें

स्वच्छ नही करते थे । पैर में कोई जूता या चप्पल भी नही पहनते थे। केवल एक टाट का टुकड़ा ही अधिकांश दिन में उनके आसन का काम देता था । वे एक कौपीन धारण करते और सर्दी से बचने के लिये दक्षिण मुख हो धूनी तपते थे । वे धूनी में लकडी के टुकड़े डाला करते थे तथा अपना अहं, इच्छाओं और समस्त विषय आसक्तियों की उसमें आहुति दिया करते थे । वे ''अल्लाह मालिक'' का सदा उच्चारण किया करते थे । जिस मस्जिद में वे पधारे थे, उसमें केवल दो कमरों के बराबर लम्बी जगह थी और यही सब भक्त उनके दर्शन करते थे । १९१२ के पश्चात् कुछ परिवर्तन हुआ । पुरानी मस्जिद का जीर्णोद्धार हो गया और उसमें एक फर्श भी बनाया गया । मस्जिद में निवास करने के पूर्व बाबा दीर्घकाल तक तकिया मे रहे । वे पैरों में घुँघरू बाँधकर प्रेमविह्वल होकर सुन्दर नृत्य व गायन भी करते थे ।

जल का तेल में परिवर्तन

बाबा को प्रकाश से बड़ा अनुराग था । वे संध्या समय दुकानदारों से भिक्षा में तेल माँग लेते थे तथा दीपमालाओं से मस्जिद को सजाकर, रात्रिभर दीपक जलाया करते थे । यह क्रम कुछ दिनों तक ठीक इसी प्रकार चलता रहा । अब बनिये तंग आ गए और उन्होंने संगठित होकर निश्चय किया कि आज कोई उन्हें तेल की भिक्षा न दे । नित्य नियमानुसार जब बाबा तेल माँगने पहुँचे तो प्रत्येक स्थान पर उनका नकारात्मक उत्तर से स्वागत हुआ । किसी से कुछ कहे बिना बाबा मस्जिद को लौट आए और सूखी बत्तियाँ दीयों मे डाल दीं । बनिये तो बड़े उत्सुक होकर उनपर दृष्टि जमाये हुये थे । बाबा ने टमरेल उठाया, जिसमें बिल्कुल थोड़ा सा तेल था । उन्होंने उसमें पानी मिलाया और वह तेल-मिश्रित जल वे पी गए । उन्होंने असे पुनः टीनपाट में उगल दिया और वही तेलिया पानी दीयो में डालकर उन्हें जला दिया । उत्सुक बनियों ने जब दीपकों को पूर्ववत् रात्रि भर जलते देखा, तब उन्हें अपने किए पर बड़ा दु:ख हुआ और उन्होंने बाबा से क्षमा-याचना की । बाबा ने उन्हें क्षमा कर भविष्य में सत्य व्यवहार रखने के लिये सावधान किया ।

मिथ्या गुरु जौहर अली

उपर्युक्त वर्णित कुश्ती के पाँच वर्ष पश्चात् जौहर अली नाम के एक फकीर अपने शिष्यों के साथ राहाता आए । वे वीरभद्र मंदिर के समीप एक मकान में रहने लगे । फकीर विद्वान था । कुरान की आयतें उसे कंठस्थ थी । उसका कंठ मधुर था । गाँव के बहुत से धार्मिक और श्रद्धालु जन उसके पास आने लगे और उसका यथायोग्य आदर होने लगा । लोगों से आर्थिक सहायता प्राप्त कर, उसने वीरभद्र मंदिर के पास एक ईदगाह बनाने का निश्चय किया । इस विषय को लेकर कुछ झगड़ा हो गया, जिसके फलस्वरूप जौहर अली राहाता छोड़ शिरडी आया और बाबा के साथ मस्जिद में निवास करने लगा । उसने अपनी मधुर वाणी से लोगों का मन जीत लिया । वह बाबा को भी अपना शिष्य बताने लगा । बाबा ने कोई आपत्ति नहीं की और उसका शिष्य होना स्वीकार कर लिया । तब गुरु और शिष्य दोनों पुनः राहाता में आकर रहने लगे । गुरु शिष्य की योग्यता से अनभिज्ञ था, परन्तु शिष्य गुरु के दोषों से पूर्ण परिचित था । इतने पर भी बाबा ने कभी उसका अनादर नहीं किया और पूर्ण लगन से अपना कर्तव्य निभाते रहे और उसकी अनेक प्रकार से सेवा की । वे दोनों कभी-कभी शिरडी भी आया करते थे, परन्तु मुख्य निवास राहाता में ही था । श्री बाबा के प्रेमी भक्तों को उनका दूर राहाता मे रहना अच्छा नहीं लगता था । इसलिये वे सब मिलकर बाबा को शिरडी वापस लाने के लिये गए । इन लोगां की ईदगाह के समीप बाबा से भेंट हुई और उन्हें अपने आगमन का हेतु बतलाया । बाबा ने उन लोगों को समझाया कि फकीर के आने के पूर्व ही आप लोग शिरडी लौट जाएँ । इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि इतने में फकीर आ पहुँचे । इस प्रकार अपने शिष्य को वहाँ से ले जाने का कुप्रयत्न करते देखकर वे बहुत क्रोधित हुए । कुछ वादविवाद के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन हो गया और अंत में यह निर्णय हुआ कि फकीर व शिष्य दोनों ही शिरडी में निवास करें, और इसीलिये वे शिरडी में आकर रहने लगे । कुछ दिनों के बाद देवीदास ने गुरु की परीक्षा की और उसमें कुछ कमी पाई ।

चाँद पाटील की बारात के साथ जब बाबा शिरडी में आए थे, उससे १२ वर्ष पूर्व देवीदास लगभग १० या ११ उम्र की अवस्था में शिरडी आए थे और हनुमान मंदिर में रहते थे । देवीदास सुडौल, सुन्दर आकृति तथा तीक्ष्ण बुद्धि के थे । वे त्याग की साक्षात्मूर्ति तथा अगाध ज्ञानी थे । बहुत-से सज्जन जैसे तात्या कोते, काशीनाथ व अन्य लोग, उन्हें अपने गुरु-समान मानते थे । लोग जौहर अली को उनके सम्मुख लाये । विवाद में जौहर अली बुरी तरह पराजित हुआ और शिरडी छोड़ वैजापूर को भाग गया । वह अनेक वर्षों के पश्चात् शिरडी आया और श्री साईबाबा की चरण-वन्दना की । उसका यह भ्रम कि ''वह स्वयं गुरु था और श्री साईबाबा उनके शिष्य'' अब दूर हो चुका था । श्री साईबाबा उसे गुरु-समान ही आदर करते थे, उसका स्मरण कर उसे बहुत पश्चाताप हुआ । इस प्रकार श्री साईबाबा ने अपने प्रत्यक्ष आचरण से आदर्श उपस्थित किया कि अहंकार से किस प्रकार छुटकारा पाकर शिष्य के कर्तव्यों का पालन कर, किस तरह आत्मानुभव की ओर अग्रसर होना चाहिए। ऊपर वर्णित कथा म्हालसापति के कथनानुसार है । अगले अध्याय में रामनवमी का त्यौहार, मस्जिद की पूर्व हालत एवं पश्चात् उसके जीर्णोद्धार इत्यादि का वर्णन होगा ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-६

रामनवमी उत्सव, मस्जिद का जीर्णोद्धार, गुरु के कर-स्पर्श की महिमा, चंदन समारोह, उर्स और रामनवमी का समन्वय, मस्जिद का जीर्णोद्धार।

गुरु के कर-स्पर्श के गुण

जब सद्‌गुरु ही नाव के खिवैया हैं तो वे निश्चय ही कुशलता तथा सरलतापूर्वक इस भवसागर के पार उतार देंगे। ''सद्‌गुरु'' शब्द का उच्चारण करते ही मुझे श्री साई की स्मृति आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे स्वयं मेरे सामने खड़े है और मेरे मस्तक पर उदी लगा रहे हैं। देखो, देखो, वे अब अपना वरद्-हस्त उठाकर मेरे मस्तक पर रख रहे हैं। अब मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। मेरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे है। सद्‌गुरु के कर-स्पर्श की शक्ति महान् आश्चर्यजनक है। लिंग (सुक्ष्म) शरीर, जो संसार को भस्म करने वाली अग्नि से भी नष्ट नहीं होता है, वह गुरु के कर-स्पर्श से पलभर मे नष्ट हो जाता है। अनेक जन्मों के समस्त पाप नष्ट हो जाते है। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें धार्मिक और ईश्वरीय प्रसंगो में पूर्ण अरुचि है, उनके भी मन स्थिर हो जाते हैं। श्री साईबाबा के मनोहर रूप के दर्शन कर कंठ प्रफुल्लता से रुँध जाता है, आँखो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और जब हृदय भावों से भर जाता है, तब सोऽहं भाव की जागृति होकर आत्मानुभव के आनन्द का आभास होने लगता है। मैं और तू का भेद (द्वैतभाव) नष्ट हो जाता है और तत्क्षण ही ब्रह्म के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है। जब मैं धार्मिक ग्रन्थों का पठन करता हूँ तो क्षण-क्षण मे सद्‌गुरु की स्मृति हो आती है। बाबा राम या कृष्ण का रूप धारण कर मेरे सामने खड़े हो जाते है और स्वयं अपनी जीवन-कथा मुझे सुनाने लगते हैं अर्थात् जब मैं भागवत का श्रवण करता हूँ, तब बाबा श्री कृष्ण का स्वरूप धारण कर लेते हैं और तब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे ही

भागवत या भक्तों के कल्याणार्थ उद्धवगीता सुना रहे हैं । जब कभी भी मैं किसी से वार्तालाप किया करता हूँ तो मैं बाबा की कथाओं को ध्यान में लाता हूँ, जिससे उनका उपयुक्त अर्थ समझाने में सफल हो सकूँ । तब एक शब्द या वाक्य की रचना भी नहीं कर पाता हूँ, परन्तु जब वे स्वयं कृपा कर मुझसे लिखवाने लगते हैं, तब फिर उसका कोई अंत नहीं होता । जब भक्तों मे अहंकार की वृद्धि होने लगती हैं तो वे शक्ति प्रदान कर उसे अहंकारशून्य बनाकर अंतिम ध्येय की प्राप्ति कर देते हैं तथा उसे संतुष्ट कर अक्षय सुख का अधिकारी बना देते है । **जो बाबा की नमन कर अनन्य भाव से उनकी शरण जाता है, उसे फिर कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसे सहज ही प्राप्त हो जाते है ।**[१] ईश्वर के पास पहूँचने के चार मार्ग हैं - कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति । इन सबमें भक्तिमार्ग अधिक कंटकाकीर्ण, गड्ढों और खाईयों से परिपूर्ण है । यदि सद्‌गुरु पर विश्वास कर गड्ढों और खाईयों से बचीं और पदानुक्रमण करते हुए सीधे अग्रेसर होते जाओगे तो तुम अपने ध्येय अर्थात् ईश्वर तक आसानी से पहुँच जाओगे । श्री साईबाबा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा है कि स्वयं ब्रह्म और उनकी, विश्व को उत्पत्ति, रक्षण और लय करने आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथकत्व में भी एकत्व है । इसे ही ग्रन्थकारों ने दर्शाया है । भक्तों के कल्याणार्थ श्री साईबाबा ने स्वयं जिन वचनों से आश्वासन दिया था, उनको नीचे उद्धृत किया जाता है -

''मेरे भक्तों के घर अन्न तथा वस्त्रों का कभी अभाव नहीं होगा । यह मेरा वैशिष्ट्ये है कि जो भक्त मेरी शरण आ जाते हैं और अंतःकरण से मेरे उपासक है, उनके कल्याणार्थ मैं सदैव चिंतित रहता हूँ ।[२] कृष्ण भगवान ने भी गीता में यही समझाया है । इसलिये भोजन तथा वस्त्र के लिये अधिक चिंता

१-२. सर्वधर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। - गीता १८/६६

न करो। यदि कुछ माँगने की अभिलाषा है तो ईश्वर को ही माँगो। सांसारिक मान व उपाधियाँ त्यागकर ईशकृपा तथा अभयदान प्राप्त करो और उन्हीं के द्वारा सम्मानित होओ। सांसारिक साधनों से कुपथगामी मत बनो। अपने इष्ट को दृढ़ता से पकड़े रहो। समस्त इन्द्रियों और मन को ईश्वरचिंतन में प्रवृत्त रखो। किसी पदार्थ से आकर्षित न हो, सदैव मेरे स्मरण में मन को लगाये रखो, ताकि वह देह, सम्पत्ति व ऐश्वर्य की ओर प्रवृत्त न हो। तब चित्त स्थिर, शांत व निर्भय हो जाएगा। इस प्रकार की मनः स्थिति प्राप्त होना इस बात का प्रतीक है कि वह सुसंगति में है। यदि चित्त की चंचलता नष्ट न हुई तो उसे एकाग्र नहीं किया जा सकता।''

बाबा के उपर्युक्त शब्दों को उद्धृत कर ग्रन्थकार शिरडी के रामनवमी उत्सव का वर्णन करता है। शिरडी में मनाये जाने वाले उत्सवों में रामनवमी अधिक धूमधाम से मनायी जाती है। अतएव इस उत्सव का पूर्ण विवरण जैसा कि साईलीला-पत्रिका (१९२५) के पृष्ठ १९७ पर प्रकाशित हुआ था, यहाँ संक्षेप में दिया जाता है -

प्रारम्भ

कोपरगाँव में श्री गोपालराव गुंड नाम के एक इन्स्पेक्टर थे। वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी तीन स्त्रियाँ थीं, परन्तु एक के भी संतान न थीं। श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इस हर्ष के उपलक्ष्य में सन १८९७ में उन्हें विचार आया कि शिरडी में मेला अथवा उर्स भरवाना चाहिए। उन्होंने यह विचार शिरडी के अन्य भक्त-तात्या पाटील, दादा कोते पाटील और माधवराव के समक्ष विचारणार्थ प्रकट किया। उन सभी को यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ तथा उन्हें बाबा की भी स्वीकृति और आश्वासन प्राप्त हो गया। उर्स भरने के लिये सरकारी आज्ञा आवश्यक थी। इसलिये एक प्रार्थना-पत्र कलेक्टर के पास भेजा गया, परन्तु ग्राम कुलकर्णी (पटवारी) के आपत्ति उठाने के कारण स्वीकृति प्राप्त न हो सकी। परन्तु बाबा का आश्वासन तो प्राप्त हो ही चुका था, अतः पुनः प्रयत्न करने पर स्वीकृति

प्राप्त हो गई । बाबा की अनुमति से रामनवमी के दिन उर्स भरना निश्चित हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ निष्कर्ष ध्यान में रख कर ही उन्होंने ऐसी आज्ञा दी अर्थात् उर्स व रामनवमी के उत्सवों का एकीकरण तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता, जो भविष्य की घटनाओं से ही स्पष्ट हैकि यह ध्येय पूर्ण सफल हुआ । प्रथम बाधा तो किसी प्रकार हल हुई । अब द्वितीय कठिनाई जल के अभाव की उपस्थित हुई । शिरडी तो एक छोटा सा ग्राम था और पूर्व काल से ही वहाँ जल का अभाव बना रहता था । गाँव में केवल दो कुएँ थे, जिनमें से एक तो प्रायः सूख जाया करता था और दूसरे का पानी खारा था । बाबा ने उसमें फूल डालकर उसके खारे जल को मीठा बना दिया । लेकिन एक कुएँ का जल कितने लोगों को पर्याप्त हो सकता था ? इसलिये तात्या पाटील ने बाहर से जल मँगवाने का प्रबन्ध किया । लकड़ी व बाँसों की कच्ची दुकानें बनाई गईं तथा कुश्तियों का भी आयोजन किया गया । गोपालराव गुंड के एक मित्र दामू-अण्णा कासार अहमदनगर में रहते थे । वे भी संतानहीन होने के कारण दुःखी थे । श्री साईबाबा की कृपा से उन्हें भी एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी । श्री गुंड ने उनसे एक ध्वज देने को कहा । एक ध्वज जागीरदार श्री नानासाहेब निमोणकर ने भी दिया । ये दोनों ध्वज बड़े समारोह के साथ गाँव में से निकाले गए और अंत में उन्हें मस्जिद, जिसे बाबा ''द्वारकामाई'' के नाम से पुकारते थे, उसके कोनों पर फहरा दिया गया । यह कार्यक्रम अभी भी पूर्ववत् ही चल रहा है ।

चन्दन समारोह

इस मेले में एक अन्य कार्यक्रम का भी श्री गणेश हुआ, जो चन्दनोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है । यह कोरहल के एक मुस्लिम भक्त श्री अमीर शक्कर दलाल के मस्तिष्क की सुझ थी । प्रायः इस प्रकार का उत्सव सिद्ध मुस्लिम सन्तों के सम्मान में ही किया जाता है। बहुत-सा चन्दन घिसकर और बहुत सी चन्दन-धूप-थालियों में भरी जाती है तथा लोबान जलाते हैं और अंत में उन्हें मस्जिद में पहुँचा कर जुलूस समाप्त हो जाता है । थालियों का चन्दन और धूप नीम पर और मस्जिद की दीवारों पर डाल दिया जाता है । इस उत्सव

का प्रबन्ध प्रथम तीन वर्षों तक श्री अमीर शक्कर ने किया और उनके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी ने किया। इस प्रकार हिन्दुओं द्वारा ध्वज व मुसलमानों के द्वारा चन्दन का जुलूस एक साथ चलने लगा और अभी तक उसी तरह चल रहा है।

प्रबन्ध

रामनवमी का दिन श्री साईबाबा के भक्तों को अत्यन्त ही प्रिय और पवित्र है। कार्य करने के लिये बहुत से स्वयंसेवक तैयार हो जाते थे और वे मेले के प्रबन्ध में सक्रिय भाग लेते थे। बाहर के समस्त कार्यों का भार तात्या पाटील और भीतर के कार्यों को श्री साईबाबा की एक परम भक्त महिला राधाकृष्णमाई संभालती थीं। इस अवसर पर उनका निवासस्थान अतिथियों से परिपूर्ण रहता और उन्हें सब लोगों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना पड़ता था। साथ ही वे मेले की समस्त आवश्यक वस्तुओं का भी प्रबन्ध करती थीं। दूसरा कार्य जो वे स्वयं खुशी से किया करतीं, वह था मस्जिद की सफाई करना, चूना पोतना आदि। मस्जिद की फर्श तथा दीवारें निरन्तर धूनी जलने के कारण काली पड़ गयी थीं। जब रात्रि का बाबा चावड़ी में विश्राम करने चले जाते, तब वे यह कार्य कर लिया करती थीं। समस्त वस्तुएँ धूनी सहित बाहर निकालनी पड़ती थीं और सफाई व पुताई हो जाने के पश्चात् पूर्ववत् सजा दी जाती थीं। बाबा का अत्यन्त प्रिय कार्य गरीबों को भोजन कराना भी इस कार्यक्रम का एक अंग था। इस कार्य के लिये वृहद् भोज का आयोजन किया जाता था और अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनाई जाती थीं। यह सब कार्य राधाकृष्णमाई के निवासस्थान पर ही होता था। बहुत से धनाढ्य व श्रीमंत भक्त इस कार्य में आर्थिक सहायता पहुँचाते थे।

उर्स का रामनवमी के त्योहार में समन्वय

सब कार्यक्रम इसी तरह उत्तम प्रकार से चलता रहा और मेले का महत्व शनैः शनैः बढ़ता ही गया। सन १९११ में एक परिवर्तन हुआ। एक भक्त कृष्णराव जोगेश्वर भीष्म (श्री साई सगुणोपासना के लेखक) अमरावती के

दादासाहेब खापर्डे के साथ मेले के एक दिन पूर्व शिरडी के दीक्षित-वाड़े में ठहरे । जब वे दालान में लेटे हुए विश्राम कर रहे थे, तब उन्हें एक कल्पना सूझी । इसी समय श्री लक्ष्मणराव उपनाम काका महाजनी पूजन-सामग्री लेकर मस्जिद की ओर जा रहे थे । उन दोनों मे विचार-विनिमय होने लगा और उन्होंने सोचा कि शिरडी में उर्स व मेला ठीक रामनवमी के दिन ही भरता है, इसमें अवश्य ही कोई गुढ़ रहस्य निहित है । रामनवमी का दिन हिन्दुओं को बहुत ही प्रिय है । कितना अच्छा हो, यदि रामनवमी उत्सव (अर्थात् श्री राम का जन्म दिवस) का भी श्री गणेश कर दिया जाए ? काका महाजनी को यह विचार रुचिकर प्रतीत हुआ । अब मुख्य कठिनाई हरिदास के मिलने की थी, जो इस शुभ अवसर पर किर्तन व ईश्वर-गुणानुवाद कर सकें । परन्तु भीष्म ने इस समस्या को हल कर दिया । उन्होनें कहा कि मेरा स्वरचित ''राम आख्यान'', जिसमें रामजन्म का वर्णन है, तैयार हो चुका है । मैं उसका ही कीर्तन करूँगा और तुम हारमोनियम पर साथ करना तथा राधाकृष्णमाई सुंठवडा (सोंठ और शक्कर मिश्रित चूर्ण) तैयार कर देंगी । तब वे दोनों शीघ्र ही बाबा की स्वीकृति प्राप्त करने हेतु मस्जिद को गए । बाबा तो अंतर्यामी थे । उन्हें तो सब ज्ञान था कि वाड़े में क्या-क्या हो रहा है । बाबा ने महाजनी से प्रश्न किया कि ''वहाँ क्या चल रहा था ?'' इस आकस्मिक प्रश्न से महाजनी घबड़ा गए और बाबा के शब्दों का अभिप्राय न समझ सकने के कारण वे स्तब्ध होकर खड़े रह गए । तब बाबा ने भीष्म से पूछा कि ''क्या बात है?'' भीष्म ने रामनवमी-उत्सव मनाने का विचार बाबा के समक्ष प्रस्तुत किया तथा स्वीकृति देने की प्रार्थना की । बाबा ने भी सहर्ष अनुमति दे दी । सभी भक्त हर्षित हुये और रामजन्मोत्सव मनाने की तैयारियाँ करने लगे । दूसरे दिन रंग-बिरंगी झंडियों से मस्जिद सजा दी गई । श्रीमती राधाकृष्णमाई ने एक झूला लाकर बाबा के आसन के समक्ष रख दिया और फिर उत्सव प्रारम्भ हो गया । भीष्म कीर्तन करने को खड़े हो गए और महाजनी हारमोनियम पर उनका साथ करने लगे । तभी बाबा ने महाजनी को बुलावा भेजा । यहाँ महाजनी शंकित थे कि बाबा उत्सव मनाने को आज्ञा देंगे भी या नहीं । परन्तु

जब वे बाबा के समीप पहूँचे तो बाबा ने उनसे प्रश्न किया ''यह सब क्या हैं, यह झूला क्यों रखा गया है?'' महाजनी ने बतलाया कि रामनवमी का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया है और इसी कारण यह पालना यहाँ रखा गया है। बाबा ने निम्बर पर से दो हार उठाये। उनमें से एक हार तो उन्होंने काकाजी के गले में डाल दिया तथा दूसरा भीष्म के लिये भेज दिया। अब कीर्त्तन प्रारम्भ हो गया था। कीर्त्तन समाप्त हुआ, तब ''श्री राजाराम'' की उच्च स्वर से जयजयकार हुई, कीर्तन के स्थान पर गुलाल की वर्षा की गई। जब हर कोई प्रसन्नता से झूम रहा था, तब अचानक ही एक गरजती हुई ध्वनि उनके कानों पर पड़ी वस्तुतः जिस समय गुलाल की वर्षा हो रही थी तो उसके कुछ कण अनायास की बाबा की आँख में चले गए। तब बाबा एकदम क्रुद्ध होकर उच्च स्वर में अपशब्द कहने व कोसने लगे। यह दृश्य देखकर सब लोग भयभीत होकर सिटपिटाने लगे। बाबा के स्वभाव से भली-भाँति परिचित अंतरंग भक्त भला इन अपशब्दों का कब बुरा माननेवाले थे ? बाबा के इन शब्दों तथा वाक्यों को उन्होंने आशीर्वाद समझा। उन्होंने सोचा कि आज राम का जन्मदिन है, अतः रावण का नाश, अहंकार एवं दुष्ट प्रवृत्तिरूपी राक्षसों के संहार के लिये बाबा को क्रोध उत्पन्न होना सर्वथा उचित ही है। इसके साथ-साथ उन्हें यह विदित था कि जब कभी भी शिरडी में कोई नवीन कार्यक्रम रचा जाता था, तब बाबा इसी प्रकार कुपित हो ही जाया करते थे। इसलिये वे सब स्तब्ध ही रहे। इधर राधाकृष्णमाई भी भयभीत थीं कि कहीं बाबा झूला न तोड़-फोड़ डालें, इसलिये उन्होंने काका महाजनी से झूला हटाने के लिए कहा। परन्तु बाबा ने ऐसा करने से उन्हें रोका। कुछ समय पश्चात् बाबा शांत हो गए और उसी दिन की महापूजा और आरती का कार्यक्रम समाप्त हो गया। उसके बाद काका महाजनी ने बाबा से झूला उतारने की अनुमति माँगी। परन्तु बाबा ने अस्वीकृत करते हुये कहा कि अभी उत्सव सम्पूर्ण नहीं हुआ है। अगले दिन गोपालकाला उत्सव मनाया गया, जिसके पश्चात् बाबा ने झूला उतारने की आज्ञा दे दी। उत्सव में दही मिश्रित पौहा एक मिट्टी के बर्तन में लटका दिया जाता है और कीर्तन समाप्त होने पर वह बर्तन फोड़ दिया जाता है,

और प्रसाद के रूप में वह पौहा सब को वितरित कर दिया जाता है, जिस प्रकार कि श्रीकृष्ण ने ग्वालों के साथ किया था। रामनवमी उत्सव इसी तरह दिन भर चलता रहा। दिन के समय दो ध्वजों का जुलूस और रात्रि के समय चन्दन का जुलूस बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ निकाला गया। इस समय के पश्चात् ही उर्स रामनवमी में परिवर्तित हो गया। अगले वर्ष (सन् १९१२) से रामनवमी के कार्यक्रमों की सूची में वृद्धि होने लगी। श्रीमती राधाकृष्णमाई ने चैत्र की प्रतिपदा से नामसप्ताह प्रारम्भ कर दिया। (लगातार दिन-रात सात दिन तक भगवत् नाम लेना ''नामसप्ताह'' कहलाता है।) सब भक्त इसमें बारी-बारी से भाग लेते थे। वे भी प्रातःकाल सम्मिलित हो जाया करती थीं। देश के सभी भागों में रामनवमी का उत्सव मनाया जाता है। इसलिये अगले वर्ष हरिदास के मिलने की कठिनाई पुनः उपस्थित हुई, परन्तु उत्सव के पूर्व ही यह समस्या हल हो गई। पाँच-छः दिन पूर्व श्री महाजनी की बाला बुवा से अकस्मात् भेंट हो गई। बुवासाहेब ''आधुनिक तुकाराम'' के नाम से प्रसिद्ध थे और इस वर्ष कीर्तन का कार्य उन्हें ही सौंपा गया। अगले वर्ष सन् १९१३ में श्री हरिदास (सातारा जिले के बाला बुवा सातारकर) बृहद्सिद्ध कवटे ग्राम में प्लेग का प्रकोप होने के कारण अपने गाँव में हरिदास का कार्य नही कर सकते थे। इस वर्ष वे शिरडी में आए। काकासाहेब दीक्षित ने उनके कीर्तन के लिये बाबा से अनुमति प्राप्त की। बाबा ने भी उन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया। सन् १९१४ से हरिदास की कठिनाई बाबा ने सदैव के लिये हल कर दी। उन्होंने यह कार्य स्थायी रूप से दासगणु महाराज को सौंप दिया। तब से वे इस कार्य को उत्तम रीति से सफलता और विद्वत्तापूर्वक पूर्ण लगन से निभाते रहे। सन् १९१२ से उत्सव के अवसर पर लोगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। चैत्र शुक्ल अष्टमी से द्वादशी तक शिरडी में लोगों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो जाया करती थी, मानो मधुमक्खी का छत्ता ही लगा हो। दुकानों की संख्या मे वृद्धि हो गई। प्रसिद्ध पहलवानों की कुश्तियाँ होने लगी। गरीबों को वृहद् स्तर पर भोजन कराया जाने लगा। राधाकृष्णमाई के घोर परिश्रम के फलस्वरूप शिरडी को संस्थान का रूप

मिला । सम्पत्ति भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी । एक सुन्दर घोड़ा, पालकी, रथ और चाँदी के अन्य वस्तूं, बर्तन, पात्र, शीशे इत्यादि भक्तों ने उपहार में भेंट किये । उत्सव के अवसर पर हाथी भी बुलाया जाता था । यद्यपि सम्पत्ति बहुत बढ़ी, परन्तु बाबा उन सबसे सदा निरपेक्ष ही रहते थे । वे सदैव उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते और सदैव की भाँति ही साधारण वेशभूषा धारण करते थे । यह ध्यान देने योग्य है कि जुलूस तथा उत्सव में हिन्दू और मुसलमान् दोनों ही साथ-साथ कार्य करते थे । परन्तु आज तक न उनमें कोई विवाद हुआ और न कोई मतभेद ही । पहलेपहल तो लोगों की संख्या ५०००-७००० के लगभग ही होती थी । परन्तु किसी-किसी वर्ष तो यह संख्या ७५,००० तक पहुँच जाती थी । फिर भी न कभी कोई बीमारी फैली और न ही कोई दंगा हुआ ।

मस्जिद का जीर्णोद्धार

जिस प्रकार उर्स या मेला लगाने का विचार प्रथमतः श्री गोपाल गुंड को आया था, उसी प्रकार मस्जिद के जीर्णोद्धार का विचार भी प्रथमतः उन्हें ही आया । उन्होंने इस कार्य के निमित्त पत्थर एकत्रित कर उन्हें वर्गाकार करवाया । परन्तु इस कार्य का श्रेय उन्हें प्राप्त नहीं होना था । वह सुयश तो नानासाहेब चाँदोरकर के लिये ही सुरक्षित था और फर्श का कार्य काकासाहेब दीक्षित के लिये । प्रारम्भ में बाबा ने इन कार्यों के लिये स्वीकृति नहीं दी, परन्तु स्थानीय भक्त म्हालसापति के आग्रह करने से बाबा की स्वीकृति प्राप्त हो गई और एक रात में ही मस्जिद का पूरा फर्श बन गया । अभी तक बाबा एक टाट के टुकड़े पर ही बैठते थे । अब उस टाट के टुकड़े को वहाँ से हटाकर, उसके स्थान पर एक छोटी सी गद्दी बिछा दी गई । सन् १९११ में सभामंडप भी घोर परिश्रम के उपरांत ठीक हो गया । मस्जिद का आँगन बहुत छोटा तथा असुविधाजनक था । काकासाहेब दीक्षित आँगन को बढ़ाकर उसके ऊपर छप्पर बनवाना चाहते थे । यथेष्ट द्रव्यराशि व्यय कर उन्होंने लोहे के खम्भे, बल्लियाँ व कैंचियाँ मोल लीं और कार्य भी प्रारम्भ हो गया । दिन-रात परिश्रम कर भक्तों ने लोहे के खम्भे जमीन में गाड़े । जब दूसरे दिन बाबा चावड़ी से

लौटे, उन्होंने उन खम्भों को उखाड़ कर फेंक दिया और अति क्रोधित हो गए। वे एक हाथ से खंबा पकड़ कर उसे उखाड़ने लगे और दूसरे हाथ से उन्होंने तात्या का साफा उतार लिया और उसमें आग लगाकर गड्ढे में फेंक दिया। बाबा के नेत्र जलते हुए अंगारे के सदृश लाल हो गए। किसी को भी उनकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस नहीं होता था। सभी बुरी तरह भयभीत होकर विचलित होने लगे कि अब क्या होगा ? भागोजी शिंदे (बाबा के एक कोढ़ी भक्त) कुछ साहस कर आगे बढ़े, पर बाबा ने उन्हें धक्का देकर पीछे ढकेल दिया। माधवराव की भी वही गति हुई। बाबा उनके ऊपर भी ईंट के ढेले फेंकने लगे। जो भी उन्हें शान्त करने गया, उसकी वही दशा हुई।

कुछ समय के पश्चात् क्रोध शांत होने पर बाबा ने एक दुकानदार को बुलाया और एक ज़रीदार साफा खरीद कर अपने हाथों से उसे तात्या के सिर पर बाँधने लगे, जैसे उन्हें विशेष सम्मान दिया गया हो। यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ। वे समझ नहीं पा रहे थे कि किस अज्ञात कारण से बाबा इतने क्रोधित हुए। उन्होंने तात्या को क्यों पीटा और तत्क्षण ही उनका क्रोध क्यों शांत हो गया ? बाबा कभी-कभी अति गंभीर तथा शांत मुद्रा में रहते थे और बड़े प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। परन्तु अनायास ही बिना किसी गोचर कारण के वे क्रोधित हो जाया करते थे। ऐसी घटनाएँ देखने में आ चुकी है, परन्तु मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि उनमें से कौन सी लिखूँ और कौन सी छोड़ूँ। अतः जिस क्रम से वे याद आती जाएँगी, उसी प्रकार उनका वर्णन किया जाएगा। अगले अध्याय में बाबा यवन हैं या हिन्दू, इसका विवेचन किया जाएगा तथा योग, साधन, शक्ति और विषयों पर भी विचार किया जाएगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायणः प्रथम विश्राम

अध्याय-७

अद्‌भुत अवतार, श्री साईबाबा की प्रकृति, उनकी यौगिक क्रियाएँ, उनकी सर्वव्यापकता, कुष्ठ रोगी की सेवा, खापर्डे के पुत्र को प्लेग, पंढरपुर गमन, अद्‌भुत अवतार।

श्री साईबाबा समस्त यौगिक क्रियाओं में पारंगत थे। छः प्रकार की क्रियाओं के तो वे पूर्ण ज्ञाता थे। छः क्रियाएँ, जिनमें धौति (एक ३'' चौड़े व २२ १/२'' लम्बे कपड़े के भीगे हुए टुकड़े से पेट को स्वच्छ करना), खण्ड योग (अर्थात् अपने शरीर के अवयवों को पृथक्-पृथक् कर उन्हें पुनः पूर्ववत् जोड़ना) और समाधि आदि भी सम्मिलित हैं। यदि कहा जाए कि वे हिन्दू थे तो आकृति से वे यवन-से प्रतीत होते थे। कोई भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता था कि वे हिन्दू थे या यवन। वे हिन्दुओं का रामनवमी उत्सव यथाविधि मनाते थे और साथ ही मुसलमानों का चन्दनोत्सव भी। वे उत्सव में कुस्ती को प्रोत्साहन तथा विजेताओं को पर्याप्त पुरस्कार देते थे। गोकुल अष्टमी को वे ''गोपाल-काला'' उत्सव भी बड़ी धूमधाम से मनाते थे। ईद के दिन वे मुसलमानों को मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिये आमंत्रित किया करते थे। एक समय मुहर्रम के अवसर पर मुसलमानों ने मस्जिद में ताज़िये बनाने तथा कुछ दिन वहाँ रखकर फिर जुलूस बनाकर गाँव से निकालने का कार्यक्रम रचा। श्री साईबाबा ने केवल चार दिन ताज़ियों को वहाँ रखने दिया और बिना किसी राग-द्वेष के पाँचवें दिन वहाँ से हटवा दिया।

यदि कहें कि वे यवन थे तो उनके कान (हिन्दुओं की रीति के अनुसार) छिदे हुए थे और यदि कहें कि वे हिन्दू थे तो वे सुन्ता कराने के पक्ष में थे। (नानासाहेब चाँदोरकर, जिन्होंने उनको बहुत समीप से देखा था, उन्होंने बतलाया कि उनकी सुन्नत नहीं हुई थी। साईलीला-पत्रिका श्री बी.व्ही. देव

द्वारा लिखित शीर्षक ''बाबा यवन कि हिन्दू'' पृष्ठ ५६२ देखो ।) यदि कोई उन्हें हिन्दू घोषित करें तो वे सदा मस्जिद में निवास करते थे और यदि यवन कहें तो वे सदा वहाँ धूनी प्रज्वलित रखते थे तथा अन्य कर्म, जो इस्लाम धर्म के विरुद्ध है, जैसे-चक्की पीसना, शंख तथा घंटानाद, होम आदि कर्म करना, अन्नदान और अर्घ्य द्वारा पूजन आदि सदैव वहाँ चलते रहते थे।

यदि कोई कहे कि वे यवन थे तो कुलीन ब्राह्मण और अग्निहोत्री भी अपने नियमों का उल्लंघन कर सदा उनको साष्टांग नमस्कार किया करते थे । जो उनके स्वदेश का पता लगाने गए, उन्हें अपना प्रश्न ही विस्मृत हो गया और वे उनके दर्शनमात्र से मोहित हो गए । अस्तु इसका निर्णय कोई न कर सका कि यथार्थ में साईबाबा हिन्दू थे या यवन । इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जो अहं व इन्द्रियजन्य सुखों को तिलांजलि देकर ईश्वर की शरण में आ जाता है तथा जब उसे ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है, तब उसकी कोई जाति-पाँति नहीं रह जाती । इसी कोटि में श्री साईबाबा थे । वे जातियों और प्राणियों में किंचित् मात्र भी भेदभाव नहीं रखते थे । फकीरों के साथ वे आमिष और मछली का सेवन भी कर लेते थे । कुत्ते भी उनके भोजन-पात्र में मुँह डालकर स्वतंत्रतापूर्वक खाते थे, परन्तु उन्होंने कभी कोई आपत्ति नहीं की । ऐसा अपूर्व और अद्भुत श्री साईबाबा का अवतार था ।

गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप मुझे भी उनके श्री चरणों के समीप बैठने और उनका सत्संग-लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मुझे जिस आनन्द व सुख का अनुभव हुआ, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? यथार्थ में बाबा अखण्ड सच्चिदानंद थे । उनकी महानता और अद्वितीयता का बयान कौन कर सकता हैं ? जिसने उनके श्रीचरण-कमलों की शरण ली, उसे साक्षात्कार की प्राप्ति हुई । अनेक संन्यासी, साधक और मुमुक्षुजन भी श्री साईबाबा के पास आया करते थे । बाबा भी सदैव उनके साथ चलते-फिरते, उठते-बैठते, उनसे वार्तालाप कर उनका चित्तरंजन किया

करते थे । ‘‘अल्लाह मालिक’’ सदैव उनके होठों पर था । वे कभी भी विवाद और मतभेद में नही पड़ते थे तथा सदा शान्त और स्थिर रहते थे । परन्तु कभी-कभी वे क्रोधित हो जाया करते थे । वे सदैव ही वेदान्त की शिक्षा दिया करते थे । कोई भी अन्त तक न जान सका कि श्री साईबाबा वास्तव में कौन थे ? अमीर और गरीब दोनों उनके लिए एक समान थे । वे लोगों के गुह्य व्यापार को पूर्णतया जानते थे और जब वे रहस्य प्रकट करते तो सब विस्मित हो जाते थे । स्वयं ज्ञानावतार होकर भी वे सदैव अज्ञानता का प्रदर्शन किया करते थे । उन्हें आदरसत्कार से सदैव अरुचि थी । इसी प्रकार का श्री साईबाबा का वैशिष्ट्य था । थे तो वे शरीरधारी, परन्तु कर्मों से उनकी ईश्वरीयता स्पष्ट झलकती थी । शिरडी के सकल नर-नारी उन्हें परब्रह्म ही मानते थे ।

बाबा की प्रकृति

मै मूर्ख जो हूँ, श्री साईबाबा की अद्भुत लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता । शिरडी के प्रायः समस्त मंदिरों का उन्होंने जीर्णोद्धार किया । श्री तात्या पाटील के द्वारा शनि, गणपति, शंकर, पार्वती, ग्राम्यदेवता और हनुमानजी आदि के मंदिर ठीक करवाये । उनका दान भी विलक्षण था । दक्षिणा के रूप में जो धन एकत्रित होता था, उसमें से वे किसी को बीस रुपये, किसी को पंद्रह रुपये या किसी को पचास रुपये, इस प्रकार प्रतिदिन स्वच्छतापूर्वक वितरण कर देते थे । प्राप्तिकर्ता उसे शुद्ध दान समझता था । बाबा की भी सदैव यही इच्छा थी कि उसका उपयुक्त रीति से व्यय किया जाए ।

बाबा के दर्शन से भक्तों को अनेक प्रकार का लाभ पहुँचता था । अनेकों निष्कपट और स्वस्थ बन गए, दुष्टात्मा पुण्यात्मा में परिणत हो गए, अनेकों कुष्ठरोग से मुक्त हो गए और अनेकों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई, पंगुओं की पंगुता नष्ट हो गई । उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैलती गई और भिन्न-भिन्न स्थानों से यात्रियों के झुंड के झुंड शिरडी आने लगे । बाबा सदा धूनी के पास ही आसन जमाये रहते और वहीं विश्राम किया करते थे । वे कभी

स्नान करते और कभी स्नान किये बिना ही समाधि में लीन रहते थे। वे सिर पर एक साफा, कमर में एक धोती और तन ढँकने के लिये एक कफनी धारण करते थे। प्रारम्भ से ही उनकी वेशभूषा इसी प्रकार थी। अपने जीवनकाल के पूर्वार्द्ध में वे गाँव में चिकित्साकार्य भी किया करते थे। रोगियों को निदान कर उन्हें औषधि भी देते थे और उनके हाथ में अपिरमित यश था। इस कारण से वे अल्पकाल में ही योग्य चिकित्सक विख्यात हो गए। यहाँ केवल एक ही घटना का उल्लेख किया जाता है, जो बड़ी विचित्र-सी है।

विलक्षण नेत्र चिकित्सा

एक भक्त की आँखे बहुत लाल हो गई थीं। उनमें सूजन भी आ गई थी। शिरडी सरीखे छोटे ग्राम में डॉक्टर कहाँ ? तब भक्तगण ने रोगी को बाबा के समक्ष उपस्थित किया। इस प्रकार की पीड़ा में डॉक्टर प्रायः लेप, मरहम, अंजन, गाय का दूध तथा कर्पूरयुक्त औषधियों को प्रयोग मे लाते हैं। पर बाबा की औषधि तो सर्वथा ही भिन्न थी। उन्होंने भिलावाँ पीस कर उसकी दो गोलियाँ बनायीं और रोगी के नेत्रों मे एक-एक गोली चिपका कर कपड़े की पट्टी से आँखे बाँध दीं। दूसरे दिन पट्टी हटाकर नेत्रों के ऊपर जल के छीटें छोड़े गए। सूजन कम हो गई और नेत्र प्रायः नीरोग हो गए। नेत्र शरीर का एक अति सुकोमल अंग है, परन्तु बाबा की औषधि से कोई हानि नहीं पहुँची, बल्कि नेत्रों की व्याधि दूर हो गई। इस प्रकार अनेक रोगी नीरोग हो गए। यह घटना तो केवल उदाहरणस्वरूप ही यहाँ दी गई है।

बाबा की यौगिक क्रियाएँ

बाबा को समस्त यौगिक प्रयोग और क्रियाएँ ज्ञात थीं। उनमें से केवल दो का ही उल्लेख यहाँ किया जाता है :-

(१) **धौति क्रिया** (आँतें स्वच्छ करने की क्रिया) प्रति तीसरे दिन बाबा मस्जिद से पर्याप्त दूरी पर, एक वट वृक्ष के नीचे किया करते थे। एक अवसर पर लोगों ने देखा कि उन्होंने अपनी आँतों को उदर से बाहर निकालकर उन्हें

चारों ओर से स्वच्छ किया और समीप के वृक्ष पर सूखने के लिये रख दिया। शिरडी में इस घटना की पुष्टि करने वाले लोग अभी भी जीवित हैं। उन्होंने इस सत्य की परीक्षा भी की थी।

साधारण धौति क्रिया एक ३’’ चौड़े व २२ १/२’’ फुट लम्बे गीले कपड़े के टुकड़े से की जाती है। इस कपड़े को मुँह के द्वारा उदर में उतार लिया जाता है तथा उसे लगभग आधा घंटे तक रखे रहते है, ताकि उसका पूरा-पूरा प्रभाव हो जाए। तत्पश्चात् उसे बाहर निकाल लेते हैं। पर बाबा की तो यह धौति क्रिया सर्वथा विचित्र और असाधारण ही थी।

(२) **खण्डयोग** - एक समय बाबा ने अपने शरीर के अवयव पृथक्-पृथक् कर मस्जिद के भिन्न-भिन्न स्थानों में बिखेर दिये। अकस्मात् उसी दिन एक महाशय मस्जिद में पधारे और अंगों को इस प्रकार यहाँ-वहाँ बिखरा देखकर बहुत ही भयभीत हुए। पहले उनकी इच्छा हुई कि ग्राम अधिकारी को यह सुचना देनी चाहिए कि किसी ने बाबा का खून कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। परन्तु सूचना देने वाला ही पहले पकड़ा जाता है, यह सोचकर वे मौन रहे। दूसरे दिन जब वे मस्जिद में गए तो बाबा को पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि पिछले दिन जो दृश्य देखा था, वह कहीं स्वप्न तो नहीं था ?

बाबा बाल्याकाल से ही यौगिक क्रियाएँ किया करते थे और उन्हें जो अवस्था प्राप्त हो चुकी थी, उसका सत्य ज्ञान किसी को भी नहीं था। चिकित्सा के नाम से उन्होंने कभी किसी से एक पैसा भी स्वीकार नहीं किया। अपने उत्तम लोकप्रिय गुणों के कारण उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने अनेक निर्धनों रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया। इस प्रसिद्ध डॉक्टरों के डॉक्टर (मसीहों के मसीहा) ने कभी अपने स्वार्थ की चिन्ता न कर अनेक विघ्नों का सामना किया तथा स्वयं असहनीय वेदना और कष्ट सहन कर सदैव दूसरों की भलाई की और उन्हें विपत्तियों में सहायता पहुँचाई। वे सदा

परकल्याणार्थ चिंतित रहते थे। ऐसी ही एक घटना नीचे दियी है, जो उनकी सर्वव्यापकता तथा महान् दयालुता की द्योतक हैं।

बाबा की सर्वव्यापकता और दयालुता

सन् १९१० में बाबा दीपावली के शुभ अवसर पर धूनी के समीप बैठे हुए अग्नि ताप रहे थे तथा साथ ही धूनी में लकड़ी डालते जा रहे थे। धूनी प्रचण्डता से प्रज्ज्वलित थी। कुछ समय पश्चात् उन्होंने लकड़ियाँ डालने के बदले अपना हाथ धूनी में डाल दिया। हाथ बुरी तरह से झुलस गया। नौकर माधव और माधवराव देशपांडे ने बाबा को धूनी में हाथ डालते देखकर तुरन्त दौड़कर उन्हें बलपूर्वक पीछे खींच लिया।

माधवराव ने बाबा से कहा, ''देवा ! आपने ऐसा क्यों किया ?'' बाबा सावधान होकर कहने लगे, ''यहाँ से कुछ दूरी पर एक लुहारिन जब भट्टी धौंक रही थी, उसी समय उसके पति ने उसे बुलाया। कमर पर बैठे हुए शिशु का ध्यान छोड़ वह शीघ्रता से वहाँ दौड़कर गई। अभाग्यवश शिशु फिसल कर भट्टी में गिर पड़ा। मैंने तुरन्त भट्टी में हाथ डालकर शिशु के प्राण बचा लिये। मुझे अपना हाथ जल जाने का कोई दुःख नहीं है, परन्तु मुझे संतोष है कि एक मासूम शिशु के प्राण बच गए।''

कुष्ठ रोगी की सेवा

माधवराव देशपांडे के द्वारा बाबा का हाथ जल जाने का समाचार पाकर श्री नानासाहेब चाँदोरकर, बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉक्टर श्री परमानंद के साथ दवाइयाँ, लेप, लिंट मरहम तथा पट्टियाँ आदि साथ लेकर शीघ्रता से शिरडी आए। उन्होंने बाबा से डॉक्टर परमानन्द को हाथ की जाँच करने और जले हुए स्थान में दवा लगाने की अनुमति माँगी। यह प्रार्थना अस्वीकृत हो गई। हाथ जल जाने के पश्चात् एक कुष्ठरोग-पीड़ित भक्त भागोजी शिंदे उनके हाथ पर सदैव पट्टी बाँधते थे। उनका कार्य था प्रतिदिन जले हुए स्थान पर घी

मलना और उसके ऊपर एक पत्ता रखकर पट्टियों से उसे पुनः पूर्ववत् कस कर बाँध देना । घाव शीघ्र भर जाए, इसके लिये नानासाहेब चाँदोरकर ने पट्टी छोड़ने तथा डॉ. परमानन्द से जाँच व चिकित्सा कराने का बाबा से बार-बार अनुरोध किया। डॉ. परमानन्द ने भी अनेक बार प्रार्थना की, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए टाल दिया कि केवल अल्लाह ही मेरा डॉक्टर है । उन्होंने हाथ का परीक्षण करवाना अस्वीकार कर दिया । डॉ. परमानन्द की दवाइयाँ शिरडी के वायुमंडल में न खुल सकीं और न उनका उपयोग हो सका । फिर भी डॉक्टर साहब का परम भाग्य था, जो उन्हें बाबा के दर्शन का लाभ हुआ । भागोजी को दवा लगाने की अनुमति मिल गई । कुछ दिनों के उपरांत जब घाव भर गया, तब सब भक्त सुखी हो गए, परन्तु प्रतिदिन प्रातःकाल घृत से हाथ की मालिश और पुनः कस कर पट्टी बाँधना-श्रीसाईबाबा की समाधि पर्यन्त यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा । श्रीसाईबाबा सदृश पूर्ण सिद्ध को, यथार्थ में इस चिकित्सा की भी कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भक्तों के प्रेमवश, उन्होंने भागोजी की यह सेवा (अर्थात् उपासना) निर्विघ्न स्वीकार की । जब बाबा लेण्डी को जाते तो भागोजी छाता लेकर उनके साथ ही जाते थे । प्रतिदिन प्रातःकाल जब बाबा धूनी के पास आसन पर विराजते, तब भागोजी वहाँ पहले से ही उपस्थित रहकर अपना कार्य प्रारम्भ कर देते थे । भागोजी ने पिछले जन्म में अनेक पाप-कर्म किये थे । इस कारण वे कुष्ठ रोग से पीड़ित थे । उनकी उँगलियाँ गल चुकी थीं और शरीर पीप आदि से भरा हुआ था, जिससे दुर्गन्ध भी आती थी । यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे दुर्भागी प्रतीत होते थे, परन्तु बाबा का प्रधान सेवक होने के नाते, यथार्थ में वे ही अधिक भाग्यशाली तथा सुखी थे । उन्हें बाबा के सान्निध्य का पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ ।

बालक खापर्डे का प्लेग

अब मैं बाबा की एक दूसरी अद्भुत लीला का वर्णन करूँगा । श्रीमती खापर्डे (अमरावती के श्री दादासाहेब खापर्डे की धर्मपत्नी) अपने छोटे पुत्र के

साथ कई दिनों से शिरडी में थीं । पुत्र तीव्र ज्वर से पीड़ित था, पश्चात् उसे प्लेग की गिल्टी (गाँठ) भी निकल आयी । श्रीमती खापर्डे भयभीत हो बहुत घबराने लगीं और अमरावती लौट जाने का विचार करने लगीं । संध्या-समय जब बाबा वायुसेवन के लिए वाड़े (अब जो ''समाधि मंदिर'' कहा जाता है) के पास से जा रहे थे, तब उन्होंने उनसे लौटने की अनुमति माँगी तथा कम्पित स्वर में कहने लगीं कि मेरा प्रिय पुत्र प्लेग से ग्रस्त हो गया है, अतः अब मैं घर लौटना चाहती हूँ । प्रेमपूर्वक उनका समाधान करते हुए बाबा ने कहा, ''आकाश में बहुत बादल छाये हुए हैं । उनके हटते ही आकाश पूर्ववत् स्वच्छ हो जाएगा।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने कमर तक अपनी कफनी ऊपर उठाई और वहाँ उपस्थित सभी लोगों को अंडों के बराबर चार गिल्टियाँ दिखा कर कहा, ''देखो, मुझे अपने भक्तों के लिये कितना कष्ट उठाना पड़ता है । उनके कष्ट मेरे हैं ।'' यह विचित्र और असाधारण लीला देखकर लोगों को विश्वास हो गया कि सन्तों को अपने भक्तों के लिये किस प्रकार कष्ट सहन करने पड़ते है । संतों का हृदय मोम से भी नरम तथा मक्खन जैसा कोमल होता है । वे अकारण ही भक्तों से प्रेम करते और उन्हें अपना निजी सम्बधी समझते है ।

पंढरपूर-गमन और निवास

बाबा अपने भक्तों से कितना प्रेम करते और किस प्रकार उनकी समस्त इच्छाओं तथा समाचारों को पहले से ही जान लेते थे, इसका वर्णन कर मैं यह अध्याय समाप्त करूँगा ।

नानासाहेब चाँदोरकर बाबा के परम भक्त थे । वे खानदेश में नंदूरबार के मामलतदार थे। उनका पंढरपुर को तबादला हो गया और श्री साईबाबा की भक्ति उन्हें फलदायी हो गई, क्योंकि उन्हें पंढरपुर जो भूवैकुण्ठ (पृथ्वी का स्वर्ग) सदृश ही समझा जाता है, उसमें रहने का अवसर प्राप्त हो गया । नानासाहेब को शीघ्र ही कार्यभार संभालना था, इसलिये वे किसी को पूर्व पत्र या सूचना दिये बिना ही शीघ्रता से शिरडी को रवाना हो गए । वे अपने पंढरपुर

(शिरडी) में अचानक ही पहुँचकर अपने विठोबा (बाबा) को नमस्कार कर फिर आगे प्रस्थान करना चाहते थे । नानासाहेब के आगमन की किसी को भी सूचना न थी । परन्तु बाबा तो सर्वज्ञ थे । जैसे ही नानासाहेब नीमगाँव पहुँचे (जो शिरडी से कुछ ही दूरी पर है), बाबा म्हालसापति, अप्पा शिंदे और काशीराम से वार्तालाप कर रहे थे । उसी समय मस्जिद में स्तब्धता छा गई और बाबा ने अचानक ही कहा, ‘‘चलो, चारों मिलकर भजन करें । पंढरपुर के द्वार खुले हुए हैं’’ – यह भजन प्रेमपूर्वक गाएँ । (‘‘पंढरपुरला जायाचें जायाचें तिथेच मजला राह्याचें । तिथेच मजला राह्याचें, घर तें माझ्या रायांचे ।।’’) सब मिलकर गाने लगे । (भावार्थ – ‘‘मुझे पंढरपुर जाकर वहीं रहना है, क्योंकि वह मेरे स्वामी (ईश्वर) का घर है ।’’) बाबा गाते जाते और भक्तगण उसे दुहराते जाते थे । कुछ समय में नानासाहेब ने वहाँ सकुटुम्ब पहुँचकर बाबा को प्रणाम किया । उन्होंने बाबा से पंढरपुर पधारने तथा वहाँ निवास करने की प्रार्थना की । पाठकों ! अब इस प्रार्थना की आवश्यकता ही कहाँ थी ? भक्तगण ने नानसाहेब को बतलाया कि बाबा पंढरपुर वास के भाव में पहले से ही थे । यह सुनकर नानासाहेब द्रवित हो श्री–चरणों पर गिर पड़े और बाबा की आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त कर वे पंढरपुर को रवाना हो गए ।

बाबा की कथायें अनन्त है । अन्य विषय जैसे – मानव जन्म का महत्व, बाबा का भिक्षावृत्ति पर निर्वाह, बायजाबाई की सेवा तथा अन्य कथाओं को अगले अध्याय के लिये शेष रखकर अब मुझे यहाँ विश्राम करना चाहिए ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-८

मानव - जन्म का महत्त्व, श्री साईबाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा-शुश्रुषा, श्री साईबाबा का शयनकक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।

जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है, अब श्री हेमाडपन्त मानव जन्म की महत्ता को विस्तृत रूप में समझाते है । श्री साईबाबा किस प्रकार भिक्षा उपार्जन करते थे, बायजाबाई उनकी किस प्रकार सेवा-शुश्रुषा करती थीं, वे मस्जिद में तात्या कोते और म्हालसापति के साथ किस प्रकार यशन करते तथा खुशालचन्द पर उनका कैसा स्नेह था, इसका आगे वर्णन किया जाएगा।

मानव जन्म का महत्व

इस विचित्र संसार में ईश्वर ने लाखों प्राणियों (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनियों) को उत्पन्न किया है (जिनमें देव, दानव, गन्धर्व, जीवजन्तु और मनुष्य आदि सम्मिलित हैं), जो स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में निवास करते और भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं । इन प्राणियों में **जिनका पुण्य प्रबल है, वे स्वर्ग में निवास करते और अपने सत्कृत्यों का फल भोगते हैं । पुण्य के क्षीण होते ही वे फिर निम्न स्तर में आ जाते हैं; और वे प्राणी, जिन्होंने पाप या दुष्कर्म किये हैं, नरक को जाते हैं और अपने कुकर्मों का फल भोगते हैं। जब उनके पाप और पुण्यों का समन्वय हो जाता हैं । जब पाप और पुण्य दोनों नष्ट हो जाते है, तब वे मुक्त हो जाते हैं ।** अपने कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार ही आत्माएँ जन्म लेतीं या काया-प्रवेश करती हैं ।

मनुष्य शरीर अनमोल

यह सत्य है कि समस्त प्राणियों में चार बातें एक समान हैं - आहार,

निद्रा, भय और मैथुन। मानव प्राणी को ज्ञान एक विशेष देन है, जिसकी सहायता से ही वह ईश्वर-दर्शन कर सकता है, जो अन्य किसी योनि में सम्भव नहीं। यही कारण है कि देवता भी मानव योनि से ईर्ष्या करते हैं तथा पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण करने हेतु सदैव लालायित रहते हैं, जिससे उन्हें अंत मे मुक्ति प्राप्त हो।

किसी-किसी का ऐसा भी मत है कि मानव-शरिर अति दोषयुक्त है। यह कृमि, मज्जा और कफ से परिपूर्ण, क्षण-भंगुर, रोग-ग्रस्त तथा नश्वर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कथन अंशतः सत्य है। परन्तु इतना दोषपूर्ण होते हुए भी मानव-शरीर का मूल्य अधिक है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी योनि में संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ही तो ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर और विश्व परिवर्तनशील है; और इस प्रकार धारणा कर इन्द्रिय-जन्य विषयों को तिलांजलि देकर तथा सत्-असत् का विवेक कर ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। इसलिये यदि हम शरीर को तुच्छ और अपवित्र समझ कर उसकी उपेक्षा करें तो हम ईश्वर के अवसर से वंचित रह जाएँगे। यदि हम उसे मूल्यवान समझ कर उसका मोह करेंगें तो हम इन्द्रिय-सुखों की और प्रवृत्त हो जाएँगे और तब हमारा पतन भी सुनिश्चित ही है।

इसलिये उचित मार्ग, जिसका अवलम्बन करना चाहिए, यह है कि न तो देह की उपेक्षा करो और न ही उसमें आसक्ति रखो। केवल इतना ही ध्यान रहे कि किसी घुड़सवार का अपनी यात्रा में अपने घोड़े पर तब तक ही मोह रहता है, जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर लौट न आए।

इसलिये ईश्वर-दर्शन या आत्मसाक्षात्कार के निमित्त शरीर को सदा ही लगाये रखना चाहिए, जो जीवन का मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात् भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ; कारण यह हैं कि कोई भी प्राणी उसकी अलौकिक रचना और सृष्टि को समझने में समर्थ न हो सका और इसी कारण उसने एक विशेष प्राणी अर्थात्

मानव जाति की उत्पत्ति की, और उसे ज्ञान की विशेष सुविधा प्रदान की । जब ईश्वर ने देखा कि मानव उसकी लीला, अद्भुत रचनाओं तथा ज्ञान को समझने के योग्य है, तब उन्हें अति हर्ष एवं सन्तोष हुआ । (भागवत स्कंध ११-९-२८ के अनुसार) इसलिये मानव जन्म प्राप्त होना बड़े सौभाग्य का सूचक है । उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेना तो परम सौभाग्य का लक्षण है, परन्तु श्री साई-चरणाम्बुजों में प्रीति और उनकी शरणागति प्राप्त होना इन सभी में अति श्रेष्ठ हैं ।

मानव का प्रयत्न

इस संसार में मानव-जन्म अति दुर्लभ है । हर मनुष्य की मृत्यु तो निश्चित ही है और वह किसी भी क्षण उसका आलिंगन कर सकती है । ऐसी ही धारणा कर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति में सदैव तत्पर रहना चाहिए । जिस प्रकार खोये हुये राजकुमार की खोज में राजा प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग में लाता है, इसी प्रकार किंचित् मात्र भी विलंब न कर हमें अपने अभीष्ट की सिद्धी के हेतु शीघ्रता करनी ही सर्वथा उचित है । अतः पूर्ण लगन और उत्सुकतापूर्वक अपने ध्येय, आलस्य और निद्रा को त्याग कर हमें ईश्वर का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए । यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें पशुओं के स्तर पर ही अपने को समझना पड़ेगा ।

कैसे प्रवृत्त होना ?

अधिक सफलतापूर्वक और साक्षात्कार को सुलभ प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है - किसी योग्य संत या सद्गुरु के चरणों की शीतल छाया में आश्रय लेना, जिसे कि ईश्वर- साक्षात्कार हो चुका हो । जो लाभ धार्मिक व्याख्यानों के श्रवण करने और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन करने से प्राप्त नहीं हो सकता, वह इन उच्च आत्मज्ञानियों की संगति से सहज ही प्राप्त हो जाता है । जो प्रकाश हमें सूर्य से प्राप्त होता है, वैसा विश्व के समस्त तारे भी मिल जाएँ तो भी नहीं दे सकते । इसी प्रकार जिस आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि हमें सद्गुरु की कृपा से हो सकती है, वह ग्रन्थों और उपदेशों से किसी प्रकार

संभव नहीं है । उनकी प्रत्येक गतिविधि, मृदु-भाषण, गुह्य उपदेश, क्षमाशीलता, स्थिरता, वैराग्य, दान और परोपकारिता, मानव शरीर का नियंत्रण, अहंकार-शून्यता आदि गुण, जिस प्रकार भी वे इस पवित्र मंगल-विभूति द्वारा व्यवहार में आते हैं, सत्संग द्वारा भक्त लोगों को उसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं । इससे मस्तिष्क की जागृति तथा उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति होती है । श्री साईबाबा इसी प्रकार के एक संत या सद्‌गुरु थे । यद्यपि वे बाह्यरूप से एक फकीर का अभिनय करते थे, परन्तु वे सदैव आत्मलीन रहते थे । वे समस्त प्राणियों से प्रेम करते और उनमें भगवत्-दर्शन का अनुभव करते थे । सुखों का उनको कोई आकर्षण न था और न वे आपत्तियों से विचलित होते थे । उनके लिये अमीर और फकीर दोनों ही एक समान थे । जिनकी केवल कृपा से भिखारी भी राजा बन सकता था, वे शिरडी में द्वार-द्वार घूम कर भिक्षा उपार्जन किया करते थे । यह कार्य वे इस प्रकार करते थे -

बाबा की भिक्षावृत्ति

शिरडीवासियों के भाग्य की कौन कल्पना कर सकता है कि जिनके द्वार पर परब्रह्म भिक्षुक के रूप में खड़े रहकर पुकार करते थे, ''ओ माई ! एक रोटी का टुकड़ा मिले'' और उसे प्राप्त करने के लिये अपना हाथ फैलाते थे । एक हाथ में वे सदा ''टमरेल'' लिये रहते तथा दूसरे में एक ''झोली'' कुछ घरों में तो वे प्रतिदिन ही जाते और किसी-किसी के द्वार पर केवल फेरी ही लगाते थे । वे साग, दूध या छाँछ आदि पदार्थ तो टिनपाट में लेते तथा भात व रोटी आदि अन्य सूखी वस्तुएँ झोली में डाल लेते थे । बाबा की जिह्वा को कोई स्वाद-रुचि न थी, क्योंकि उन्होंने उसे अपने वश में कर लिया था । इसलिये वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं के स्वाद की चिन्ता क्यों करते? जो कुछ भी भिक्षा मे उन्हें मिल जाता, उसे ही वे मिश्रित कर संतोषपूर्वक ग्रहण करते थे ।

अमुक पदार्थ स्वादिष्ट है या नहीं, बाबा ने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया, मानो उनकी जिह्वा में स्वाद बोध ही न हो । वे केवल मध्याह्न तक ही भिक्षा-उपार्जन करते थे । यह कार्य बहुत अनियमित था । किसी दिन तो वे

छोटी-सी फेरी ही लगाते तथा किसी दिन बारह बजे तक। वे एकत्रित भोजन एक कुण्डी में डाल देते, जहाँ कुत्ते, बिल्लियाँ, कौवे आदि स्वतंत्रतापूर्वक भोजन करते थे। बाबा ने उन्हें कभी नहीं भगाया। एक स्त्री भी, जो मस्जिद में झाड़ू लगाया करती थी, रोटी के दस-बारह टुकड़े उठाकर उपने घर ले जाती थी, परंतु किसी ने कभी उसे नहीं रोका। जिन्होंने स्वप्न में भी बिल्लियों और कुत्तों को कभी दुत्कार कर नहीं भगाया, वे भला निस्सहाय गरीबों को रोटी के कुछ टुकड़ो को उठाने से क्यों कर रोकते? ऐसे महान् पुरुष का जीवन धन्य है। शिरडीवासी तो पहलेपहले उन्हे केवल एक ''पागल'' ही समझते थे और वे शिरडी में इसी नाम से विख्यात भी हो गए थे। जो भिक्षा के कुछ टुकड़ो पर निर्वाह करता हो, भला उसका कोई आदर कैसे करता? परंतु ये तो उदार हृदय, त्यागी और धर्मात्मा थे। यद्यपि वे बाहर से चंचल और अशान्त प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से दृढ़ और गंभीर थे। उनका मार्ग गहन तथा गूढ़ था। फिर भी ग्राम में कुछ ऐसे श्रद्धावान् और सौभाग्यशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने उन्हें पहचान कर एक महान् पुरुष माना। ऐसी ही एक घटना नीचे दी जाती है।

बायजाबाई की सेवा

तात्या कोते की माता, जिनका नाम बायजाबाई था, दोपहर के समय एक टोकरी में रोटी और साग लेकर जंगल को जाया करती थीं। वे जंगल में कोसों दूर जातीं और बाबा को ढूंढ़कर उनके चरण पकड़ती थीं। बाबा तो शान्त और ध्यानमग्न बैठे रहते थे। वे एक पत्तल बिछाकर उस पर सब प्रकार के व्यंजनादि जैसे-रोटी, साग आदि परोसतीं और बाबा से भोजन कर लेने के लिये आग्रह करतीं। उनकी सेवा तथा श्रद्धा की रीति बड़ी ही विलक्षण थी - प्रतिदिन दोपहर को जंगल में बाबा को ढूँढ़ना और भोजन के लिये आग्रह करना। उनकी इस सेवा और उपासना की स्मृति बाबा को अपने अन्तिम क्षणों तक बनी रही। उनकी सेवा का ध्यान कर बाबा ने उनके पुत्र को बहुत लाभ पहुँचाया। माँ और बेटे दोनों की ही फकीर पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने बाबा को सदैव ईश्वर के समान ही पूजा। बाबा उनसे कभी-कभी कहा करते

थे कि ''फकीरी ही सच्ची अमीरी है । उसका कोई अन्त नहीं । जिसे अमीरी के नाम से पुकारा जाता है, वह शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाली है ।'' कुछ वर्षो के बाद बाबा ने जंगल में विचरना त्याग दिया । वे गाँव में ही रहने और मस्जिद में ही भोजन करने लगे । इस कारण बायजाबाई को भी उन्हें जंगल में ढूँढ़ने के कष्ट से छुटकारा मिल गया ।

तीनों का शयन–कक्ष

वे सन्त पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में भगवान वासुदेव सदैव वास करते हैं । वे भक्त भी भाग्यशाली हैं, जिन्हें उनका सान्निध्य प्राप्त होता है । ऐसे ही दो भाग्यशाली भक्त थे (१) तात्या कोते पाटील और (२) भगत म्हालसापति। दोनों ने बाबा के सान्निध्य का सदैव पूर्ण लाभ उठाया। बाबा दोनों पर एक समान प्रेम रखते थे । ये तीनों महानुभाव मस्जिद में अपने सिर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की ओर करते और केन्द्र में एक दूसरे के पैर से पैर मिलाकर शयन किया करते थे । बिस्तर में लेटे–लेटे ही वे आधी रात तक प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप और इधर–उधर की चर्चाएँ किया करते थे । यदि किसी को भी निद्रा आने लगती तो दूसरा उसे जगा देता था । यदि तात्या खर्राटे लेने लगते तो बाबा शीघ्र ही उठकर उसे हिलाते और सिर पकड़ कर जोर से दबाते थे । यदि कहीं वह म्हालसापति हुए तो उन्हें भी अपनी ओर खींचते और पैरों पर धक्का देकर पीठ थपथपाते थे । इस प्रकार तात्या ने १४ वर्षों तक अपने माता–पिता को गृह ही पर छोड़कर बाबा के प्रेमवश मस्जिद में निवास किया । कैसे सुहाने दिन थे वे ? उनकी क्या कभी विस्मृति हो सकती है ? उस प्रेम का क्या कहना ? बाबा की कृपा का मूल्य कैसे आँका जा सकता था ? पिता की मृत्यु होने के पश्चात् तात्या पर घरबार की जिम्मेदारी आ पड़ी, इसलिये वे अपने घर जाकर रहने लगे ।

राहता निवासी खुशालचन्द

शिरडी के गणपत तात्या कोते को बाबा बहुत ही चाहते थे । वे राहाता के मारवाड़ी सेठ श्री चन्द्रभान को भी बहुत प्यार करते थे । सेठजी का देहान्त होने के उपरांत बाबा उसके भतीजे खुशालचन्द को भी अधिक प्रेम करते थे ।

वे उनके कल्याण की दिन रात फिक्र किया करते थे । कभी बैलगाड़ी में तो कभी ताँगे में वे अपने अंतरंग मित्रों के साथ राहाता को जाया करते थे । ग्रामवासी बाबा के गाँव के फाटक पर आते ही उनका अपूर्व स्वागत करते और उन्हें प्रणाम कर बड़ी धूमधाम से गाँव में ले जाते थे । खुशालचन्द बाबा को अपने घर ले जाते और कोमल आसन पर बिठाकर उत्तम सुस्वादु भोजन कराते और आनन्द तथा प्रसन्नचित्त से कुछ देर तक वार्त्तालाप किया करते थे । फिर बाबा सबको आनंदित कर और आशीर्वाद देकर शिरडी वापिस लौट आते थे ।

एक ओर राहाता (दक्षिण में) तथा दूसरी ओर नीमगाँव (उत्तर में) था । इन दोनों ग्रामों के मध्य में शिरडी स्थित है । बाबा अपने जीवन काल में कभी भी इन सीमाओं के पार नहीं गए । उन्होंने कभी रेलगाड़ी नहीं देखी और न कभी उसमें प्रवास ही किया, परन्तु फिर भी उन्हें सब गाड़ियों के आवागमन का समय ठीक-ठीक ज्ञात रहता था । जो भक्तगण बाबा से लौटने की अनुमति माँगते और आदेशानुकूल चलते, वे कुशलपूर्वक घर पहूँच जाते थे । परन्तु इसके विपरीत जो अवज्ञा करते, उन्हें दुर्भाग्य व दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता था । इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं और अन्य विषयों का अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाएगा।

विशेष

इस अध्याय के नीचे दी हुई टिप्पणी बाबा के खुशालचन्द पर प्रेम के संबंध में है । किसी प्रकार उन्होंने काकासाहेब दीक्षित को राहाता जाकर खुशालचन्द को लाने को कहा और उसी दोपहर को खुशालचन्द से स्वप्न में शिरडी आने को कहा, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि इसका वर्णन इस सच्चरित्र के ३०वें अध्याय में किया जाएगा ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-९
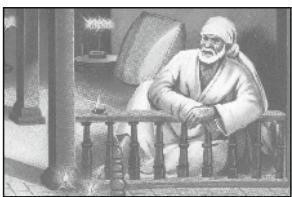
विदा होते समय बाबा की आज्ञा का पालन और अवज्ञा करने के परिणामों के कुछ उदाहरण, भिक्षावृत्ति और उसकी आवश्यकता, भक्तों (तर्खड कुटुम्ब) के अनुभव ।

गत अध्याय के अन्त में केवल इतना ही संकेत किया गया था कि लौटते समय जिन्होंने बाबा के आदेशों का पालन किया, वे सकुशल घर लौटे और जिन्होंने अवज्ञा की, उन्हें दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा । इस अध्याय में यह कथन अन्य कई पुष्टिकारक घटनाओं और अन्य विषयों के साथ विस्तारपूर्वक समझाया जाएगा ।

शिरडी यात्रा की विशेषता

शिरडी यात्रा की एक विशेषता यह थी कि बाबा की आज्ञा के बिना कोई भी शिरडी से प्रस्थान नहीं कर सकता था और यदि किसी ने किया भी, तो मानो उसने अनेक कष्टों को निमंत्रण दे दिया । परन्तु यदि किसी को शिरडी छोड़ने की आज्ञा हुई तो फिर वहाँ उसका ठहरना नहीं हो सकता था । जब भक्तगण लौटने के समय बाबा को प्रणाम करने जाते तो बाबा उन्हें कुछ आदेश दिया करते थे, जिनका पालन अति आवश्यक था । यदि इन आदेशों की अवज्ञा कर कोई लौट गया तो निश्चय ही उसे किसी न किसी दुर्घटना का सामना करना पड़ता था । ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है ।

तात्या कोते पाटील

एक समय तात्या कोते पाटील ताँगे मे बैठकर कोपरगाँव के बाजार जा रहे थे । वे शीघ्रता से मस्जिद में आए । बाबा को नमन किया और कहा कि मैं कोपरगाँव के बाजार को जा रहा हूँ । बाबा ने कहा, ''शीघ्रता न करो, थोड़ा ठहरो । बाजार जाने का विचार छोड़ दो और गाँव के बाहर न जाओ ।'' उनकी

उतावले को देखकर बाबा ने कहा, ''अच्छा, कम से कम शामा को तो साथ लेते जाओ ।'' बाबा की आज्ञा की अवहेलना करके उन्होंने तुरन्त ताँगा आगे बढ़ाया । ताँगे के दो घोड़े में से एक घोड़ा, जिसका मूल्य लगभग तीन सौ रुपया था, अति चंचल और द्रुतगामी था । रास्ते में सावली विहीर ग्राम पार करने के पश्चात् ही वह अधिक वेग से दौड़ने लगा । अकस्मात् ही उसकी कमर में मोच आ गई । वह वहीं गिर पड़ा । यद्यपि तात्या को अधिक चोट तो न आई, परन्तु उन्हें अपनी साई माँ के आदेशों की स्मृति अवश्य हो आई । एक अन्य अवसर पर कोल्हार ग्राम को जाते हुए भी उन्होंने बाबा के आदेशों की अवज्ञा की थी और ऊपर वर्णित घटना के समान ही दुर्घटना का उन्हें सामना करना पड़ा था ।

एक युरोपियन महाशय

एक समय बम्बई के एक युरोपियन महाशय, नानासाहेब चाँदोरकर से परिचय-पत्र प्राप्त कर किसी विशेष कार्य से शिरडी आए । उन्हें एक आलीशान तम्बू में ठहराया गया । वे तो बाबा के समक्ष नत होकर करकमलों का चुम्बन करना चाहते थे । इसी कारण उन्होंने तीन बार मस्जिद की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु बाबा ने उन्हें अपने समीप आने से रोक दिया । उन्हें आँगन में ही ठहरने और वहीं से दर्शन करने की आज्ञा मिली । इस विचित्र स्वागत से अप्रसन्न होकर उन्होंने शीघ्र ही शिरडी से प्रस्थान करने का विचार किया और विदा लेने के हेतु वे वहाँ आए । बाबा ने उन्हे दूसरे दिन जाने और शीघ्रता न करने की राय दी । अन्य भक्तों ने भी उनसे बाबा के आदेश का पालन करने की प्रार्थना की । परन्तु वे सब की उपेक्षा कर ताँगे में बैठकर रवाना हो गए । कुछ दूर तक तो घोड़े ठीक-ठीक चलते रहे । परन्तु सावली विहीर नामक गाँव पार करने पर एक बाइसिकिल सामने से आई, जिसे देखकर घोड़े भयभीत हो गए और द्रुत गति से दौड़ने लगे । फलस्वरूप ताँगा उलट गया और महाशय जी नीचे लुढ़क गए और कुछ दूर तक ताँगे के साथ-साथ घिसटते चले गए । लोगों ने तुरन्त ही दौड़कर उन्हें बचा लिया, परन्तु

चोट अधिक आने के कारण उन्हें कोपरगाँव के अस्पताल में शरण लेनी पड़ी। इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि जो बाबा के आदेशों की अवहेलना करते हैं, उन्हें किसी न किसी प्रकार की दुर्घटना का शिकार होना ही पड़ता है और जो आज्ञा का पालन करते हैं, वे सकुशल और सुखपूर्वक घर पहुँच जाते हैं।

भिक्षावृत्ति की आवश्यकता

अब हम भिक्षावृत्ति के प्रश्न पर विचार करेंगे। संभव है, कुछ लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो कि जब बाबा इतने श्रेष्ठ पुरुष थे तो फिर उन्होंने आजीवन भिक्षावृत्ति पर ही क्यों निर्वाह किया ?

इस प्रश्न को दो दृष्टिकोण समक्ष रख कर हल किया जा सकता है।

पहला दृष्टिकोण – भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करने का कौन अधिकारी है ?

शास्त्रानुसार वे व्यक्ति, जिन्होंने तीन मुख्य आसक्तियों – (१) कामिनी, (२) कांचन और (३) कीर्ति का त्याग कर, आसक्ति–मुक्त हो संन्यास ग्रहण कर लिया हो – वे ही भिक्षावृत्ति के उपयुक्त अधिकारी हैं, क्योंकि वे अपने गृह में भोजन तैयार कराने का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अतः उन्हें भोजन कराने का भार गृहस्थों पर ही हैं। श्री साईबाबा न तो गृहस्थ थे और न वानप्रस्थी। वे तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि विश्व ही मेरा गृह है। वे तो स्वयं ही भगवान् वासुदेव, विश्वपालनकर्ता तथा परब्रह्म थे। अतः वे भिक्षा–उपार्जन के पूर्ण अधिकारी थे।

दूसरा दृष्टिकोण

पंचसूना – (पाँच पाप और उनका प्रायश्चित) :– सब को यह ज्ञात है कि भोजन सामग्री या रसोई बनाने के लिये गृहस्थाश्रमियों को पाँच प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती है – (१) कंडणी (पीसना) (२) पेषणी (दलना) (३) उदकुंभी (बावडीसे पानी निकालना) (४) मार्जनी (माँजना और धोना) (५) चूली (चूल्हा सुलगाना)।

इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप अनेक किटाणुओं और जीवों का नाश

होता है और इस प्रकार गृहस्थाश्रमियों को पाप लगता है । इन पापों के प्रायश्चित स्वरूप शास्त्रों ने पाँच प्रकार के योग (यज्ञ) करने की आज्ञा दी है, अर्थात् (१) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेदाध्ययन – ब्रह्म को अर्पण करना या वेद का अध्ययन करना (२) पितृयज्ञ – पूर्वजों को दान (३) देवयज्ञ – देवाताओं को बलि (४) भूतयज्ञ – प्राणियों को दान (५) मनुष्य (अतिथि) यज्ञ – मनुष्यों (अतिथियों) को दान।

यदि ये कर्म विधिपूर्वक शास्त्रानुसार किये जाएँ तो चित्त शुद्ध होकर ज्ञान और आत्मानुभूति की प्राप्ति सुलभ हो जाती है । बाबा द्वार–द्वार पर जाकर गृहस्थाश्रमियों को इस पवित्र कर्त्तव्य की स्मृति दिलाते रहते थे और वे लोग अत्यन्त भाग्यशाली थे, जिन्हें घर बैठे ही बाबा से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिल जाता था ।

भक्तों के अनुभव

अब हम अन्य मनोरंजक विषयों का वर्णन करते है । भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है – **''जो मुझे भक्तिपूर्वक केवल एक पत्र, फूल, फल या जल भी अर्पण करता है तो मैं उस शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ ।''**[१] यदि भक्त सचमुच में श्री साईबाबा को कुछ भेंट देना चाहता था और बाद में यदि उसे अर्पण करने की विस्मृति भी हो गई तो बाबा उसे या उसके मित्र द्वारा उस भेंट की स्मृति कराते और भेंट देने के लिये कहते तथा भेंट प्राप्त कर उसे आशिष देते थे । नीचे कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन किया जाता है ।

तर्खड कुटुम्ब (पिता और पुत्र)

श्री रामचन्द्र आत्माराम उपनाम बाबासाहेब तर्खड पहले प्रार्थनासमाजी थे । तथापि वे बाबा के परम भक्त थे । उनकी स्त्री और पुत्र तो बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे । एक बार उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि पुत्र व

---

१. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।। गीता ९।। २६ ।।

उसकी माँ ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ शिरडी में ही व्यतीत करें । परन्तु पुत्र बाँद्रा छोड़ने को सहमत न हुआ । उसे भय था कि बाबा का पूजन घर में विधिपूर्वक न हो सकेगा, क्योंकि पिताजी प्रार्थना-समाजी हैं और संभव है कि वे श्री साईबाबा के पूजनादि का उचित ध्यान न रख सकें । परन्तु पिता के आश्वासन देने पर कि पूजन यथाविधि ही होता रहेगा, माँ और पुत्र ने एक शुक्रवार की रात्रि में शिरडी को प्रस्थान कर दिया ।

दूसरे दिन शनिवार को श्रीमान् तर्खड ब्रह्ममुहूर्त में उठे और स्नानादि कर, पूजन प्रारंभ करने के पूर्व, बाबा के समक्ष साष्टांग दण्डवत् करके बोले - ''हे बाबा ! मैं ठीक वैसा ही आपका पूजन करता रहूँगा, जैसे कि मेरा पुत्र करता रहा है, परन्तु कृपा कर इसे शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित न रखना।'' ऐसा कहकर उन्होंने पूजन आरम्भ किया और मिश्री का नैवद्य अर्पित किया, जो दोपहर के भोजन के समय प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया गया।

उस दिन की सन्ध्या तथा अगला दिन इतवार भी निर्विघ्न व्यतीत हो गया । सोमवार को उन्हें ऑफिस जाना था, परन्तु वह दिन भी निर्विघ्न निकल गया । श्री तर्खड ने इस प्रकार अपने जीवन में कभी पूजा न की थी । उनके हृदय में अति सन्तोष हुआ कि पुत्र को दिये गए वचनानुसार पूजा यथाक्रम संतोषपूर्वक चल रही है । अगले दिन मंगलवार को सदैव की भाँति उन्होंने पूजा की और ऑफिस को चले गए । दोपहर को घर लौटने पर जब वे भोजन को बैठे तो थाली में प्रसाद न देखकर उन्होंने अपने रसोईये से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया । उसने बतलाया कि आज विस्मृतिवश व नैवेद्य अर्पण करना भूल गए हैं । यह सुनकर वे तुरन्त अपने आसन से उठे और बाबा को दण्डवत् कर क्षमा-याचना करने लगे तथा बाबा से उचित पथ-प्रदर्शन न करने तथा पूजन को केवल शरीरिक परिश्रम तक ही सीमित रखने के लिये उलाहना देने लगे । उन्होंने संपूर्ण घटना का विवरण अपने पुत्र को पत्र द्वारा सूचित किया और उससे प्रार्थना की कि वह पत्र बाबा के श्री चरणों पर रखकर उनसे कहना कि

वे इस अपराध के लिये क्षमाप्रार्थी हैं । यह घटना बाँद्रा में लगभग दोपहर को हुई थी और उसी समय शिरडी में जब दोपहर की आरती प्रारम्भ होने ही वाली थी कि बाबा ने श्रीमती तर्खड से कहा – ''माँ, मैं कुछ भोजन पाने के विचार से तुम्हारे घर बाँद्रा गया था, द्वार में ताला लगा देखकर भी मैंने किसी प्रकार गृह में प्रवेश किया । परन्तु वहाँ देखा कि भाऊ (श्री तर्खड) मेरे लिये कुछ भी खाने को नहीं रख गए हैं । अतः मैं भूखा ही लौट आया हूँ ।'' किसीस को भी बाबा के वचनों का अभिप्राय समझ में नहीं आया, परन्तु उनका पुत्र जो समीप ही खड़ा था, सब कुछ समझ गया कि बाँद्रा में पूजन में कुछ तो त्रुटि हो गई है इसलिये वह बाबा से लौटने की अनुमति माँगने लगा । परन्तु बाबा ने आज्ञा न दी और वहीं पूजन करने का आदेश दिया । उनके पुत्र ने शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे पत्र में लिख कर पिता को भेजा और भविष्य में पूजन में सावधानी बरतने की विनती की । दोनों पत्र डाक द्वारा दूसरे दिन दोनों पक्षों को मिले। क्या यह घटना आश्चर्यपूर्ण नहीं है ?

श्रीमती तर्खड

एक समय श्रीमती तर्खड ने तीन वस्तुएँ अर्थात् (१) भरित (भुर्ता यानी मसाला मिश्रित भुना हुआ बैंगन और दही) (२) काचर्या (बैंगन के गोल टुकड़े घी में तले हुए) और (३) पेड़ा (मिठाई) बाबा के लिये भेजी । बाबा ने उन्हें किस प्रकार स्वीकार किया, इसे अब देखेंगे ।

बाँद्रा के श्री रघुवीर भास्कर पुरंदरे बाबा के परम भक्त थे । एक समय वे शिरडी को जा रहे थे । श्रीमती तर्खड ने श्रीमती पुरंदरे को दो बैंगन दिये और उनसे प्रार्थना की कि शिरडी पहुँचने पर वे एक बैंगन का भुर्ता और दूसरे का काचर्या बनाकर बाबा को भेंट कर दें । शिरडी पहुँचने पर श्रीमती पुरंदरे भुर्ता लेकर मस्जिद गईं । बाबा उसी समय भोजन को बैठे ही थे । बाबा को वह भुर्ता बड़ा स्वादिष्ट प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने थोड़ा-थोड़ा सभी को वितरित किया । इसके पश्चात् ही बाबा ने काचर्या लाने को कहा । राधाकृष्णमाई के पास सन्देशा भेजा गया कि बाबा काचर्या माँग रहे हैं । वे बड़े असमंजस में पड़

गई कि अब क्या करना चाहिए ? बैंगन की तो अभी ऋतु ही नहीं है । अब समस्या उत्पन्न हुई कि बैंगन किस प्रकार उपलब्ध हो । जब इस बात का पता लगाया गया कि भुर्ता लाया कौन था ? तब ज्ञात हुआ कि बैंगन श्रीमती पुरंदरे लाई थीं तथा उन्हें ही काचर्या बनाने का कार्य सौंपा गया था । अब प्रत्येक को बाबा की अस पूछताछ का अभिप्राय विदित हो गया और सब को बाबा की सर्वज्ञता पर महान् आश्चर्य हुआ ।

दिसम्बर, सन् १९१५ में श्री गोविन्द बालाराम मानकर शिरडी जाकर वहाँ अपने पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करना चाहते थे । प्रस्थान करने से पूर्व वे श्रीमती तर्खड से मिलने आए । श्रीमती तर्खड बाबा के लिये कुछ भेंट शिरडी भेजना चाहती थीं । उन्होंने पूरा घर छान डाला, परन्तु केवल एक पेड़े के अतिरिक्त कुछ न मिला और वह पेड़ा भी अर्पित नैवेद्य का था । बालक गोविन्द ऐसी परिस्थिति देखकर रोने लगा । परन्तु फिर भी अति प्रेम के कारण वही पेड़ा बाबा के लिये भेज दिया । उन्हें पूर्ण विश्वास था कि बाबा उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे । शिरडी पहुँचने पर गोविन्द मानकर बाबा के दर्शनार्थ गए, परन्तु वहाँ पेड़ा ले जाना भूल गए । बाबा यह सब चुपचाप देखते रहे । परन्तु जब वह पुनः सन्ध्या समय बिना पेड़ा लिये हुए वहाँ पहुँचा तो फिर बाबा शान्त न रह सके और उन्होंने पूछा कि ''तुम मेरे लिये क्या लाये हो ?'' उत्तर मिला- ''कुछ नहीं ।'' बाबा ने पुनः प्रश्न किया और उसने वही उपर्युक्त उत्तर फिर दुहरा दिया । अब बाबा ने स्पष्ट शब्दों में पूछा, ''क्या तुमने माँ (श्रीमती तर्खड) ने चलते समय कुछ मिठाई नहीं दी थी?'' अब उसे स्मृति हो आई और वह बहुत ही लज्जित हुआ तथा बाबा से क्षमा-याचना करने लगा । वह दौड़कर शीघ्र ही वापस गया और पेड़ा लाकर बाबा के सम्मुख रख दिया । बाबा ने तुरन्त ही पेड़ा खा लिया । इस प्रकार श्रीमती तर्खड की भेंट बाबा ने स्वीकार की और ''भक्त मुझ पर विश्वास करता है इसलिये मैं स्वीकार कर लेता हूँ ।'' - यह भगवद्वचन सिद्ध हुआ ।

बाबा का सन्तोषपूर्वक भोजन

एक समय श्रीमती तर्खड शिरडी हुई थीं । दोपहर का भोजन प्रायः तैयार

हो चुका था और थालियाँ परोसी जा रही थीं कि उसी समय वहाँ एक भूखा कुत्ता आया और भौंकने लगा। श्रीमती तर्खड तुरन्त उठीं और उन्होंने रोटी का एक टुकड़ा कुत्ते को डाल दिया। कुत्ता बड़ी रुचि के साथ उसे खा गया। सन्ध्या के समय जब वे मस्जिद में जाकर बैठीं तो बाबा ने उनसे कहा, माँ! आज तुमने मुझे बड़े प्रेम से खिलाया, मेरी भूखी आत्मा को बड़ी सान्त्वना मिली है। सदैव ऐसा ही करती रहो, तुम्हें कभी न कभी इसका उत्तम फल अवश्य प्राप्त होगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य नहीं बोलूँगा सदैव मुझ पर ऐसा ही अनुग्रह करती रहो। पहले भूखों को भोजन कराओ, बाद में तुम भोजन किया करो। इसे अच्छी तरह ध्यान में रखो।'' बाबा के शब्दों का अर्थ उनकी समझ में न आया, इसलिये उन्होंने प्रश्न किया, ''भला! मैं किस प्रकार भोजन करा सकती हूँ ? मैं तो स्वयं दूसरों पर निर्भर हूँ ओर उन्हें दाम देकर भोजन प्राप्त करती हूँ।'' बाबा कहने लगे, ''उस रोटी को ग्रहण कर मेरा हृदय तृप्त हो गया है और अभी तक मुझे डकारें आ रही हैं। भोजन करने से पूर्व तुमने जो कुत्ता देखा था और जिसे तुमने रोटी का टुकड़ा दिया था, वह यथार्थ में मेरा ही स्वरूप था और इसी प्रकार अन्य प्राणी (बिल्लीयाँ, सुअर, मक्खियाँ, गाय आदि) भी मेरे ही स्वरूप हैं। मैं ही उनके आकारों में डोल रहा हूँ। जो इन सब प्राणियों में मेरा दर्शन करता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये द्वैत या भेदभाव भूल कर तुम मेरी सेवा किया करो।''[१]

इस अमृत तुल्य उपदेश को ग्रहण कर वे द्रवित हो गईं और उनकी आँखो से अश्रुधारा बहने लगी, गला रुँध गया और उनके हर्ष का परावार न रहा।

शिक्षा

''समस्त प्राणियों में ईश्वर-दर्शन करो'' - यही इस अध्याय की शिक्षा

१. यो मां पश्चति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।। - गीता अ. ६, श्लोक ३०

है। उपनिषद्, गीता और भागवत का यही उपदेश है कि ईशावास्यमिदं सर्वम् – ''सब प्राणियों में ईश्वर का ही वास हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करो ।''

अध्याय के अन्त में बतलाई गई घटना तथा अन्य अनेक घटनाएँ, जिनका लिखना अभी शेष है, स्वयं बाबा ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर दिखाया कि किस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा आचरण में लाना चाहिए ।

इस प्रकार श्री साईबाबा शास्त्रग्रंथो की शिक्षा दिया करते थे ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-१०
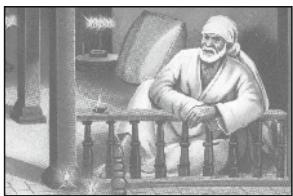
श्री साईबाबा का रहन-सहन, शयन पटिया, शिरडी में निवास, उनके उपदेश, उनकी विलयशीलता, नानावली, सुगम पथ ।

प्रारम्भ

श्री साईबाबा का सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण करो, क्योंकि वे सदैव दूसरों के कल्याणार्थ तत्पर तथा आत्मलीन रहते थे । उनका स्मरण करना ही जीवन और मृत्यु की पहेली हल करना है । साधनाओं में यह अति श्रेष्ठ तथा सरल साधना है, क्योंकि इसमें कोई द्रव्य व्यय नही होता । केवल मामूली परिश्रम से ही भविष्य नितान्त फलदायक होता है । जब तक इन्द्रियाँ बलिष्ठ हैं, क्षण-क्षण इस साधना को आचरण में लाना चाहिए । केवल गुरु ही ईश्वर हैं । हमे उनके ही पवित्र चरणकमलों में श्रद्धा रखनी चाहिए । वे तो हर इन्सान के भाग्यविधाता और प्रेममय प्रभु हैं । जो अनन्य भाव से उनकी सेवा करेंगे, वे भवसागर से निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होंगे । **न्याय अथवा मीमांसा या दर्शनशास्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नदी या समुद्र पार करते समय नाविक पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार का विश्वास हमें भवसागर से पार होने के लिये सद्गुरु पर करना चाहिए ।** सद्गुरु तो केवल भक्तों के भक्ति-भाव की ओर ही देखकर उन्हें ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं ।

गत अध्याय में बाबा की भिक्षावृत्ति, भक्तों के अनुभव तथा अन्य विषयों का वर्णन किया गया है । अब पाठकगण सुनें कि श्री साईबाबा किस प्रकार रहते, शयन करते और शिक्षा प्रदान करते थे ।

बाबा का विचित्र बिस्तर

पहले हम यह देखेंगे कि बाबा किस प्रकार शयन करते थे । श्री नानासाहेब डेंगले एक चार हाथ लम्बा और एक हथेली चौड़ा लकड़ी का तख्ता श्री साईबाबा के शयन हेतु लाये । तख्ता कहीं नीचे रख कर उस पर सोते, ऐसा न कर बाबा ने पुरानी चिन्दियों से मस्जिद की बल्ली से उसे झूले के समान बाँधकर उस पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया ।

चिन्दियों के बिल्कुल पतली और कमज़ोर होने के कारण लोगों को उसका झूला बनाना एक पहेली-सा बन गया । चिन्दियाँ तो केवल तख्ते का भी भार सहन नहीं कर सकती थीं । फिर वे बाबा के शरीर का भार किस प्रकार सहन कर सकेंगी ? जिस प्रकार भी हो, यह तो राम ही जानें, परन्तु यह तो बाबा की एक लीला थी जो फटी चिन्दियाँ तख्ते तथा बाबा का भार सँभाल रही थीं । बाबा को तख्ते पर बैठे या शयन करते हुए देखना, देवताओं को भी दुर्लभ दृश्य था । सब आश्चर्यचकित थे कि बाबा किस प्रकार तख्ते पर चढ़ते होंगे और किस प्रकार नीचे उतरते होंगे । कौतुहलवश लोग इस रहस्योद्घाटन के हेतु दृष्टि लगाये रहते थे, परंतु यह समझने में कोई भी सफल न हो सका और इस रहस्य को जानने के लिये भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । इस कारण बाबा ने एक दिन तख्ता तोड़कर बाहर फेंक दिया । यद्यपि बाबा को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उनका प्रयोग नहीं किया और न कभी उनकी इच्छा ही हुई । वे तो स्वतः ही स्वाभाविक रूप से पूर्णता प्राप्त होने के कारण उनके पास आ गई थीं ।

ब्रह्म का सगुण अवतार

बाह्यदृष्टि से श्री साईबाबा साढ़े तीन हाथ लम्बे एक सामान्य पुरुष थे, फिर भी प्रत्येक के हृदय में वे विराजमान थे । अंदर से वे आसक्ति-रहित और स्थिर थे, परन्तु बाहर से जन-कल्याण के लिये सदैव चिन्तित रहते थे । अंदर वे संपूर्ण रूप से निःस्वार्थी थे । भक्तों के निमित्त उनके हृदय में परम शांति

विराजमान थी, परन्तु बाहर से संसार में उलझे हुए दिखलाई पड़ते थे । वे कभी प्रेमदृष्टि से देखते तो कभी पत्थर मारते, कभी गालियाँ देते और कभी हृदय से लगाते थे । वे गम्भीर, शान्त और सहनशील थे । वे सदा दृढ़ और आत्मलीन रहते थे और अपने भक्तों का सदैव उचित ध्यान रखते थे । वे सदा एक आसन पर ही विराजमान थे । वे कभी यात्रा को नहीं निकले । उनका दंड एक छोटी सी लकड़ी थी, जिसे वे सदैव पास सँभाल कर रखते थे । विचारशून्य होने के कारण वे शान्त थे । उन्होंने कांचन और कीर्ति की कभी चिन्ता नहीं की तथा सदा ही भिक्षावृत्ति द्वारा निर्वाह करते रहे । उनका जीवन ही इस प्रकार का था । ''अल्लाह मालिक'' सदैव उनके होठों पर रहता था । उनका भक्तों पर विशेष और अटूट प्रेम था । वे आत्म-ज्ञान की खान और परम दिव्यस्वरूप थे । श्री साईबाबा का दिव्यस्वरूप इस तरह का था । एक अपरिमित, अनंत, सत्य और अपरिवर्तनशील सिद्धांत, जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व है, श्री साईबाबा में आविर्भूत हुआ था । यह अमूल्य निधि केवल सत्वगुण-सम्पन्न और भाग्यशाली भक्तों को ही प्राप्त हुई । जिन्होंने श्री साईबाबा को केवल मनुष्य या सामान्य पुरुष समझा या समझते हैं, वे यथार्थ में अभागे थे या हैं ।

श्री साईबाबा के माता-पिता तथा उनकी जन्मतिथि का ठीक-ठीक पता किसी को भी नहीं है तो भी उनके शिरडी में निवास के द्वारा इसका अनुमान लगाया जा सकता है । जब पहलेपहल बाबा शिरडी में आए थे तो उस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष की थी । वे शिरडी में ३ वर्ष तक रहने के बाद फिर कुछ समय के लिये अन्तर्धान हो गए । कुछ काल के उपरान्त वे औरंगाबाद के समीप (निजाम स्टेट) में प्रकट हुए और चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः शिरडी पधारे । उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी । उन्होंने लगातार ६० वर्षों तक शिरडी में निवास किया और सन् १९१८ में महासमाधि ग्रहण की। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनकी जन्म तिथि सन् १८३८ के लगभग थी ।

बाबा का ध्येय और उपदेश

सत्रहवीं शताब्दी (१६०८-१६८१) में सन्त रामदास प्रकट हुए और उन्होंने यवनों से गायों और ब्रह्मणों की रक्षा करने का कार्य सफलतापूर्वक किया। परन्तु दो शताब्दियों के व्यतीत हो जाने के बाद हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ गया और इसे दूर करने के लिये श्री साईबाबा प्रगट हुए। उनका सभी के लिये यही उपदेश था कि ''राम (जो हिन्दुओं का भगवान् है) और रहीम (जो मुसलमानों का खुदा है) एक ही हैं और उनमें किंचित् मात्र भी भेद नहीं है। फिर तुम उनके अनुयायी क्यों पृथक्-पृथक् रहकर परस्पर झगड़ते हो ? अज्ञानी बालकों! दोनों जातियाँ एकता का ध्येय प्राप्त करो। कलह और विवाद व्यर्थ है। इसलिये न झगड़ो और न परस्पर प्राणघातक ही बनो। सदैव अपने हित तथा कल्याण का विचार करो। श्री हरि तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। योग, वैराग्य, तप, ज्ञान आदि ईश्वर के समीप पहुँचने के मार्ग हैं। तुम्हारी कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, तुम उसका प्रतिकार न करो। यदि कोई शुभ कर्म करने की इच्छा है तो सदैव दूसरों की भलाई करो।''[१]

संक्षेप में यही श्री साईबाबा का उपदेश है कि उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करने से भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में तुम्हारी प्रगति होगी।

सच्चिदानंद सद्गुरु श्री साईनाथ महाराज

गुरु तो अनेक हैं। कुछ गुरु ऐसे हैं, जो द्वार-द्वार हाथ में वीणा और करताल लिये अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन करते फिरते हैं। वे शिष्यों के कानों में मंत्र फूँकते और उनकी सम्पत्ति का शोषण करते हैं। वे ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता का केवल ढोंग ही रचते हैं। वे वस्तुतः अपवित्र और अधार्मिक होते हैं। श्री साईबाबा ने धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करने का विचार भी कभी मन में

---

१. अष्टादश पुराणेषुव्यासस्य वचनं द्वयं।
परोपकाराः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥
''परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'' - तुलसी

नहीं किया। दैहिक बुद्धि उन्हें किंचित्मात्र भी छू न गई थी। परन्तु उनमें भक्तों के लिए असीम प्रेम था। गुरु दो प्रकार के होते हैं :- (१) नियत और (२) अनयित। अनियत गुरु के आदेशों से अपने में उत्तम गुणों का विकास होता तथा चित्त की शुद्धि होकर विवेक की वृद्धि होती है। वे भक्ति-पथ पर लगा देते हैं। परन्तु नियत गुरु की संगति मात्र से द्वैत बुद्धि का ऱ्हास शीघ्र हो जाता है। गुरु और भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सांसारिक शिक्षाएँ प्रदान करते है। यथार्थ में जो हमें आत्मस्थित बनाकर इस भवसागर से पार उतार दे, वही सद्गुरु है। श्री साईबाबा उसी कोटि के सद्गुरु थे। उनकी महानता अवर्णनीय है। जो भक्त बाबा के दर्शनार्थ आते, उनके प्रश्न करने के पूर्व ही बाबा उनके समस्त जीवन की त्रिकालिक घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण कह देते थे। वे कभी संशयग्रस्त नहीं हुए। देहधारी होकर भी उन्हें देह की किंचित्मात्र आसक्ति न थी। देह तो उनके लिए केवल एक आवरण मात्र था। यथार्थ में तो वे नित्य मुक्त थे।

वे शिरडीवासी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीसाईबाबा की ईश्वर-रूप में उपासना की। सोते-जागते, खाते-पीते, वाड़े या खेत तथा घर में अन्य कार्य करते हुए भी वे लोग सदैव उनका स्मरण तथा गुणगान करते थे। साईबाबा को ईश्वर मानते थे। शिरडी की नारियों के प्रेम की माधुरी का तो कहना ही क्या है। वे बिल्कुल भोलीभाली थीं। उनका पवित्र प्रेम उन्हें ग्रामीण भाषा में भजन रचने की सदैव प्रेरणा देता रहता था। यद्यपि वे शिक्षित न थीं तो भी उनके सरल भजनों में वास्तविक काव्य की झलक थी। यह कोई विद्वत्ता न थी, वरन् उनका सच्चा प्रेम ही इस प्रकार की कविता का प्रेरक था। कविता तो सच्चे प्रेम का प्रगट स्वरूप ही है, जिसमें चतुर श्रोता-गण ही यथार्थ दर्शन या रसिकता का अनुभव करते हैं।

बाबा की विनयशीलता

ऐसा कहते हैं कि भगवान् में छः प्रकार के विशेष गुण होते हैं - यथा

(१) कीर्ति (२) श्री (३) वैराग्य (४) ज्ञान (५) ऐश्वर्य और (६) उदारता। श्री साईबाबा में भी ये सब गुण विद्यमान थे। उन्होंने भक्तों की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही सगुण अवतार धारण किया था। उनकी कृपा (दया)बड़ी ही विचित्र थी। भक्तों के हेतु वे अपने श्रीमुख से ऐसे वचन कहते, उनमें से यहाँ पर एक रोचक नमूना दिया जाता है। बाबा अति विनम्रता से इस प्रकार बोलते ''दासानुदास, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।'' कैसी विनम्रता है ?

यद्यपि बाह्य दृष्टि से बाबा विषय-पदार्थों का उपभोग करते हुए प्रतीत होते थे, परन्तु उन्हें किंचित्मात्र भी उनकी गन्ध न थी और न ही उनके उपभोग का ज्ञान था। वे खाते अवश्य थे, परन्तु उनकी जिह्वा को कोई स्वाद न था। वे नेत्रों से देखते थे, परन्तु उस दृश्य में उनकी कोई रुचि न थी। काम के सम्बन्ध में वे हनुमान सदृश अखंड ब्रह्मचारी थे। उन्हें किसी पदार्थ में आसक्ति न थी। वे शुद्ध चैतन्य स्वरूप थे, जहाँ समस्त इच्छाएँ, अहंकार और अन्य चेष्टाएँ विश्राम पाती थीं। संक्षेप में वे निःस्वार्थ, मुक्त और पूर्ण ब्रह्म थे। इस कथन को समझने के हेतु एक रोचक कथा का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

नानावली

शिरडी में नानावली नाम का एक विचित्र और अनोखा व्यक्ति था। वह बाबा के सब कार्यों की देखभाल किया करता था। एक समय जब बाबा गादी पर विराजमान थे, वह उनके पास पहुँचा। वह स्वयं ही गादी पर बैठना चाहता था। इसलिये उसने बाबा को वहाँ से हटने को कहा। बाबा ने तुरन्त गादी छोड़ दी और तब नानावली वहाँ विराजमान हो गया। थोड़े समय वहाँ बैठकर वह उठा और बाबा को अपना स्थान ग्रहण करने को कहा। बाबा पुनः आसन पर बैठ गए। यह देखकर नानावली उनके चरणों पर गिर पड़ा। इस प्रकार अनायास ही आज्ञा दिये जाने और वहाँ से उठाये जाने के कारण बाबा में किंचित्मात्र भी अप्रसन्नता की झलक न थी।

सुगम पथ, सन्तों की कथाओं का श्रवण करना और उनका समागम

यद्यपि बाह्य दृष्टि से श्री साईबाबा का आचरण सामान्य पुरुषों के सदृश ही था, परन्तु उनके कार्यों से उनकी असाधारण बुद्धिमता और चतुराई स्पष्ट ही प्रतीत होती थी। उनके समस्त कर्म भक्तों की भलाई के निमित्त ही होते थे। उन्होंने कभी न भी अपने भक्तों को किसी आसन या प्राणायाम के नियमों अथवा किसी उपासना का आदेश कभी नहीं दिया और न उनके कानों में कोई मन्त्र ही फूँका। उनका तो सभी के लिये यही कहना था कि चातुर्य त्याग कर सदैव ''साई साई'' स्मरण करो। इस प्रकार आचरण करने से समस्त बन्धन छूट जाएँगे और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।

मन का कार्य विचार करना है। बिना विचार किये वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम उसे किसी विषय में लगा दोगे तो वह उसी का चिन्तन करने लगेगा और यदि उसे गुरु को अर्पण कर दोगे तो वह गुरु के सम्बन्ध में ही चिन्तन करता रहेगा। आप लोग बहुत ध्यानपूर्वक साई की महानता और श्रेष्ठता श्रवण कर चुके हैं। ये कथाएँ सांसारिक भय को निर्मूल कर आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ करती है। इसलिये इन कथाओं का हमेशा श्रवण और मनन करो तथा आचरण में भी लाओ। सांसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी अपना चित्त साई और उनकी कथाओं में लगाये रहो। तब तो यह निश्चित है कि वे कृपा अवश्य करेंगे। यह मार्ग अति सरल होने पर भी क्या कारण है कि सब कोई इसका अवलम्बन नहीं करते ? कारण केवल यह है कि ईश-कृपा के अभाववश लोगों में सन्त कथाएँ श्रवण करने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। ईश्वर की कृपा से ही प्रत्येक कार्य सुचारु एवं सुंदर ढंग से चलता है। सन्तों की कथा का श्रवण ही सन्तसमागम सदृश है। सन्त-सान्निध्य का महत्व अति महान् है। उससे दैहिक बुद्धि, अहंकार और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति हो जाती है। हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और ईश्वर से मिलन हो जाता है, जो चैतन्यघन स्वरूप है। विषयों से निश्चय ही विरक्ति बढ़ती है तथा दुःखों और सुखों में स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और

आध्यात्मिक उन्नति सुलभ हो जाती है । यदि तुम कोई साधन जैसे नामस्मरण, पूजन या भक्ति इत्यादि नहीं करते, परन्तु अनन्य भाव से केवल सन्तों के ही शरणागत हो जाओ तो वे तुम्हें आसानी से भवसागर के पार उतार देंगे। इसी कार्य के निमित्त ही सन्त विश्व में प्रगट होते हैं। पवित्र नदियाँ – गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि जो संसार के समस्त पापों को धो देती हैं, वे भी सदैव इच्छा करती हैं कि कोई महात्मा अपने चरण-स्पर्श से हमें पावन करे । ऐसा सन्तों का प्रभाव है । गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही श्री साई चरणों की प्राप्ति संभव है।

मैं श्री साई के मोह-विनाशक चरणों का ध्यान कर यह अध्याय समाप्त करता हूँ। उनका स्वरूप कितना सुन्दर और मनोहर है ! मस्जिद के किनारे पर खड़े हुए वे सब भक्तों को, उनके कल्याणार्थ उदी वितरण किया करते हैं। जो इस विश्व को मिथ्या मानकर सदा आत्मानंद में निमग्न रहते थे, ऐसे सच्चिदानंद श्री साईमहाराज के चरणकमलों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-११
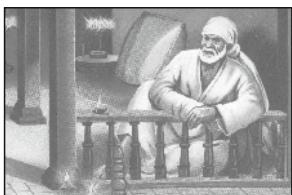
सगुण ब्रह्म श्री साईबाबा, डॉक्टर पंडित द्वारा पूजन, हाजी सिद्दीकी फालके, तत्वों पर नियंत्रण।

इस अध्याय में अब हम श्री साईबाबा के सगुण ब्रह्म स्वरुप, उनका पूजन तथा तत्वनियंत्रण का वर्णन करेंगे।

सगुण ब्रह्म श्री साईबाबा

ब्रह्म के दो स्वरुप हैं - निर्गुण और सगुण। निर्गुण निराकार है और सगुण साकार है। यद्यपि वे एक ही ब्रह्म के दो रुप हैं, फिर भी किसी को निर्गुण और किसी को सगुण उपासना में दिलचस्पी होती है, जैसा कि गीता का अध्याय १२ में वर्णन किया गया है। सगुण उपासना सरल और श्रेष्ठ है। मनुष्य स्वयं आकार (शरीर, इन्द्रिय आदि) में है, इसीलिये उसे ईश्वर की साकार उपासना स्वभावतः ही सरल है। जब तक कुछ काल सगुण ब्रह्म की उपासना न की जाए, तब तक प्रेम और भक्ति में वृद्धि ही नही होती। सगुणोपासना में जैसे-जैसे हमारी प्रगति होती जाती है, हम निर्गुण ब्रह्म की ओर अग्रेसर होते जाते हैं। इसलिये सगुण उपासना से ही श्री गणेश करना अति उत्तम है। मूर्ति, वेदी, अग्नि, प्रकाश, सूर्य, जल और ब्राह्मण आदि सप्त उपासना की वस्तुएँ होते हुए भी, सद्‌गुरु ही इन सब में श्रेष्ठ है।

श्री साई का स्वरूप आँखो के सम्मुख लाओ, जो वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति और अनन्य शरणागत भक्तों के आश्रयदाता हैं। उनके शब्दों में विश्वास लाना ही आसन और उनके पूजन का संकल्प करना ही समस्त इच्छाओं का त्याग है।

कोई-कोई श्री साईबाबा की गणना भगवद्‌भक्त अथवा एक महाभागवत (महान् भक्त) में करते थे या करते हैं। परन्तु हम लोगों के लिये

तो वे ईश्वरावतार हैं। वे अत्यन्त क्षमाशील, शान्त, सरल और सन्तुष्ट थे, जिसकी कोई उपमा ही नहीं दी जा सकती। यद्यपि वे शरीरधारी थे, पर यथार्थ में निर्गुण, निराकार, अनन्त और नित्यमुक्त थे। गंगा नदी समुद्र की ओर जाती हुई मार्ग में ग्रीष्म से व्यथित अनेकों प्राणियों को शीतलता पहुँचा कर आनन्दित करती, फसलों और वृक्षों को जीवन-दान देती और जिस प्रकार प्राणियों की क्षुधा शान्त करती है, उसी प्रकार श्री साई सन्त-जीवन व्यतीत करते हुए भी दूसरों को सान्त्वना और सुख पहुँचाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है ''संत ही मेरी आत्मा हैं। वे मेरी जीवित प्रतिमा और मेरे ही विशुद्ध रूप हैं। मैं स्वयं वही हूँ।'' ये अवर्णनीय शक्तियाँ या ईश्वर की शक्ति, जो कि सत्, चित् और आनन्द है, शिरडी में साई रूप में अवतीर्ण हुई थीं। श्रुति (तैतिरीय उपनिषद्) में ब्रह्म को आनन्द कहा गया है। अभी तक यह विषय केवल पुस्तकों में पढ़ते और सुनते थे, परन्तु भक्तगण ने शिरडी में इस प्रकार का प्रत्यक्ष आनन्द पा लिया है। बाबा सब के आश्रयदाता थे, उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता न थी। उनके बैठने के लिये भक्तगण एक मुलायम आसन और एक बड़ा तकिया लगा देते थे। बाबा भक्तों के भावों का आदर करते और उनकी इच्छानुसार पूजनादि करने देने में किसी प्रकार की आपत्ति न करते थे। कोई इत्र और चन्दन लगते, कोई सुपारी, पान और अन्य वस्तुएँ भेंट करते और कोई नैवेद्य ही अर्पित करते थे। यद्यपि ऐसा जान पड़ता था कि उनका निवासस्थान शिरडी में है, परन्तु वे तो सर्वव्यापक थे। इसका भक्तों ने नित्य प्रति अनुभव किया। ऐसे सर्वव्यापक गुरुदेव के चरणों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

डॉक्टर पंडित की भक्ति

एक बार श्री तात्या नूलकर के मित्र डॉक्टर पंडित बाबा के दर्शनार्थ शिरडी पधारे। बाबा को प्रणाम कर वे मस्जिद में कुछ देर तक बैठे। बाबा ने उन्हें श्री दादा भट्ट केलकर के पास भेजा, जहाँ पर उनका अच्छा स्वागत हुआ। फिर दादा भट्ट और डॉ. पंडित एक साथ पूजन के लिये मस्जिद पहुँचे।

दादा भट्ट ने बाबा का पूजन किया। बाबा का पूजन तो प्रायः सभी किया करते थे, परन्तु अभी तक उनके शुभ मस्तक पर चन्दन लगाने का किसी ने भी साहस नहीं किया था। केवल एक म्हालसापति ही उनके गले में चन्दन लगाया करते थे। डॉ, पंडित ने पूजन की थाली में से चन्दन लेकर बाबा के मस्तक पर त्रिपुण्डाकार लगाया। लोगों ने महान् आश्चर्य से देखा कि बाबा ने एक शब्द भी नहीं कहा। सन्ध्या समय दादा भट्ट ने बाबा से पूछा, ''क्या कारण है कि आप दूसरों को तो मस्तक पर चन्दन नहीं लगाने देते, परन्तु डॉक्टर पंडित को आपने कुछ भी नहीं कहा ?'' बाबा कहने लगे, ''डॉ.पंडित ने मुझे अपने गुरु श्री रघुनाथ महाराज धोपेश्वरकर, जो कि काका पुराणिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, के ही समान समझा और अपने गुरु को वे जिस प्रकार चन्दन लगाते थे, उसी भावना से उन्होंने मुझे चन्दन लगाया। तब मैं कैसे रोक सकता था ?'' पूछने पर डॉ.पंडित ने दादा भट्ट से कहा कि मैंने बाबा को अपने गुरु काका पुराणिक के समान जानकर ही उन्हें त्रिपुण्डाकार चन्दन लगाया है, जिस प्रकार मैं अपने गुरु को सदैव लगाया करता था।

यद्यपि बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही पूजन करने देते थे, परन्तु कभी-कभी तो उनका व्यवहार विचित्र ही हो जाया करता था। जब कभी वे पूजन की थाली फेंक कर रुद्रावतार धारण कर लेते, तब उनके समीप जाने का साहस किसी को न हो सकता था। कभी वे भक्तों को झिड़कते और कभी मोम से भी नरम होकर शान्ति तथा क्षमा की मूर्ति-से प्रतीत होते थे। कभी-कभी वे क्रोधावस्था में कम्पायमान हो जाते और उनके लाल नेत्र चारों ओर घूमने लगते थे, तथापि उनके अन्तःकरण में प्रेम और मार्त-स्नेह का स्त्रोत बहा ही करतो था। भक्तों को बुलाकर वे कहा करते थे कि उन्हें तो कुछ ज्ञात ही नहीं है कि वे कब उूपर क्रोधित हुए। यदि यह सम्भव हो कि समुद्र नदियों को लौटा दे तो वे भक्तों के कल्याण की भी उपेक्षा कर सकते हैं। वे तो भक्तों के समीप ही रहते हैं और जब भक्त उन्हें पुकारते हैं तो वे तुरन्त ही उपस्थित हो जाते हैं। वे तो सदा भक्तों के प्रेम के भूखे हैं।

हाजी सिद्दीक फालके

यह कोई नहीं कह सकता था कि कब श्री साईबाबा अपने भक्त को अपना कृपापात्र बना लेंगे । यह उनकी इच्छा पर निर्भर था । हाजी सिद्दीक फालके की कथा इसी का उदाहरण है । कल्याणनिवासी एक यवन, जिनका नाम सिद्दीक फालके था, मक्का शरीफ की हज करने के बाद शिरडी आए । वे चावड़ी में उत्तर की ओर रहने लगे । वे मस्जिद के सामने खुले आँगन में बैठा करते थे । बाबा ने उन्हें नौ माह तक मस्जिद में प्रविष्ट होने की आज्ञा न दी और न ही मस्जिद की सीढ़ी चढ़ने दी । फालके बहुत निराश हुए और कुछ निर्णय न कर सके कि कौन–सा उपाय काम में लायें । लोगों ने उन्हें सलाह दी कि आशा न त्यागो । शामा श्री साईबाबा के अंतरंग भक्त हैं । तुम उनके ही द्वारा बाबा के पास पहुँचने का प्रयत्न करो । जिस प्रकार भगवान शंकर के पास पहुँचने के लिये नन्दी के पास जाना आवश्यक होता है, उसी प्रकार बाबा के पास भी शामा के द्वारा ही पहुँचना चाहिए । फालके को यह विचार उचित प्रतीत हुआ और उन्होंने शामा से सहायता की प्रार्थना की । शामा ने भी आश्वासन दे दिया और अवसर पाकर वे बाबा से इस प्रकार बोले कि,''बाबा, आप उस बूढ़े हाजी को मस्जिद में किस कारण नहीं आने देते ? अनेक भक्त स्वेच्छापूर्वक आपके दर्शन को आया–जाया करते हैं । कम से कम एक बार तो उसे आशीष दे दो ।'' बाबा बोले, ''शामा, तुम अभी नादान हो । यदि फकिर (अल्लाह) नहीं आने देता है तो मैं क्या करूँ ? उनकी कृपा के बिना कोई भी मस्जिद की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकता । अच्छा, तुम उससे पूछ आओ कि क्या वह बारवी कुएँ की निचली पगडंडी पर आने को सहमत है ?'' शामा स्वीकारात्मक उत्तर लेकर पहुँचे । फिर बाबा ने पुनः शामा से कहा कि उससे फिर पूछो कि, ''क्या वह मुझे चार किश्तों में चालीस हजार रुपये देने को तैयार है?'' फिर शामा उत्तर लेकर लौटे कि, ''आप कहें तो मैं चालीस लाख रुपये देने को तैयार हुँ।'' ''मैं मस्जिद में एक बकरा हलाल करने वाला हूँ, उससे पूछो कि उसे क्या रुचिकर होगा – बकरे का मांस, नाध या अंडकोष?'' शामा यह उत्तर लेकर

लौटे कि, ‘‘यदि बाबा के भोजन-पात्र में से एक ग्रास भी मिल जाए तो हाजी अपने सौभाग्यशाली समझेगा ।’’ यह उत्तर पाकर बाबा उत्तेजित हो गए और उन्होंने अपने हाथ से मिट्टी का बर्तन (पानी की गागर) उठाकर फेंक दी और अपनी कफनी उठाये हुए सीधे हाजी के पास पहुँचे । वे उनसे कहने लगे कि ‘‘व्यर्थ ही नमाज़ क्यों पढ़ते हो? अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन क्यों करते हो ? यह वृद्ध हाजियों के समान वेशभूषा तुमने क्यों धारण की है ? क्या तुम कुरान शरीफ का इसी प्रकार पठन करते हो ? तुम्हें अपने मक्का हज का अभिमान हो गया है, परन्तु तुम मुझसे अनभिज्ञ हो ।’’ इस प्रकार डाँट सुनकर हाजी घबड़ा गया। बाबा मस्जिद को लौट आए और कुछ आमों की टोकरियाँ खरीद कर हाजी के पास भेज दीं। वे स्वयं भी हाजी के पास गए और आपने पास से ५५ रुपये निकाल कर हाजी को दिये । इसके बाद से ही बाबा हाजी से प्रेम करने लगे तथा अपने साथ भोजन करने को बुलाने लगे । अब हाजी भी अपनी इच्छानुसार मस्जिद में आने-जाने लगे । कभी-कभी बाबा उन्हें कुछ रुपये भी भेंट में दे दिया करते थे । इस प्रकार हाजी बाबा के दरबार में सम्मिलित हो गए ।

बाबा का तत्वों पर नियंत्रण

बाबा के तत्व-नियंत्रण की दो घटनाओं के उल्लेख के साथ ही यह अध्याय समाप्त हो जाएगा ।

(१) एक बार सन्ध्या समय शिरडी में भयानक झंझावात आया । आकाश में घने और काले बादल छाये हुये थे । पवन झकोर रहा था । बादल गरज रहे थे और बिजली चमक रही थी। मूसलधार वर्षा प्रारंभ हो गई । जहाँ देखो, वहाँ जल ही जल दृष्टिगोचर होने लगा । सब पशु, पक्षी और शिरडीवासी अधिक भयभीत होकर मस्जिद में एकत्रित हुए । शिरडी में देवियाँ तो अनेकों हैं, परन्तु उस दिन सहायतार्थ कोई न आईं । इसलिये सभी ने अपने भगवान साई से, जो भक्ति के ही भूखे थे, संकट-निवारण करने की प्रार्थना की । बाबा को भी दया आ गई और वे बाहर निकल आए । मस्जिद के समीप खड़े

होकर उन्होंने बादलों की ओर दृष्टि कर गरजते हुए शब्दों में कहा कि ''बस, शांत हो जाओ ।'' कुछ समय के बाद ही वर्षा का जोर कम हो गया और पवन मन्द पड़ गयी तथा आँधी भी शान्त हो गई । आकाश में चन्द्रदेव उदित हो गए । तब सब लोग अति प्रसन्न होकर अपने-अपने घर लौट आए ।

(२) एक अन्य अवसर पर मध्याह्न के समय धूनी की अग्नि इतनी प्रचण्ड होकर जलने लगी कि उसकी लपटें ऊपर छत तक पहुँचने लगीं । मस्जिद में बैठे हुए लोगों की समझ में न आता था कि जल डाल कर अग्नि शांत कर दें अथवा कोई अन्य उपाय काम में लावें । बाबा से पूछने का साहस भी कोई नहीं कर पा रहा था ।

परन्तु बाबा शीघ्र परिस्थिति को जान गए । उन्होंने अपना सटका उठाकर सामने के खम्भे पर बलपूर्वक प्रहार किया और बोले ''नीचे उतरों और शान्त हो जाओ ।'' सटके की प्रत्येक ठोकर पर लपटें कम होने लगीं और कुछ मिनटों में ही धुनी शान्त और यथापूर्वक हो गई। श्री साई ईश्वर के अवतार हैं । जो उनके सामने नत हो कर उनके शरणागत होगा, उस पर वे अवश्य कृपा करेंगे । जो भक्त इस अध्याय की कथायें प्रतिदिन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पठन करेगा, उसका दुःखों से शीघ्र ही छुटकारा हो जाएगा । केवल इतना ही नहीं, वरन् उसे सदैव श्री साई चरणों का स्मरण बना रहेगा और उसे अल्पकाल में ही ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति होकर, उसकी समस्त इच्छायें पूर्ण हो जाएँगी और इस प्रकार वह निष्काम बन जाएगा ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-१२

(१) काका महाजनी (२) धुमाल वकील (३) श्रीमती निमोणकर (४) नासिक के मुले शास्त्री (५) एक डॉक्टर के द्वारा बाबा की लीलाओं का अनुभव।

इस अध्याय में बाबा किस प्रकार भक्तों से भेंट करते और कैसा बर्ताव करते थे, इसका वर्णन किया गया है।

सन्तों का कार्य

हम देख चुके हैं कि ईश्वरीय अवतार का ध्येय साधुजनों का परित्राण और दुष्टों का संहार करना है। परन्तु संतों का कार्य तो सर्वथा भिन्न ही है। सन्तों के लिए साधु और दुष्ट प्रायः एक समान ही हैं। यथार्थ में उन्हें दुष्कर्म करने वालों की प्रथम चिन्ता होती है और वे उन्हें उचित पथ पर लगा देते हैं। वे भवसागर के कष्टों को सोखने के लिए अगस्त्य के सदृश हैं और अज्ञान तथा अंधकार का नाश करने के लिए सूर्य के समान हैं। सन्तों के हृदय में भगवान् वासुदेव निवास करते हैं। वे उनसे पृथक् नहीं हैं। श्री साई भी उसी कोटि में हैं, जो कि भक्तों के कल्याण के निमित्त ही अवतीर्ण हुए थे। वे ज्ञानज्योति स्वरूप थे और उनकी दिव्यप्रभा अपूर्व थी। उन्हें समस्त प्राणियों से समान प्रेम था। वे निष्काम तथा नित्यमुक्त थे। उनकी दृष्टि में शत्रु, मित्र, राजा और भिक्षुक सब एक समान थे। पाठकों ! अब कृपया उनका यश श्रवण करें। भक्तों के लिये उन्होंने अपना दिव्य गुणसमूह पूर्णतः प्रयोग किया और सदैव उनकी सहायता के लिये तत्पर रहे। उनकी इच्छा के बिना कोई भक्त उनके पास पहुँच ही न सकता था। यदि उनके शुभ कर्म उदित नहीं हुए हैं तो उन्हें बाबा की स्मृति भी कभी नहीं आई और न ही उनकी लीलायें उनके कानों तक पहुँच सकीं। तब फिर बाबा के दर्शनों का विचार भी उन्हें कैसे आ सकता

था? अनेक व्यक्तियों की श्री साईबाबा के दर्शन की इच्छा होते हुए भी उन्हें बाबा के महासमाधि लेने तक कोई योग प्राप्त न हो सका। अतः **ऐसे व्यक्ति जो दर्शनलाभ से वंचित रहे हैं, यदि वे श्रद्धापूर्वक साईलीलाओं का श्रवण करेंगे तो उनकी साई-दर्शन की इच्छा बहुत कुछ सीमा तक तृप्त हो जाएगी।** भाग्यवश यदि किसी को किसी प्रकार बाबा के दर्शन हो भी गए तो वह वहाँ अधिक ठहर न सका। इच्छा होते हुए भी केवल बाबा की आज्ञा तक ही वहाँ रुकना संभव था और आज्ञा होते ही स्थान छोड़ देना आवश्यक हो जाता था। अतः यह सब उनकी शुभ इच्छा पर ही अवलंबित था।

काका महाजनी

एक समय काका महाजनी बम्बई से शिरडी पहुँचे। उनका विचार एक सप्ताह ठहरने और गोकुल अष्टमी उत्सव में सम्मिलित होने का था। दर्शन करने के बाद बाबा ने उूसे पूछा, ''तुम कब वापस जाओगे?'' उन्हें बाबा के इस प्रश्न पर आश्चर्य-सा हुआ। उत्तर देना तो आवश्यक ही था, इसलिये उन्होंने कहा, ''जब बाबा आज्ञा दें।'' बाबा ने अगले दिन जाने को कहा। बाबा के शब्द कानून थे, जिनका पालन करना नितान्त आवश्यक था। काका महाजनी ने तुरन्त ही प्रस्थान किया। जब वे बम्बई में अपने ऑफिस में पहुँचे तो उन्होंने अपने सेठ को अति उत्सुकतापूर्वक प्रतिक्षा करते पाया। मुनीम के अचानक ही अस्वस्थ हो जाने के कारण काका की उपस्थिति अनिवार्य हो गई थी। सेठ ने शिरडी को जो पत्र काका के लिये भेजा था, वह बम्बई के पते पर उनको वापस लौटा दिया गया।

भाऊसाहेब धुमाल

अब एक विपरीत कथा सुनिये। एक बार भाऊसाहेब धुमाल एक मुकदमे के सम्बन्ध में निफाड़ के न्यायालय को जा रहे थे। मार्ग में वे शिरडी उतरे। उन्होंने बाबा के दर्शन किये और तत्काल ही निफाड़ को प्रस्थान करने लगे, परन्तु बाबा की स्वीकृति प्राप्त न हुई। उन्होंने उन्हें शिरडी में एक सप्ताह

और रोक लिया। इसी बीच में निफाड़ के न्यायाधीश उदर-पीड़ा से ग्रस्त हो गए। इस कारण उनका मुकदमा किसी अगले दिन के लिये बढ़ाया गया। एक सप्ताह बाद भाऊसाहेब को लौटने की अनुमति मिली। इस मामले की सुनवाई कई महिनों तक और चार न्यायाधीशों के पास हुई। फलस्वरूप धुमाल ने मुकदमे में सफलता प्राप्त की और उनका मुवक्किल मामले मे बरी हो गया।

श्रीमती निमोणकर

श्री नानासाहेब निमोणकर, जो निमोण के निवासी और अवैतनिक न्यायाधीश थे, शिरडी में अपनी पत्नी के साथ ठहरे हुए थे। निमोणकर तथा उनकी पत्नी बहुत-सा समय बाबा की सेवा और उनकी संगति में व्यतीत किया करते थे। एक बार ऐसा प्रसंग आया कि उनका पुत्र बेलापुर में रोग से पीड़ित हो गया। तब उसकी माता ने वहाँ जाकर अपने पुत्र और अन्य संबंधियों से मिलने तथा कुछ दिन वहीं व्यतीत करने का निश्चय किया। परन्तु श्री नानासाहेब ने दूसरे दिन ही उन्हें लौट आने को कहा। वे असमंजस में पड़ गईं कि अब क्या करना चाहिए, परन्तु बाबा ने सहायता की। शिरडी से प्रस्थान करने के पूर्व वे बाबा के पास गईं। बाबा साठेवाड़ा के समीप नानासाहेब और अन्य लोगों के साथ खड़े हुये थे। उन्होंने जाकर चरणवन्दना की और प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उनसे कहा, ''शीघ्र जाओ, घबराओ नही; शांत चित्त से बेलापुर में चार दिन सुखपूर्वक रहकर सब सम्बन्धियों से मिलो और तब शिरडी आ जाना।'' बाबा के शब्द कितने सामयिक थे। श्री निमोणकर की आज्ञा बाबा द्वारा रद्द हो गई।

नासिक के मुले शास्त्री ज्योतिषी

नासिक के एक कर्मनिष्ठ, अग्निहोत्र ब्राह्मण थे, जिनका नाम मुले शास्त्री था। इन्होंने छः शास्त्रों का अध्ययन किया था और ज्योतिष तथा सामुद्रिक शास्त्र में भी पारंगत थे। वे एक बार नागपुर के प्रसिद्ध करोड़पति श्री बापूसाहेब बूटी से भेंट करने के बाद अन्य सज्जनों के साथ बाबा के दर्शन करने मस्जिद में गए। बाबा ने फल बेचने वाले से अनेक प्रकार के फल और

अन्य पदार्थ खरीदे और मस्जिद में उपस्थित लोगों में उनको वितरित कर दिया। बाबा आम को इतनी चतुराई से चारों ओर से दबा देते थे कि चूसते ही सम्पूर्ण रस मुँह में आ जाता तथा गुठली और छिलका तुरन्त फेंक दिया जा सकता था। बाबा ने केले छीलकर भक्तों में बाँट दिये और उनके छिलके अपने लिये रख लिये। हस्तरेखा विशारद होने के नाते, मुले शास्त्री ने बाबा के हाथ का परीक्षण करने की प्रार्थना की। परन्तु बाबा ने उनकी प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर उन्हें चार केले दिये। इसके बाद सब लोग वाड़े को लौट आए। अब मुले शास्त्री ने स्नान किया और पवित्र वस्त्र धारण कर अग्निहोत्र आदि में जुट गए। बाबा भी अपने नियमानुसार लेण्डी को रवाना हो गए। जाते-जाते उन्होंने कहा कि कुछ गेरू लाना, आज भगुवा वस्त्र रँगेंगे। बाबा के शब्दों का अभिप्राय किसी की समझ में न आया। कुछ समय के बाद बाबा लौटे। अब मध्याह्न बेला की आरती की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई थीं। बापूसाहेब जोग ने मुले से आरती में साथ करने के लिये पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि वे सन्ध्या समय बाबा के दर्शनों को जाएँगे। तब जोग अकेले ही चले गए। बाबा के आसन ग्रहण करते ही भक्त लोगों ने उनकी पूजा की। अब आरती प्रारम्भ हो गई। बाबा ने कहा, ''उस नये ब्राह्मण से कुछ दक्षिणा लाओ।'' बूटी स्वयं दक्षिणा लेने को गए और उन्होंने बाबा का सन्देश मुले शास्त्री को सुनाया। वे बुरी तरह घबड़ा गए। वे सोचने लगे कि ''मै तो एक अग्निहोत्र ब्राह्मण हूँ, फिर मुझे दक्षिणा देना क्या उचित हैं ? माना कि बाबा महान् संत हैं, परन्तु मैं तो उनका शिष्य नहीं हूँ।'' फिर भी उन्होंने सोचा कि जब बाबा सरीखे महान् संत दक्षिणा माँग रहे हैं और बूटी सरीखे एक करोड़पति लेने को आए हैं तो वे अवहेलना कैसे कर सकते हैं ? इसलिये वे अपने कृत्य को अधूरा ही छोड़कर तुरन्त बुटी के साथ मस्जिद को गए। वे अपने को शुद्ध और पवित्र तथा मस्जिद को अपवित्र जानकर, कुछ अन्तर से खड़े हो गए और दूर से ही हाथ जोड़कर उन्होंने बाबा के ऊपर पुष्प फेंके। एकाएक उन्होंने देखा कि बाबा के आसन पर उनके कैलासवासी गुरु घोलप स्वामी विराजमान हैं। अपने गुरु को वहाँ देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। कहीं यह स्वप्न तो नहीं हैं ? नहीं

! नहीं ! यह स्वप्न नहीं है । मैं पूर्ण जागृत हूँ । परन्तु जागृत होते हुए भी, मेरे गुरु महाराज यहाँ कैसे आ पहुँचे ? कुछ समय तक उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला । उन्होंने अपने को चिकोटी ली और पुनः विचार किया । परन्तु वे निर्णय न कर सके कि कैलासवासी घोलप स्वामी मस्जिद में कैसे आ पहुँचे ? फिर सब सन्देह दूर करके वे आगे बढ़े और गुरु के चरणों पर गिर हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे । दूसरे भक्त तो बाबा की आरती गा रहे थे, परन्तु मुले शास्त्री अपने गुरु के नाम की ही गर्जना कर रहे थे। फिर सब जाति-पाँति का अहंकार तथा पवित्रता और अपवित्रता की कल्पना त्याग कर वे गुरु के श्री चरणों पर पुनः गिर पड़े । उन्होंने आँखें मूँद लीं; परंतु खड़े होकर जब उन्होंने आँखे खोलीं तो बाबा को दक्षिणा माँगते हुए देखा । बाबा का आनन्दस्वरूप और उनकी अनिर्वचनीय शक्ति देख मुले शास्त्री आत्मविस्मृत हो गए । उनके हर्ष का पारावार न रहा । उनकी आँखे अश्रुपूरित होते हुए प्रसन्नता से नाच रही थीं । उन्होंने बाबा को पुनः नमस्कार किया और दक्षिणा दी। मुले शास्त्री कहने लगे कि, ''मेरे सब संशय दूर हो गए । आज मुझे अपने गुरु के दर्शन हुए । बाबा की यह अद्‌भुत लीला देखकर सब भक्त और मुले शास्त्री द्रवित हो गए । ''गेरू लाओ, आज भगुवा वस्त्र रँगेंगे'' - बाबा के इन शब्दों का अर्थ अब सब की समझ में आ गया । ऐसी अद्‌भुत लीला श्री साईबाबा की थी ।

डॉक्टर

एक समय एक मामलतदार अपने एक डॉक्टर मित्र के साथ शिरडी पधारे । डॉक्टर का कहना था कि मेरे इष्ट श्रीराम हैं । मैं किसी यवन को मस्तक न नमाऊँगा । अतः वे शिरडी जाने में असहमत थे । मामलतदार ने समझाया कि ''तुम्हें नमन करने को कोई बाध्य न करेगा और न ही तुम्हें कोई ऐसा करने को कहेगा । अतः मेरे साथ चलो, आनन्द रहेगा।'' वे शिरडी पहुँचे और बाबा के दर्शन को गए । परन्तु डॉक्टर को ही सबसे आगे जाते देख और बाबा की प्रथम चरण-वन्दना करते देख सब को बड़ा विस्मय हुआ । लोगों ने डॉक्टर से अपना निश्चय बदलने और इस भाँति एक यवन को दंडवत् करने का

कारण पूछा। डॉक्टर ने बतलाया कि बाबा के स्थान पर उन्हें अपने प्रिय इष्टदेव श्रीराम के दर्शन हुए और इसलिये उन्होंने नमस्कार किया। जब वे ऐसा कह रहे थे, तभी उन्हें साईबाबा का रूप पुनः दीखने लगा। वे आश्चर्यचकित होकर बोले – ''क्या यह स्वप्न है? ये यवन कैसे हो सकते हैं ? अरे ! अरे ! यह तो पूर्ण योग-अवतार हैं। दूसरे दिन से उन्होंने उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक बाबा स्वयं बुलाकर आशीर्वाद नहीं देंगे, तब तक मस्जिद में कदापि न जाऊँगा। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। चौथे दिन उनका एक इष्ट मित्र खानदेश से शिरडी आया। वे दोनों मस्जिद में बाबा के दर्शन करने गए। नमस्कार होने के बाद बाबा ने डॉक्टर से पूछा, ''आपको बुलाने का कष्ट किसने किया ? आप यहाँ कैसे पधारे ?'' यह प्रश्न सुनकर डॉक्टर द्रवित हो गए और उसी रात्रि को बाबा ने उनपर कृपा की। डॉक्टर को निद्रा में ही परमानन्द का अनुभव हुआ। वे अपने शहर लौट आए तो भी उन्हें १५ दिनों तक वैसा ही अनुभव होता रहा। इस प्रकार उनकी साईभक्ति कई गुना बढ़ गई।

उपर्युक्त कथाओं की शिक्षा, विशेषतः मुले शास्त्री की, यही है कि हमें अपने गुरु में दृढ़ विश्वास होना चाहिए।

अगले अध्याय में बाबा की अन्य लीलाओं का वर्णन होगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

अध्याय-१३
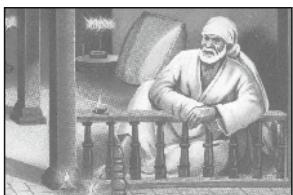
अन्य कई लीलाएँ-रोगनिवारण (१) भीमाजी पाटील (२) बाला गणपत दर्जी (३) बापूसाहेब बूटी (४) आलंदीस्वामी (५) काका महाजनी (६) हरदा के दत्तोपंत।

माया की अभेद्य शक्ति

बाबा के शब्द सदैव संक्षिप्त, अर्थपूर्ण, गूढ़ और विद्वत्तापूर्ण तथा समतोल रहते थे। वे सदा निश्चिंत और निर्भय रहते थे। उनका कथन था कि "मै फकीर हूँ, न तो मेरे स्त्री है और न घर-द्वार ही। सब चिंताओं का त्याग कर, मैं एक ही स्थान पर रहता हूँ। फिर भी माया मुझे कष्ट पहुँचाया करती है। मैं स्वयं को तो भूल चुका हूँ, परन्तु माया मुझे नहीं भूलती, क्योंकि वह मुझे अपने चक्र में फँसा लेती है। श्रीहरि की यह माया ब्रह्मादि को भी नहीं छोड़ती, फिर मुझ सरीखे फकीर का तो कहना ही क्या है ? परन्तु जो हरि की शरण लेंगे, वे उनकी कृपा से मायाजाल से मुक्त हो जाएँगे।" इस प्रकार बाबा ने माया की शक्ति का परिचय दिया। भगवान् श्रीकृष्ण भागवत में उद्धव से कहते हैं कि, "सन्त मेरे जीवित स्वरूप हैं" और बाबा का भी कहना यही था कि **वे भाग्यशाली, जिनके समस्त पाप नष्ट होने हों, वे ही मेरी उपासना की ओर अग्रेसर होते हैं। यदि तुम केवल "साई साई" का ही स्मरण करोगे तो मैं तुम्हें भवसागर से पार दूँगा।** इन शब्दों पर विश्वास करो, तुम्हें अवश्य लाभ होगा। मेरी पूजा के निमित्त कोई सामग्री या अष्टांग योग की भी आवश्यकता नहीं है। मैं तो भक्ति में ही निवास करता हूँ। अब आगे देखिये कि अनाश्रितों के आश्रयदाता साई ने भक्तों के कल्याणार्थ क्या-क्या दिया।

भीमाजी पाटील : सत्य साई व्रत

नारायण गाँव (तालुका जुन्नर, जिला पूना) के एक महानुभाव भीमाजी

पाटील को सन् १९०९ में वक्षस्थल में एक भयंकर रोग हुआ, जो आगे चल कर क्षय रोग में परिणत हो गया । उन्होंने अनेक प्रकार की चिकित्सा की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ । अन्त में हताश होकर उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की, ''हे नारायण ! हे प्रभो ! मुझ अनाथ की कुछ सहायता करो!'' यह तो विदित ही है कि जब हम सुखी रहते हैं तो भगवत्-स्मरण नहीं करते, परन्तु ज्यों ही दुर्भाग्य घेर लेता है दुर्दिन आते हैं, तभी हमें भगवान की याद आती है।[१] इसीलिये भीमाजी ने भी ईश्वर को पुकारा । उन्हें विचार आया कि क्यों न साईबाबा के परम भक्त श्री नानासाहेब चाँदोरकर से इस विषय में परामर्श लिया जाए और इसी हेतु उन्होंने अपनी स्थिति पूर्ण विवरण सहित उनके पास लिख भेजी और उचित मार्गदर्शन के लिये प्रार्थना की । प्रत्युत्तर में श्री नानासाहेब ने लिख दिया कि, ''अब तो केवल एक ही उपाय शेष है और वह है साईबाबा के चरणकमलों की शरणागति।' नानासाहेब के वचनों पर विश्वास कर उन्होंने शिरडी-प्रस्थान की तैयारी की । उन्हें शिरडी में लाया गया और मस्जिद में ले जाकर लिटाया गया । श्री नानासाहेब और शामा भी अस समय वहीं उपस्थित थे । बाबा बोले कि, ''यह पूर्व-जन्म के बुरे कर्मों का ही फल है । इस कारण मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता ।'' यह सुनकर रोगी अत्यन्त निराश होकर करुणापूर्ण स्वर में बोला कि, ''मैं बिल्कुल निस्सहाय हूँ और अन्तिम आशा लेकर आपके श्री-चरणों में आया हूँ । आपसे दया की भीख माँगता हूँ । हे दीनों के शरण ! मुझ पर दया करो।'' इस प्रार्थना से बाबा का हृदय द्रवित हो आया और वे बोले कि ''अच्छा, ठहरो ! चिन्ता न करो । तुम्हारे दुःखों का अन्त शीघ्र होगा । **कोई कितना भी दुःखित और पीड़ित क्यों न हो, जैसे ही वह मस्जिद की सीढ़ियों पर पैर रखता है, वह सुखी हो जाता है ।** मस्जिद का फकीर बहुत दयालु है और वह तुम्हारा रोग भी निर्मूल कर देगा । वह तो सब पर प्रेम और दया रखकर रक्षा करता है।'' रोगी को हर पाँचवे मिनट पर खून की उल्टियाँ हुआ करती थीं, परन्तु बाबा के समक्ष उसे

---

१. दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, दुख काहे को होय ।।

कोई उल्टी न हुई । जिस समय से बाबा ने अपने श्री-मुख से आशा और दयापूर्ण शब्दों में उक्त उद्गार प्रगट किये, उसी समय से रोग ने भी पल्टा खाया । बाबा ने रोगी भीमाबाई के घर में ठहरने को कहा । यह स्थान इस प्रकार के रोगी का सुविधाजनक और स्वास्थ्यप्रद तो न था, फिर भी बाबा की आज्ञा कौन टाल सकता था ? वहाँ पर रहते हुए बाबा ने दो स्वप्न देकर उसका रोग हरण कर लिया । पहले स्वप्न में रोगी ने देखा कि वह एक विद्यार्थी है और शिक्षक के सामने कविता मुखाग्र न कर सकने के दण्डस्वरूप बेतों की मार से असहनीय कष्ट भोग रहा है । दूसरे स्वप्न में उसने देखा कि कोई हृदय पर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की ओर पत्थर घुमा रहा है, जिससे उसे असह्य पीड़ा हो रही है । स्वप्न में इस प्रकार कष्ट पाकर वह स्वस्थ हो गया और घर लौट आया । फिर वह कभी-कभी शिरडी आता और साईबाबा की दया का स्मरण कर साष्टांग प्रणाम करता था । बाबा अपने भक्तों से किसी वस्तु की आशा न रखते थे । वे तो केवल स्मरण, दृढ़ निष्ठा और भक्ति के भूखे थे । महाराष्ट्र के लोग प्रतिपक्ष या प्रतिमास सदैव सत्यनारायण का व्रत किया करते हैं । परन्तु अपने गाँव पहुँचने पर भीमाजी पाटील ने सत्यनारायण व्रत के स्थान पर एक नया ही ''सत्य साई व्रत'' प्रारम्भ कर दिया ।

बाला गणपत दर्जी

एक दूसरे भक्त, जिनका नाम बाला गणपत दर्जी था, एक समय जीर्ण ज्वर से पीड़ित हुए। उन्होनें सब प्रकार की दवाइयाँ और काढ़े लिये, परन्तु इनसे कोई लाभ न हुआ । जब ज्वर तिलमात्र भी न घटा तो वे शिरडी दौड़े आए और बाबा के श्रीचरणों की शरणी ली । बाबा ने उन्हें विचित्र आदेश दिया कि, ''लक्ष्मी मंदिर के पास जाकर एक काले कुत्ते को थोड़ा सा दही और चावल खिलाओ ।'' वे यह समझ न सके कि इस आदेश का पालन कैसे करें ? घर पहुँचकर चावल और दही लेकर वे लक्ष्मी मंदिर पहुँचे, जहाँ उन्हें एक काला कुत्ता पूँछ हिलाते हुए दिखा । उन्होंने वह चावल और दही उस कुत्ते के सामने रख दिया, जिसे वह तुरन्त ही खा गया । इस चरित्र की विशेषता का वर्णन

केसे करूँ कि उपर्युक्त उपाय करने मात्र से ही बाला दर्जी का ज्वर हमेशा के लिये जाता रहा ।

बापूसाहेब बूटी

श्रीमान् बापूसाहेब बूटी एक बार अम्लपित्त के रोग से पीड़ित हुए । उनकी अलमारी में अनेक औषधियाँ थीं, परन्तु कोई भी गुणकारी न हो रही थी । बापूसाहेब अम्लपित्त के कारण अति दुर्बल हो गए और उनकी स्थिति इतनी गम्भीर हो गई कि वे अब मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन करने में भी असमर्थ थे । बाबा ने उन्हें बुलाकार अपने सम्मुख बिठाया और बोले, ''सावधान, अब तुम्हें दस्त न लगेंगे ।'' अपनी उँगली उठाकर फिर कहने लगे, ''उल्टियाँ भी अवश्य रुक जाएँगी ।'' बाबा ने ऐसी कृपा की कि रोग समूल नष्ट हो गया और बूटीसाहेब पूर्ण स्वस्थ हो गए ।

एक अन्य अवसर पर भी वे हैजा से पीड़ित हो गए । फलस्वरूप उनकी प्यास अधिक तीव्र हो गई । डॉ. पिल्ले ने हर तरह के उपचार किये, परन्तु स्थिति न सुधरी । अन्त में वे फिर बाबा के पास पहुँचे और उनसे तृषारोग निवारण की औषधि के लिये प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना सुनकर बाबा ने उन्हें, ''मीठे दूध में उबाला हुआ बादाम, अखरोट और पिस्ते का काढ़ा पियो।''– यह औषधि बतला दी ।

दूसरा डॉक्टर या हकीम बाबा की बतलाई हुई इस औषधि को प्राणघातक ही समझता, परन्तु बाबा की आज्ञा का पालन करने से यह रोगनाशक सिद्ध हुई और आश्चर्य की बात है कि रोग समूल नष्ट हो गया ।

आलंदी के स्वामी

आलंदी के एक स्वामी बाबा के दर्शनार्थ शिरडी पधारे । उनके कान में असह्य पीड़ा थी, जिसके कारण उन्हें एक पल भी विश्राम करना दुष्कर था । उनकी शल्य चिकित्सा भी हो चुकी थी, फिर भी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ था । दर्द भी अधिक था । वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वापस

लौटने के लिये बाबा से अनुमति माँगने गए । यह देखकर शामा ने बाबा से प्रार्थना की कि, ''स्वामी के कान में अधिक पीड़ा है । आप इन पर कृपा करो।'' बाबा आश्वासन देकर बोले, ''अल्लाह अच्छा करेगा।'' स्वामीजी पूना वापस लौट गए और एक सप्ताह के बाद उन्होंने शिरडी पत्र भेजा कि, ''पिड़ा शान्त हो गई है । परन्तु सूजन अभी पूर्ववत् ही है ।'' सूजन दूर हो जाए, इसके लिये वे शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) कराने बम्बई गए । शल्यचिकित्सा विशेषज्ञ (सर्जन) ने जाँच करने के बाद कहा कि ''शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) की कोई आवश्यकता नहीं ।'' बाबा के शब्दों का गुढ़ार्थ हम निरे मूर्ख क्या समझें?

काका महाजनी

काका महाजनी नाम के एक अन्य भक्त को अतिसार की बीमारी हो गई। बाबा का सेवा-क्रम कहीं टूट न जाए, इस कारण वे एक लोटा पानी भरकर मस्जिद के एक कोने में रख देते थे, ताकि शंका होने पर शीघ्र ही बाहर जा सकें । श्री साईबाबा को तो सब विदित ही था । फिर भी काका ने बाबा को सूचना इसलिये नहीं दी कि वे रोग से शीघ्र ही मुक्ति पा जाएँगे । मस्जिद में फर्श बनाने की स्वीकृति बाबा से प्राप्त हो ही चुकी थी, परन्तु जब कार्य प्रारम्भ हुआ तो बाबा क्रोधित हो गए और उत्तेजित होकर चिल्लाने लगे, जिससे भगदड़ मच गई । जैसे ही काका भागने लगे, वैसे ही बाबा ने उन्हें पकड़ लिया और अपने सामने बैठा लिया । इस गड़बड़ी में कोई आदमी मुँगफली की एक छोटी थैली वहाँ भूल गया । बाबा ने एक मुट्ठी मूँगफली उसमें से निकाली और छील कर दाने काका को खान के लिये दे दिये । क्रोधित होना, मूँगफली छीलना और उन्हें काका को खिलाना, यह सब कार्य एक साथ ही चलने लगा । स्वयं बाबा ने भी उसमें से कुछ मूँगफली खाई । जब थैली खाली हो गई तो बाबा ने कहा कि मुझे प्यास लगी है। जाकर थोड़ा जल ले आओ । काका एक घड़ा पानी भर लाये और दोनों ने उसमें पानी पिया । फिर बाबा बोले कि, ''अब तुम्हारा अतिसार रोग दूर हो गया । तुम अपने फर्श के कार्य की देखभाल कर

सकते हो।'' थोड़े ही समय में भागे हुए लोग भी लौट आए। कार्य पुनः प्रारम्भ हो गया। काका का रोग अब प्रायः दूर हो चुका था। इस कारण वे कार्य में संलग्न हो गए। क्या मूँगफली अतिसार रोग की औषधि है ? इसका उत्तर कौन दे ? वर्त्तमान चिकित्सा प्रणाली के अनुसार तो मूँगफली से अतिसार में वृद्धि ही होती है, न कि मुक्ति। इस विषय में सदैव की भाँति बाबा के श्री वचन ही औषधिस्वरूप थे।

हरदा के दत्तोपन्त

हरदा के एक सज्जन, जिनका नाम श्री दत्तोपन्त था, १४ वर्ष से उदर रोग से पीड़ित थे। किसी भी ओषधि से उन्हें लाभ न हुआ। अचानक कहीं से बाबा की कीर्ति उनके कानों में पड़ी कि उनकी दृष्टि मात्र से ही रोगी स्वस्थ हो जाते हैं। अतः वे शिरडी आए और बाबा के चरणों की शरण ली। बाबा ने प्रेम-दृष्टि से उनकी ओर देखकर आशीर्वाद देकर अपना वरद्हस्त उनके मस्तक पर रखा। आशीष और उदी प्राप्त कर वे स्वस्थ हो गए तथा भविष्य में उन्हें फिर कोई पीड़ा न हुई।

इसी तरह के निम्नलिचित तीन चमत्कार इस अध्याय के अन्त में टिप्पणी में दिये गए हैं-

(१) माधवराव देशपांडे बवासीर रोग से पीड़ित थे। बाबा की आज्ञानुसार सोनामुखी का काढ़ा सेवन करने से वे नीरोग हो गए। दो वर्ष पश्चात् उन्हें पुनः वही पीड़ा उत्पन्न हुई। बाबा से बिना परामर्श लिये वे उसी काढ़े का सेवन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि रोग अधिक बढ़ गया। परन्तु बाद में बाबा कि कृपा से शीघ्र ही ठीक हो गया।

(२) काका महाजनी के बड़े भाई गंगाधरपन्त को कुछ वर्षों से सदैव उदर में पीड़ा बनी रहती थी। बाबा की कीर्त्ति सुनकर वे भी शिरडी आए और आरोग्य-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने लगे। बाबा ने उनके उदर को स्पर्श कर कहा, ''अल्लाह अच्छा करेगा।'' इसके पश्चात् तुरंत ही उनकी उदर-पीड़ा

मिट गई और वे पूर्णतः स्वस्थ हो गए।

(३) श्री नानासाहेब चाँदोरकर को भी एक बार उदर में बहुत पीड़ा होने लगी। वे दिनरात मछली के समान तड़पने लगे। डॉक्टरों ने अनेक उपचार किये, परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त में वे बाबा की शरण में आए। बाबा ने उन्हें घी के साथ बर्फी खाने आज्ञा दी। इस औषधि के सेवन से वे पूर्ण स्वस्थ हो गए।

इन सब कथाओं से यही प्रतीत होता है कि सच्ची औषधि, जिससे अनेकों को स्वास्थ-लाभ हुआ, वह बाबा के केवल श्रीमुख से उच्चारित वचनों एवं उनकी कृपा का ही प्रभाव था।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायणःद्वितीय विश्राम

अध्याय-१४

नांदेड़ के रतनजी वाडिया, संत मौला साहेब, दक्षिणा मीमांसा, गणपतराव बोडस, श्रीमती तर्खड, दक्षिणा का मर्म ।

श्री साईबाबा के वचनों और कृपा द्वारा किस प्रकार असाध्य रोग भी निर्मूल हो गए, इसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है । अब बाबा ने किस प्रकार रतनजी वाडिया को अनुगृहीत किया तथा किस प्रकार उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, इसका वर्णन इस अध्याय में होगा।

इस संत की जीवनी सर्व प्रकार से प्राकृतिक और मधुर है । उनके अन्य कार्य भी जैसे भोजन, चलना-फिरना तथा स्वाभाविक अमृतोपदेश बड़े ही मधुर हैं । वे आनन्द के अवतार हैं । इस परमानंद का उन्होंने अपने भक्तों को भी रसास्वादन कराया और इसीलिये उन्हें उनकी चिरस्मृति बनी रही । भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म और कर्त्तव्यों की अनके कथाएँ भक्तों को उनके द्वारा प्राप्त हुई, जिससे वे सत्व मार्ग का अवलम्बन कर सके । बाबा की सदैव यही इच्छा थी कि लोग संसार में सुखी जीवन व्यतीत करें और वे सदैव जागरुक रहकर अपने जीवन का परम लक्ष्य, आत्मानुभूति (या ईश्वरदर्शन) अवश्य प्राप्त करें । **पिछले जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही यह देह प्राप्त है और उसकी सार्थकता तभी है, जब उसकी सहायता से हम इस जीवन में भक्ति और मोक्ष प्राप्त कर सकें ।** हमें अपने अन्त और जीवन के लक्ष्य के हेतु सदैव सावधान तथा तत्पर रहना चाहिए।

यदि तुम नित्य श्री साई की लीलाओं का श्रवण करोगे तो तुम्हें उनका सदैव दर्शन होता रहेगा । दिनरात उनका हृदय में स्मरण करते रहो । इस प्रकार आचरण करने से मन की चंचलता शीघ्र नष्ट हो जाएगी । यदि इसका

निरंतर अभ्यास किया गया तो तुम्हें चैतन्य-घन से अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।

नांदेड़ के रतनजी

अब हम इस अध्याय की मूल कथा का वर्णन करते हैं । नांदेड़ (निज़ाम रियासत) में रतनजी शापुरजी वाडिया नामक एक प्रसिद्ध व्यापारी रहते थे । उन्होंने व्यापार में यथेष्ट धनराशि संग्रह कर ली थी । उनके पास अतुलनीय सम्पत्ति, खेत और चरोहर तथा कई प्रकार के पशु, घोड़े, गधे, खच्चर आदि और गाड़ियाँ भी थीं । वे अत्यन्त भाग्यशाली थे । यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे अधिक सुखी और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे, परन्तु यथार्थ में वे वैसे न थे । विधाता की रचना कुछ ऐसी विचित्र है कि इस संसार में पूर्ण सुखी कोई नहीं और धनाढ्य रतनजी भी इसके अपवाद न थे । वे परोपकारी तथा दानशील थे । वे दीनों को भोजन और वस्त्र वितरण करते तथा सभी लोगों की अनेक प्रकार से सहायता किया करते थे । उन्हें लोग अत्यन्त सुखी समझते थे । किन्तु दीर्घ काल तक संतान न होने के कारण उनके हृदय मे दुःख अधिक था । जिस प्रकार प्रेम तथा भक्तिरहीत कीर्तन, वाद्यरहित संगीत, यज्ञोपवीतरहित ब्राह्मण, व्यावाहारिक ज्ञानरहित कलाकार, पश्चातापरहित तीर्थयात्रा और कंठमाला (मंगल सूत्र) रहित अलंकार, उत्तम प्रतीत नहीं होते, उसी प्रकार संतानरहित गृहस्थ का घर भी सूना ही रहता है । रतनजी सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे । वे मन ही मन कहते, ‘‘क्या ईश्वर की मुझ पर कभी दया न होगी ? क्या मुझे कभी पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी ?’’ इसके लिये वे सदैव उदास रहते थे । उन्हें भोजन से भी अरूचि हो गई । पुत्र की प्राप्ति कब होगी, यही चिन्ता उन्हें सदैव घेरे रहती थी । उनकी दासगणु महाराज पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने अपना हृदय उनके सम्मुख खोल दिया, तब उन्होंने श्री साई समर्थ की शरण जाने और उनसे संतान-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का परामर्श दिया। रतनजी को भी यह विचार रूचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने शिरडी जाने का निश्चय किया । कुछ दिनों उपरांत वे शिरडी आए और बाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे । उन्होंने एक सुन्दर हार बाबा को पहना कर बहुत से फल-फूल भेंट

किये। तत्पश्चात् आदर सहित बाबा के पास बैठकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, ''अनेक आपत्तिग्रस्त लोग आप के पास आते हैं और आप उनके कष्ट तुरंत दूर कर देते हैं। यही कीर्ति सुनकर मैं भी बड़ी आशा से आपके श्रीचरणों में आया हूँ। मुझे बड़ा भरोसा हो गया है, कृपया मुझे निराश न कीजिये।'' श्री साईबाबा ने उनसे पाँच रुपये दक्षिणा माँगी, जो वे देना ही चाहते थे। परन्तु बाबा ने पुनः कहा, ''मुझे तुमसे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये केवल शेष रुपये ही दो।'' यह सुनकर रतनजी असमंजस में पड़ गए। बाबा के कथन का अभिप्राय उनकी समझ में न आया। वे सोचने लगे कि यह ''शिरडी आने का मेरा प्रथम ही अवसर है और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्हें तीन रुपये चौदह आने पहले प्राप्त हो चुके हैं।'' वे यह पहेली हल न कर सके। वे बाबा के चरणों के पास ही बैठे रहे तथा उन्हें दक्षिणा अर्पित कर दी। उन्होने अपने आगमन का हेतु बतलाया और पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की। बाबा को दया आ गई। वे बोले, ''चिन्ता त्याग दो, अब तुम्हारे दुर्दिन समाप्त हो गए हैं।'' इसके बाद बाबा ने उदी देकर अपना वरद्‌हस्त उनके मस्तक पर रखकर कहा, ''अल्लाह तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा।''

बाबा की अनुमति प्राप्त कर रतनजी नांदेड़ लौट आए और शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे दासगणु को सुनाया। रतनजी ने कहा, ''सब कार्य ठीक ही रहा। बाबा के शुभ दर्शन हुए, उनका आशीर्वाद और प्रसाद भी प्राप्त हुआ, परन्तु वहाँ की एक बात समझ में नही आई।'' वहाँ पर बाबा ने कहा था कि, ''मुझे तीन रुपये चौदह आने पहले ही प्राप्त हो चुके हैं।'' कृपया समझाइये की इसका क्या अर्थ है ? इससे पूर्व मैं शिरडी कभी भी नहीं गया। फिर बाबा को वे रुपये कैसे प्राप्त हो गए, जिसका उन्होंने उल्लेख किया?' दासगणु के लिये भी यह एक पहेली ही थी। बहुत दिनों तक वे इस पर विचार करते रहे। कई दिनों के पश्चात् उन्हें स्मरण हुआ कि कुछ दिन पहले रतनजी ने एक यवन संत मौली साहेब को अपने घर आतिथ्य के लिये निमंत्रित किया था तथा इसके निमित्त उन्होंने कुछ धन व्यय किया था। मौली साहेब नांदेड़ के एक

प्रसिद्ध सन्त थे, जो कुली का काम किया करते थे। जब रतनजी ने शिरडी जाने का निश्चय किया था, उसके कुछ दिन पूर्व ही मौली साहेब अनायास ही रतनजी के घर आए। रतनजी उनसे अच्छी तरह परिचित थे तथा उनसे प्रेम करते थे। इसलिये उनके सत्कार में उन्होंने एक छोटे से जलपान की व्यवस्था भी की थी। दासगणु ने रतनजी से आतिथ्य के खर्च की सूची माँगी और यह जानकर सबको आश्चर्य हुआ कि खर्चा तीन रुपये चौदह आने ही हुआ था, ना इससे कम था और अधिक। सबको बाबा की त्रिकालज्ञता विदित हो गई। यद्यपि वे शिरडी में विराजमान थे, परन्तु शिरडी के बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। यथार्थ में बाबा भूत, भविष्यत् और वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता और प्रत्येक आत्मा तथा हृदय के साथ संबद्ध थे। अन्यथा मौली साहेब के स्वागतार्थ खर्च की गई रकम बाबा को कैसे विदित हो सकती थी।

रतनजी इस उत्तर से सन्तुष्ट हो गए और उनकी साईचरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो गई। उपयुक्त समय पर उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे उनके हर्ष का पारावार न रहा। कहते हैं कि उनके यहाँ बारह संतानें हुईं, जिनमें से केवल चार शेष रहीं।

इस अध्याय के नीचे लिखा है कि बाबा ने रावबहादुर हरी विनायक साठे को उनकी पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरा ब्याह करने पर पुत्ररत्न की प्राप्ति बतलाई। रावबहादुर साठे ने द्वितीय विवाह किया। प्रथम दो कन्यायें हुईं, जिससे वे बड़े निराश हुए, परन्तु तृतीय बार पुत्र प्राप्त हुआ। इस तरह बाबा के वचन सत्य निकले और वे सन्तुष्ट हो गए।

दक्षिणा मीमांसा

दक्षिणा के संबंध में कुछ अन्य बातों का निरूपण कर हम यह अध्याय समाप्त करेंगे। यह तो विदित ही है कि जो लोग बाबा के दर्शन को आते थे, उनसे बाबा दक्षिणा लिया करते थे। यहाँ किसी को भी शंका उत्पन्न हो सकती है कि जब बाबा फकीर और पूर्ण विरक्त थे तो क्या उनका प्रकार दक्षिणा ग्रहण करना और कांचन को महत्व देना उचित था ? अब इस प्रश्न पर हम विस्तृत

रूप से विचार करेंगे ।

बहुत काल तक बाबा भक्तों से कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे । वे जली हुई दियासलाइयाँ एकत्रित कर अपनी जेब में भर लेते थे । चाहे भक्त हो या और कोई, वे कभी किसी से कुछ भी नही माँगते थे । यदि किसी ने उनके सामने एक पैसा रख दिया तो वे उसे स्वीकार करके उससे तम्बाकू अथवा तेल आदि खरीद लिया करते थे, वे प्रायः बीड़ी या चिलम पिया करते थे । कुछ लोगों ने सोचा कि बिना कुछ भेंट किये सन्तों के दर्शन उचित नहीं है । इसलिये वे बाबा के सामने पैसे रखने लगे । यदि एक पैसा होता तो वे उसे जेब में रख लेते है और यदि दो पैसे हुए तो तुरन्त उसमें से एक पैसा वापस कर देते थे । जब बाबा की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली और लोगों के झुण्ड के झुण्ड बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, तब काका ने उनसे दक्षिणा लेना आरम्भ कर दिया । श्रुति कहती है कि स्वर्ण मुद्रा के अभाव में भगवतपूजन भी अपूर्ण है । अतः जब ईश्वर-पूजन में मुद्रा आवश्यक है तो फिर सन्तपूजन में क्यों न हो ? इसीलिये शास्त्रों में कहा हैं कि ईश्वर, राजा, सन्त या गुरु के दर्शन, अपनी सामर्थ्यानुसार बिना कुछ अर्पण किये, कभी न करना चाहिए । उन्हें क्या भेंट दी जाए ? अधिकतर मुद्रा या धन । इस सम्बन्ध में उपनिषदों में वर्णित नियमों का अवलोकन करें । वृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि दक्ष प्रजापति ने देवता, मनुष्य और राक्षसों के सामने एक अक्षर 'द' का उच्चारण किया । देवताओं ने इसका अर्थ लगाया कि उन्हें दम अर्थात् आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना चाहिए । मनुष्यों ने समझा कि उन्हें दान का अभ्यास करना चाहिए तथा राक्षसों ने सोचा कि हमें दया का अभ्यास करना चाहिए । मनुष्यों को दान की सलाह दी गई । तैत्तिरीय उपनिषद् में दान व अन्य सत्व गुणों को अभ्यास में लाने की बात कही गयी है । दान के संबंध में लिखा है, ''विश्वासपूर्वक दान करो, उसके बिना दान व्यर्थ है । उदार हृदय तथा विनम्र बन कर, आदर और सहानुभूतिपूर्वक दान करो।'' भक्तों को कांचन-त्याग का पाठ पढ़ाने तथा उनकी आसक्ति दूर करने और चित्त शुद्ध कराने के लिए ही बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे । परन्तु उनकी एक विशेषता भी थी । बाबा कहा करते थे कि, ''जो कुछ भी मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे उसे सौ गुना से

अधिक वापस करना पड़ता है।'' इसके अनेक प्रमाण हैं।

(१) **एक घटना :** श्री गणपतराव बोडस, अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं कि बाबा के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने अपने रुपयों की थैली उनके सामने उँडेल दी। श्री बोडस लिखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में फिर उन्हें धन का अभाव कभी न हुआ तथा प्रचुर मात्रा में लाभ ही होता रहा। इसका एक भिन्न अर्थ भी है। अनेकों बार बाबा ने किसी प्रकार की दक्षिणा स्वीकार भी नहीं की। इसके दो उदाहरण हैं। बाबा ने प्रो.सी.के. नारके से १५ रुपये दक्षिणा माँगी। वे प्रत्युत्तर में बोले, कि मेरे पास तो एक पाई नहीं है। तब बाबा ने कहा कि, ''मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है, परन्तु तुम योगवशिष्ठ का अध्ययन तो करते हो, उसमें से ही दक्षिणा दो।'' यहाँ दक्षिणा का अर्थ है - पुस्तक से शिक्षा ग्रहण कर हृदयंगम करना, जो कि बाबा का निवासस्थान है।

(२) एक दूसरी घटना में, उन्होंने एक महिला श्रीमती आर. ए. तर्खड से छः रुपये दक्षिणा माँगी। महिला बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उनके पास देने को कुछ भी न था। उनके पति ने उन्हें समझाया कि बाबा का अर्थ तो षड्‌रिपुओं से है, जिन्हें बाबा को समर्पित कर देना चाहिए। बाबा इस अर्थ से सहमत हो गए।

यह ध्यान देने योग्य है कि बाबा के पास दक्षिणा के रूप में बहुत-सा द्रव्य एकत्रित हो जाता था। सब द्रव्य वे उसी दिन व्यय कर देते और दूसरे दिन फिर सदैव की भाँति निर्धन बन जाते थे। जब उन्होंने महासमाधि ली तो १० वर्ष तक हजारों रुपया दक्षिणा मिलने पर भी उनके पास स्वल्प राशि ही शेष थी।

संक्षेप में दक्षिणा लेने का मुख्य ध्येय तो भक्तों को केवल शुद्धीकरण का पाठ ही सिखाना था।

दक्षिणा का मर्म

ठाणे के श्री बी. व्ही. देव, (सेवा-निवृत्त प्रान्त मामलतदार, जो बाब के

परम भक्त थे) ने इस विषय पर एक लेख। (साई लीला पत्रिका, भाग ७, पृष्ठ ६२३) अन्य विषयों सहित प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार है :- ''बाबा प्रत्येक से दक्षिणा नहीं लेते थे। यदि बाबा के बिना माँगे किसी ने दक्षिणा भेंट की तो वे कभी तो स्वीकार कर लेते और कभी अस्वीकार भी कर देते थे। वे केवल भक्तों से ही कुछ माँग करते थे। उन्होंने उन लोगों से कभी कुछ न माँगा, जो सोचते थे कि बाबा के माँगने पर ही दक्षिणा देंगे। यदि किसी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध दक्षिणा दे दी तो वे वहाँ से उसे उठाने को कह देते थे। स्त्री और बालकों से भी वे दक्षिणा ले लेते थे। उन्होंने सभी धनाढ्यों या निर्धनों से कभी दक्षिणा नही माँगी। बाबा के माँगने पर भी जिन्होंने दक्षिणा न दी, उनसे वे कभी क्रोधित नहीं हुए। यदि किसी मित्र द्वारा उन्हें दक्षिणा भिजवाई गई होती और उसका उसे स्मरण न रहता तो बाबा किसी न किसी प्रकार उसे स्मरण कराकर वह दक्षिणा ले लेते थे। कुछ अवसरों पर वे दक्षिणा की राशि में से कुछ अंश लौटा भी देते और देने वालों को सँभालकर रखने या पूजन में रखने के लिये कह देते थे। इससे दाता या भक्त को बहुत लाभ पहुँचता था। यदि किसी ने अपनी इच्छित राशि से अधिक भेंट की तो वे वह अधिक राशि लौटा देते थे। किसी-किसी से तो वे उसकी इच्छित राशि से भी अधिक माँग कर बैठते थे और यदि उसके पास नहीं होती तो दूसरे से उधार लेने या दूसरों से माँगने को भी कहते थे। किसी-किसी से तो दिन में तीन-चार बार दक्षिणा माँगा करते थे।''

दक्षिणा में एकत्रित राशि में से बाबा अपने लिये बहुत थोड़ा खर्च किया करते थे। जैसे-चिलम पीने की तंबाकू और धूनी के लिए लकड़ियाँ मोल लेने के लिये आदि। शेष अन्य व्यक्तियों को विभिन्न राशियों में भिक्षास्वरूप दे देते थे। शिरडी संस्थान की समस्त सामग्रियाँ राधाकृष्णमाई की प्रेरणा से ही धनी भक्तों ने एकत्र की थीं। अधिक मूल्यवाले पदार्थ लाने वालों से बाबा अति क्रोधित हो जाते और अपशब्द कहने लगते थे। उन्होंने श्री नानासाहेब

चाँदोरकर से कहा कि मेरी सम्पत्ति केवल एक कौपीन और टमरेल है । लोग बिना कारण ही मूल्यावान् पदार्थ लाकर मुझे दुःखित करते हैं । कामिनी और कांचन मार्ग में दो मुख्य बाधाएँ हैं और बाबा ने इसके लिए दो पाठशालाएँ खोली थीं । यथा-दक्षिणा ग्रहण करना और राधाकृष्णमाई के यहाँ भेजना- इस बात की परीक्षा करने लिये कि क्या उनके भक्तों ने इस आसक्तियों से छुटकारा पा लिया है या नहीं । इसीलिये जब कोई आता तो वे उनसे दक्षिणा माँगते और उनसे शाला में (राधाकृष्णमाई के घर) जाने को कहते । यदि वे इन परिक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वे कामिनी और कांचन की आसक्ति से विरक्त हैं तो बाबा की कृपा और आशीर्वाद से उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही हो जाती थी ।

श्री देव ने गीता और उपनिषद् से घटनाएँ उद्धृत की हैं कि किसी तीर्थस्थान में किसी पूज्य सन्त को दिया हुआ दान दाता को बहुत कल्याणकारी होता हैं । बाबाके भक्तों को शिरडी और शिरडी के प्रमुख देवता साईबाबा से पवित्र और है ही क्या ?

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-१५

नारदीय कीर्तन पद्धति, श्री चोलकर की शक्कररहित चाय, दो छिपकलियाँ।

पाठकों को स्मरण होगा कि छठें अध्याय के अनुसार शिरडी में रामनवमी उत्सव मनाया जाता था। यह कैसे प्रारम्भ हुआ और पहले वर्ष ही इस अवसर पर कीर्तन करने के लिये एक अच्छे हरिदास के मिलने में क्या-क्या कठिनाइयाँ हुईं, इसका भी वर्णन वहाँ किया गया है। इस अध्याय में दासगणु की कीर्तन पद्धति का वर्णन होगा।

नारदीय कीर्त्तन पद्धति

बहुधा हरिदास कीर्त्तन करते समय एक लम्बा अंगरखा और पूरी पोशाक पहनते हैं। वे सिर पर फेंटा या साफा बाँधते है और एक लम्बा कोट तथा भीतर कमीज, कन्धे पर गमछा और सदैव की भाँति एक लम्बी धोती पहनते हैं। एक बार गाँव में कीर्त्तन के लिये जाते हुए दासगणु भभ उपर्युक्त रीति से सज-धज कर बाबा को प्रणाम करने पहुँचे। बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे, ''अच्छा ! दूल्हा राजा ! इस प्रकार बनठन कर कहाँ जा रहे हो ?'' उत्तर मिला कि ''किर्त्तन के लिये।'' बाबा ने पूछा कि कोट, गमछा और फेंटे इन सब की आवश्यकता ही क्या है? इनको अभी मेरे सामने ही उतारो। इस शरीर पर इन्हें धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दासगणु ने इन वस्त्रों को कभी नहीं पहना। वे सदैव कमर से ऊपर अंग खुले रखकर हाथ में करताल और गले में हार पहन कर ही कीर्त्तन करते थे। यह पद्धति यद्यपि हरिदासों द्वारा अपनाई गई पद्धति के अनुरूप नहीं है, परन्तु फिर भी शुद्ध तथा पवित्र है। कीर्त्तन पद्धति के जन्मदाता नारद मुनि कटि से ऊपर सिर तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। वे एक हाथ में वीणा लेकर हरि-कीर्त्तन करते

हुए त्रिलोक में घूमते थे।

श्री चोलकर की शक्कररहित चाय

बाबा की कीर्ति पूना और अहमदनगर जिलों में फैल चुकी थी, परन्तु श्री नानासाहेब चाँदोरकर के व्यक्तिगत वार्त्तालाप तथा दासगणु के मधुर कीर्त्तन द्वारा बाबा की कीर्ति कोंकण (बम्बई प्रांत) में भी फैल गई। इसका श्रेय केवल श्री दासगणु को ही है। उन्होंने अपने सुन्दर प्राकृतिक कीर्त्तन से बाबा को घर-घर पहुँचा दिया। श्रोताओं की रुचि प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसी को हरिदासों की विद्वता, किसी को भाव, किसी को गायन, तो किसी को चुटकुले तथा किसी को वेदान्त-विवेचन और किसी को उनकी मुख्य कथा रुचिकर प्रतीत होती है। परन्तु ऐसे बिरले ही हैं, जिनके हृदय में संत-कथा या कीर्त्तन सुनकर श्रद्धा और प्रेम उमड़ता हो। श्री दासगणु का कीर्तन श्रोताओं के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता था। एक ऐसी घटना नीचे दी है।

एक समय ठाणे के श्री कौपीनेश्वर मन्दिर में श्री दासगणु कीर्तन में श्री साईबाबा का गुणगान कर रहे थे। श्रोताओं में एक चोलकर नामक व्यक्ति, जो ठाणे के दीवानी न्यायालय में एक अस्थायी कर्मचारी था, भी वहाँ उपस्थित था। दासगणु का कीर्तन सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और मन ही मन बाबा को नमन कर प्रार्थना करने लगा कि, ''हे बाबा ! मैं एक निर्धन व्यक्ति हूँ और अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण भी भली भाँति करने में असमर्थ हूँ। यदि मैं आपकी कृपा से विभागीय परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो आपके श्री चरणों में उपस्थित होकर आपके निमित्त मिश्री का प्रसाद बाँटूँगा।'' भाग्य ने पल्टा खाया और चोलकर परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गया। उसकी नौकरी भी स्थायी हो गई। अब केवल संकल्प ही शेष रहा। ''शुभस्य शीघ्रम्।'' श्री चोलकर निर्धन तो था ही और उसका कुटुम्ब भी बड़ा था। अतः वह शिरडी यात्रा के लिये मार्ग-व्यय जुटाने में असमर्थ हुआ। ठाणे जिले में एक कहावत प्रचलित है कि, ''नाणे घाट व सह्याद्रि पर्वत श्रेणियाँ कोई भी सरलतापूर्वक पार कर सकता है, परन्तु गरीब को उंबरे घाट (गृह-चक्कर) पार करना बड़ा ही कठिन

होता है।'' श्री चोलकर अपना संकल्प शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के लिये उत्सुक थे । उसने मितव्ययी बनकर, अपना खर्च घटाकर पैसा बचाने का निश्चय किया । इस कारण उन्होंने बिना शक्कर की चाय पीना प्रारम्भ किया और इस तरह कुछ द्रव्य एकत्रित कर वह शिरडी पहुँचा । उन्होंने बाबा का दर्शन कर उनके चरणों पर गिरकर नारियल भेंट किया तथा अपने संकल्पानुसार श्रद्धा से मिश्री वितरित की और बाबा से बोला कि आपके दर्शन से मेरे हृदय को अत्यंत प्रसन्नता हुई है । मेरी समस्त इच्छाएँ तो आपकी कृपादृष्टि से उसी दिन पूर्ण हो चुकी थीं । मस्जिद में श्री चोलकर का आतिथ्य करने वाले श्री बापूसाहेब जोग भी वहीं उपस्थित थे । जब वे दोनों वहाँ से जाने लगे तो बाबा जोग से इस प्रकार कहने लगे कि, ''अपने अतिथि को चाय के प्याले में अच्छी तरह शक्कर मिलाकर देना ।'' इस अर्थपूर्ण शब्दों को सुनकर श्री चोलकर का हृदय भर आया और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । उनके नेत्रों से अश्रु-धाराएँ प्रवाहित होने लगीं और वे प्रेम से विह्वल होकर श्री चरणों पर गिर पड़े । श्री जोग को ''अधिक शक्कर सहित चाय के प्याले अतिथि को दो ।'' यह विचित्र आज्ञा सुनकर बड़ा कौतुहल हो रहा था कि यथार्थ में इसका अर्थ क्या हैं ? बाबा ने उन्हें संकेत किया था कि वे शक्कर छोड़ने के गुप्त निश्चय से भली भाँति परिचित हैं ।

बाबा का यह कथन था कि, ''यदि तुम श्रद्धापूर्वक मेरे सामने हाथ फैलाओगे तो मै सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा । यद्यपि मैं शरीर से यहाँ हूँ, परन्तु मुझे सात समुद्रों के पार भी घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान है । मैं तुम्हारे हृदय में विराजित, तुम्हारे अन्तरस्थ ही हूँ । जिसका तुम्हारे तथा समस्त प्राणियों के हृदय में वास है, उसकी ही पूजा करो । धन्य और सौभाग्यशाली वही हैं, जो मेरे सर्वव्यापी स्वरूप से परिचित हैं ।'' बाबा ने श्री चोलकर को कितनी सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की ।

दो छिपकलियों का मिलन

अब हम दो छोटी छिपकलियों की कथा के साथ ही यह अध्याय समाप्त करेंगे । एक बार बाबा मस्जिद में बैठे थे कि उसी समय एक छिपकली

चिकचिक करने लगी । कौतुहलवश एक भक्त ने बाबा से पूछा कि, ''छिपकली के चिकचिकाने का क्या कोई विशेष अर्थ है ? यह शुभ है या अशुभ ?'' बाबा ने कहा कि, ''इस छिपकली की बहन आज औरंगाबाद से यहाँ आनेवाली है। इसलिये यह प्रसन्नता से फूले नहीं समा रही है।'' वह भक्त बाबा के शब्दों का अर्थ न समझ सका । इसलिये वह चुपचाप वहीं बैठा रहा ।

इसी समय औरंगाबाद से एक आदमी घोड़े पर बाबा के दर्शनार्थ आया । वह तो आगे जाना चाहता था, परन्तु घोड़ा अधिक भूखा होने के कारण बढ़ता ही न था । तब उसने चना लाने एक थैली निकाली और धूल झटकारने के लिये उसे भूमि पर फटकारा तो उसमें से एक छिपकली निकली और सबके देखते-देखते ही वह दीवार पर चढ़ गई । बाबा ने प्रश्न करने वाले भक्त से ध्यानपूर्वक देखने को कहा । छिपकली तुरन्त ही गर्व से अपनी बहन के पास पहुँच गई थी । दोनों बहनें बहुत देर तक एक दूसरे से मिली और परस्पर चुंबन व आलिंगन कर चारों ओर घूमघूम कर प्रेमपूर्वक नाचने लगीं । कहाँ शिरडी और कहाँ औरंगाबाद? किस प्रकार एक आदमी घोड़े पर सवार होकर, थैली में छिपकली को लिये हुए वहाँ पहुँचता है और बाबा को उन दो बहनों की भेंट का पता कैसे चला - यह सब घटना बहुत आश्चर्यजनक है और बाबा की सर्वव्यापकता की द्योतक है ।

शिक्षा

जो कोई इस अध्याय का ध्यानपूर्वक पठन और मनन करेगा, साईकृपा से उसके समस्त कष्ट दूर हो जाएँगे और वह पूर्ण सुखी बनकर शांति को प्राप्त होगा ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-१६-१७
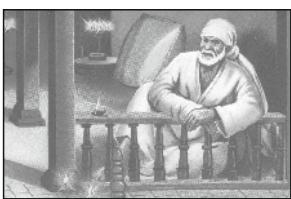
शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की योग्यताएँ, बाबा का उपदेश, बाबा का वैशिष्ट्य । (इन दो अध्यायों में एक धनाढ्य ने किस प्रकार साईबाबा से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहा था उसका वर्णन है ।)

पूर्व विषय

गत अध्याय में श्री चोलकर का अल्प संकल्प किस प्रकार पूर्णतः फलीभूत हुआ, इसका वर्णन किया गया है । उस कथा में श्री साईबाबा ने दर्शाया था कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक अर्पित की हुई तुच्छ वस्तु भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, परन्तु यदि वह अहंकारसहित भेंट की गई तो वह अस्वीकृत कर दी जाती थी । पूर्ण सच्चिदानंद होने के कारण वे बाह्य आचार-विचारों को विशेष महत्व न देते थे और विनम्रता और आदरसहित भेंट की गई वस्तु का स्वागत करते थे ।

यथार्थ में देखा जाए तो सद्गुरु साईबाबा से अधिक दयालु और हितैषी दूसरा इस संसार में कौन हो सकता है ? उनकी तुलना समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि या कामधेनु से भी नहीं हो सकती । जिस अमूल्य निधि की उपलब्धि हमें सद्गुरु से होती है, वह कल्पना से भी परे है ।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आए हुए एक धनाढ्य व्यक्ति को श्री साईबाबा ने किस प्रकार उपदेश किया, उसे अब श्रवण करें ।

एक धनी व्यक्ति (दुर्भाग्य से मूल ग्रंथ में उसका नाम और परिचय नहीं दिया गया है) अपने जीवन में सब प्रकार से संपन्न था । उसके पास अतुल सम्पत्ति, घोड़े, भूमि और अनेक दास और दासियाँ थीं । जब बाबा की कीर्ति उसके कानों तक पहुँची तो उसने अपने एक मित्र से कहा कि, ''मेरे लिए अब किसी वस्तु की अभिलाषा शेष नहीं रह गई है, इसलिये अब शिरडी जाकर

बाबा से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यदि किसी प्रकार उसकी प्राप्ति हो गई तो फिर मुझसे अधिक सुखी और कौन हो सकता है ?'' उनके मित्र ने उन्हें समझाया कि, ''ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज नहीं है, विशेषकर तुम जैसे मोहग्रस्त को, जो सदैव स्त्री, सन्तान और द्रव्योपार्जन में ही फँसा रहता है। तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की आकांक्षा की पूर्ति कौन करेगा, जो भूलकर भी कभी एक फूटी कौड़ी का भी दान नहीं देता ?''

अपने मित्र के परामर्श की उपेक्षा कर वे आने-जाने के लिये एक ताँगा लेकर शिरडी आए और सीधे मस्जिद पहुँचे। साईबाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे और प्रार्थना की कि, ''आप यहाँ आनेवाले समस्त लोगों को अल्प समय में ही ब्रह्मदर्शन करा देते हैं, केवल यही सुनकर मैं बहुत दूर से इतना मार्ग चलकर आया हूँ। मैं इस यात्रा से अधिक थक गया हूँ। यदि कहीं मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो मैं यह कष्ट उठाना अधिक सफल और सार्थक समझूँगा।

बाबा बोले, ''मेरे प्रिय मित्र ! इतने अधीर न होओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही ब्रह्म का दर्शन करा दूँगा। मेरे सब व्यवहार तो नगद ही हैं और मैं उधार कभी नहीं करता। इसी कारण अनेक लोग धन, स्वास्थ्य, शक्ति, मान, पद, आरोग्य तथा अन्य पदार्थो की इच्छापूर्ति के हेतु मेरे समीप आते हैं। ऐसा तो कोई बिरला ही आता है, जो ब्रह्मज्ञान का पिपासु हो। भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से यहाँ आने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं, परन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का आगमन बहुत ही दुर्लभ हैं। मैं सोचता हूँ कि यह क्षण मेरे लिये बहुत ही धन्य तथा शुभ है, जब आप सरीखे महानुभाव यहाँ पधारकर मुझे ब्रह्मज्ञान देने के लिये जोर दे रहे हैं। मैं सहर्ष आपको ब्रह्म-दर्शन करा दूँगा।''

यह कहकर बाबा ने उन्हें ब्रह्म-दर्शन कराने के हेतु अपने पास बिठा लिया और इधर-उधर की चर्चाओं में लगा दिया, जिससे कुछ समय के लिये वे अपना प्रश्न भूल गए। उन्होंने एक बालक को बुलाकर नंदू मारवाड़ी के यहाँ से पाँच रुपये उधार लाने को भेजा। लड़के ने वापस आकर बतलाया कि नंदू

का तो कोई पता नहीं है और उसके घर पर ताला पड़ा है। फिर बाबा ने उसे दूसरे व्यापारी के यहाँ भेजा। इस बार भी लड़का रुपये लाने में असफल ही रहा। इस प्रयोग का दो-तीन बार दुहराने पर भी उसका परिणाम पूर्ववत् ही निकला।

हमें ज्ञात ही है कि बाबा स्वयं सगुण ब्रह्म के अवतार थे। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इस पाँच रुपये सरीखी तुच्छ राशि की यथार्थ में उन्हें आवश्यकता ही क्या थी ?उन्हें बिलकुल आवश्यकता ही न थी। वे तो पूर्ण रीति से जानते होंगे कि नंदू घर पर नहीं है। यह नाटक तो उन्होंने केवल अन्वेषक के परीक्षार्थ ही रचा था। ब्रह्मजिज्ञासु महाशय जी के पास नोटों की गड्डियाँ थीं और यदि वे सचमुच ही ब्रह्मज्ञान के आकांक्षी होते तो इतने समय तक शान्त न बैठते। जब बाबा व्यग्रतापूर्वक पाँच रुपये उधार लाने के लिये बालक को यहाँ-वहाँ दौड़ा रहे थे तो वे दर्शक बने ही ने बैठे रहते। वे जानते थे कि बाबा अपने वचन पूर्ण कर ऋण अवश्य चुकायेंगे। यद्यपि बाबा द्वारा इच्छित राशि बहुत ही अल्प थी, फिर भी वह स्वयं संकल्प करने में असमर्थ ही रहा और पाँच रुपया उधार देने तक का साहस न कर सका। पाठक थोड़ा विचार करें कि ऐसा व्यक्ति बाबा से ब्रह्मज्ञान, जो विश्व की अति श्रेष्ठ वस्तु है, उसकी प्राप्ति के लिये आया है। यदि बाबा से सचमुच प्रेम करने वाला अन्य कोई व्यक्ति होता तो वह केवल दर्शक न बनकर तुरन्त ही पाँच रुपये दे देता। परन्तु इन महाशय की दशा तो बिल्कुल ही विपरीत थी। उन्होंने न रुपये दिये और न शान्त ही बैठे, वरन् वापस जल्द लौटने की तैयारी करने लगे और अधीर होकर बाबा से बोले कि, ''अरे बाबा ! कृपया मुझे शीघ्र ब्रह्मज्ञान दो।'' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''मेरे प्यारे मित्र ! क्या इस नाटक से तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया ? मैं तुम्हें ब्रह्मदर्शन कराने का ही तो प्रयत्न कर रहा था। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का दर्शन करने के लिये पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है - **(१) पाँच प्राण (२) पाँच इंद्रियां (३) मन (४) बुद्धि तथा (५) अहंकार। यह हुआ ब्रह्मज्ञान। आत्मानुभूति का मार्ग भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना।''**

श्री साईबाबा ने फिर इस विषय पर विस्तृत वक्तव्य दिया, जिसका सारांश यह है–

ब्रह्मज्ञान या आत्मानुभूति की योग्याताएँ

सामान्य मनुष्यों को प्रायः अपने जीवन–काल में ब्रह्म के दर्शन नहीं होते । उसकी प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का भी होना नितान्त आवश्यक है।

(१) मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा)

जो सोचता है कि मैं बन्धन में हूँ और इस बन्धन से मुक्त होना चाहे तो इस ध्येय की प्राप्ति के लिये उत्सुकता और दृढ़ संकल्प से प्रयत्न करता रहे तथा प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहे, वही इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलने योग्य है ।

(२) विरक्ति

लोक–परलोक के समस्त पदार्थों से उदासीनता का भाव । ऐहिक वस्तुएँ, लाभ और प्रतिष्ठा, जो कि कर्मजन्य हैं – जब तक इनसे उदासीनता उत्पन्न न होगी, तब तक उसे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने का अधिकार नहीं ।

(३) अन्तर्मुखता

ईश्वर ने हमारी इन्द्रियों की रचना ऐसी की है कि उनकी स्वाभाविक वृत्ति सदैव बाहर की ओर आकृष्ट करती है । हमें सदैव बाहर का ही ध्यान रहता है, न कि अन्तर का । जो आत्मदर्शन और दैविक जीवन के इच्छुक हैं, उन्हें अपनी दृष्टि अंतर्मुखी बनाकर अपने आप में ही लीन होना चाहिए ।

(४) पाप शुद्धि

जब तक मनुष्य दुष्टता त्याग कर दुष्कर्म करना नहीं छोड़ता, तब तक न तो उसे पूर्ण शान्ति ही मिलती है और न मन ही स्थिर होता है । वह मात्र बुद्धी बल द्वारा ज्ञान–लाभ कदापि नहीं कर सकता ।

(५) उचित आचरण

जब तक मनुष्य सत्यवादी, त्यागी और अन्तर्मुखी बनकर ब्रह्मचर्य व्रत

का पालन करते हुये जीवन व्यतीत नहीं करता, तब तक उसे आत्मोपलब्धि संभव नहीं।

(६) सारवस्तु ग्रहण करना

दो प्रकार की वस्तुएँ हैं - नित्य और अनित्य। पहली आध्यात्मिक विषयों से संबंधित है तथा दूसरी सांसारिक विषयों से। मनुष्यों को इन दोनों का सामना करना पड़ता है। उस विवेक द्वारा किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। विद्वान् पुरुष अनित्य से नित्य को श्रेयस्कर मानते हैं, परन्तु जो मूढ़मति हैं, वे आसक्तियों के वशीभूत होकर अनित्य को ही श्रेष्ठ जानकर उस पर आचरण करते हैं।

(७) मन और इन्द्रियों का निग्रह

शरीर एक रथ है। आत्मा उसका स्वामी तथा बुद्धी सारथी है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ उसके घोड़े। इन्द्रिय-नियंत्रण ही उसका पथ है। जो अल्प बुद्धि हैं और जिनके मन चंचल हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ो के समान हैं, वे अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचते तथा जन्म-मृत्यु के चक्र में ही घूमते रहते हैं। परंतु जो विवेकशील हैं, जिन्होंने अपने मन पर नियंत्रण कर लिया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के उत्तम घोड़ों के समान नियंत्रण में है, वे ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच पाते है, अर्थात् उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि द्वारा मन को वश में कर लेता है, वह अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर, उस सर्वशक्तिमान् भगवान विष्णु के लोक में पहुँच जाता है।

(८) मन की पवित्रता

जब तक मनुष्य निष्काम कर्म नहीं करता, तब तक उसे चित्त शुद्धि एवं आत्म-दर्शन संभव नहीं है। विशुद्ध मन में ही विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं, जिससे आत्म-दर्शन के पथ में प्रगति हो जाती हैं। अहंकारशून्य हुए बिना तृष्णा से छुटकारा पाना संभव नहीं है। विषय-वासना आत्मानुभूति के मार्ग में विशेष बाधक हैं। यह धारणा कि मैं शरीर हूँ, एक भ्रम है। यदि तुम्हें अपने

जीवन के ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) को प्राप्त करने की अभिलाषा है तो इस धारणा तथा आसक्ति का सर्वथा त्याग कर दो ।

(९) गुरु की आवश्यकता

आत्मज्ञान इतना गूढ़ और रहस्यमय है कि मात्र निजप्रयत्न से उसकी प्राप्ति संभव नहीं । इस कारण आत्मानुभूति प्राप्त गुरु की सहायता परम आवश्यक है । अत्यन्त कठिन परिश्रम और कष्टों के उपरान्त भी दूसरे क्या दे सकते हैं, जो ऐसे गुरु की कृपा से सहज ही प्राप्त हो सकता है? जिसने स्वयं उस मार्ग का अनुसरण कर अनुभव कर लिया हो, वही अपने शिष्य को भी सरलता पूर्वक पग-पग पर आध्यात्मिक उन्नति करा सकता है ।[१]

(१०) अन्त में ईश-कृपा परमावश्यक है ।

जब भगवान किसी पर कृपा करते हैं तो वे उसे विवेक और वैराग्य देकर इस भवसागर से पार कर देते हैं । यह आत्मानुभूति न तो नाना प्रकार की विद्याओं और बुद्धि द्वारा हो सकती है और न शुष्क वेदाध्ययन द्वारा ही । इसके लिए जिस किसी को यह आत्मा वरण करती है, उसी को प्राप्त होती है तथा उसी के सम्मुख वह अपना स्वरूप प्रकट करती है - कठोपनिषद् में ऐसा ही वर्णन किया गया है ।

बाबा का उपदेश

जब यह उपदेश समाप्त हो गया तो बाबा उन महाशय से बोले कि, ''अच्छा, महाशय! आपकी जेब में पाँच रुपये के पचास गुना रुपयों के रूप में ब्रह्म है, उसे कृपया बाहर निकालिये।'' उसने नोटों की गड्डी बाहर निकाली और गिनने पर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वे दस-दस के पच्चीस नोट थे । बाबा की यह सर्वज्ञता देखकर वे महाशय द्रवित हो गए और बाबा के चरणों पर गिरकर आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगे । तब बाबा बोले कि, ''अपना ब्रह्म का (नोटों का) यह बण्डल लपेट लो । जब तक तुम्हारा लोभ

---

१. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। - गीता ४ ।। ३४ ।।

और ईर्ष्या से पूर्ण छुटकारा नहीं हो जाता, तब तक तुम ब्रह्म के सत्यस्वरूप को नहीं जान सकते । जिसका मन धन, सन्तान और ऐश्वर्य में लगा है, वह इन सब आसक्तियों को त्यागे बिना कैसे ब्रह्म को जानने की आशा कर सकता है? आसक्ति का भ्रम और धन की तृष्णा दुःख का एक भँवर (विवर्त) है, जिसमें अहंकार और ईर्ष्यारूपी मगरों का वास है । जो इच्छारहित होगा, केवल वही यह भवसागर पार कर सकता है । तृष्णा और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध इसी प्रकार के हैं । अतः वे परस्पर कट्टर शत्रु हैं ।''

तुलसीदास जी कहते हैं :-

''जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ।।''

''जहाँ लोभ है, वहाँ ब्रह्म के चिन्तन या ध्यान की गुंजाइश ही नहीं है । फिर लोभी पुरुष को विरक्ति और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? लालची पुरुष को न तो शान्ति है और न सन्तोष ही, और न वह दृढ़ निश्चयी ही होता है । यदि कण मात्र भी लोभ मन में शेष रह जाए तो समझना चाहिए कि सब साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं । एक उत्तम साधक यदि फल प्राप्ति की इच्छा या अपने कर्तव्यों का प्रतिफल पाने की भावना से मुक्त नहीं है और यदि उनके प्रति उसमे अरुचि उत्पन्न न हो तो सब कुछ व्यर्थ ही हुआ । वह आत्मानुभूति प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता । जो अहंकारी तथा सदैव विषय-चिंतन में रत हैं, उन पर गुरु के उपदेशों तथा शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः मन की पवित्रता अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना आध्यात्मिक साधनाओं का कोई महत्व नहीं तथा वह निरा दम्भ ही है । इसलिये श्रेयस्कर यही है कि जिसे जो मार्ग बुद्धिगम्य हो, वह उसे ही अपनाए । मेरा खज़ाना पूर्ण है और मैं प्रत्येक की इच्छानुसार उसकी पूर्ति कर सकता हूँ; परन्तु मुझे पात्र की योग्यता-अयोग्यता का भी ध्यान रखना पड़ता है । जो कुछ मैं कह रहा हूँ, यदि तुम उसे एकाग्र होकर सुनोगे तो तुम्हें निश्चय ही लाभ होगा । इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता । जब घर में किसी

अतिथि को निमंत्रण दिया जाता है तो उसके साथ परिवार, अन्य मित्र और सम्बन्धी आदि भी भोजन करने के लिये आमंत्रित किये जाते हैं ।'' बाबा द्वारा धनी महाशय को दिये गए इस ज्ञान-भोज में मस्जिद में उपस्थित सभी जन सम्मिलित थे । बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर सभी लोग उन धनी महाशय के साथ हर्ष और संतोषपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट गए ।

बाबा का वैशिष्ट्य

ऐसे सन्त अनेक है, जो घर त्याग कर जंगल की गुफाओं या झोपड़ियो में एकान्त वास करते हुए अपनी मुक्ति या मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न करते रहते हैं । वे दूसरों की किंचित् मात्र भी उपेक्षा न कर सदा ध्यानस्थ रहते हैं । श्री साईबाबा इस प्रकृति के न थे । यद्यपि उनके कोई घर द्वार, स्त्री और सन्तान, समीप या दूर के संबंधी न थे, फिर भी वे संसार में ही रहते थे । वे केवल चार-पाँच घरों से भिक्षा लेकर सदा नीमवृक्ष के नीचे निवास करते तथा समस्त सांसारिक व्यवहार करते रहते थे । इस विश्व में रहकर किस प्रकार आचरण करना चाहिए, इसकी भी वे शिक्षा देते थे । ऐसे साधु या सन्त प्रायः बिरले ही होते हैं, जो स्वयं भगवत प्राप्ति के पश्चात् लोगों के कल्याणार्थ प्रयत्न करें । श्री साईबाबा इन सब में अग्रणीय थे, इसलिये हेमाडपंत कहते हैः-

''वह देश धन्य है, वह कुटुम्ब धन्य है तथा वे माता-पिता धन्य हैं, जहाँ साईबाबा के रूप में यह असाधारण परम श्रेष्ठ, अनमोल विशुद्ध रत्न उत्पन्न हुआ ।''

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-१८-१९

श्री हेमाडपंत पर बाबा की कृपा कैसे हुई ? श्री साठे और श्रीमती देशमुख की कथा, उत्तम विचारों को प्रोत्साहन, उपदेश में नवीनता, निंदा सम्बधी उपदेश और परिश्रम के लिए मजदूरी ।

ब्रह्मज्ञान हेतु लालायित एक धनी व्यक्ति के साथ बाबा ने किस प्रकार व्यवहार किया, इसका वर्णन हेमाडपंत ने गत दो अध्यायों में किया है । अब हेमाडपंत पर किस प्रकार बाबा ने अनुग्रह कर, उत्तम विचारों को प्रोत्साहन देकर उन्हें फलीभूत किया तथा आत्मोन्नति व परिश्रम के प्रतिफल के सम्बन्ध में किस प्रकार उपदेश किये, इनका इन दो अध्यायों में वर्णन किया जाएगा ।

पूर्व विषय

यह विदित ही है कि सद्‌गुरू पहले अपने शिष्य की योग्यता पर विशेष ध्यान देते हैं । उनके चित्त को किंचित्‌मात्र भी डावाँडोल न कर वे उपयुक्त उपदेश देकर उन्हें आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करते हैं । इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि जो शिक्षा या उपदेश सद्‌गुरू द्वारा प्राप्त हो, उसे अन्य लोगों में प्रसारित न करना चाहिए । उनकी ऐसी भी धारणा है कि उसे प्रकट कर देने से उसका महत्व घट जाता है । यथार्थ में यथ दृष्टिकोण संकुचित है । सद्‌गुरू तो वर्षा ऋतु के मेघसदृश हैं, जो सर्वत्र एक समान बरसते हैं, अर्थात्‌ वे अपने अमृततुल्य उपदेशों को विस्तृत क्षेत्र में प्रसारित करते हैं । प्रथमतः उनके सारांश को ग्रहण कर आत्मसात्‌ कर लें और फिर संकीर्णता से रहित होकर अन्य लोगों में प्रचार करें । यह नियम जागृत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में प्राप्त उपदेशों के लिए है । उदाहरणार्थ बुधकौशिक ऋषि ने स्वप्न में प्राप्त प्रसिद्ध ''रामरक्षा स्तोत्र'' साधारण जनता के हितार्थ प्रगट कर दिया था ।

जिस प्रकार एक दयालु माता, बालक के उपचारार्थ कड़वी औषधि का

बलपूर्वक प्रयोग करती है, उसी प्रकार श्री साईबाबा भी अपने भक्तों के कल्याणार्थ ही उपदेश दिया करते थे। वे अपनी पद्धति गुप्त न रखकर पूर्ण स्पष्टता को ही अधिक महत्व देते थे । इसी कारण जिन भक्तों ने उनके उपदेशों का पूर्णतः पालन किया, वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हुए । श्री साईबाबा जैसे सद्गुरु ही ज्ञान-चक्षुओं को खोलकर आत्मा की दिव्यता का अनुभव देने में समर्थ हैं । विषयवासनाओं से आसक्ति नष्ट कर वे भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण कर देते हैं; जिसके फलस्वरूप ही ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होकर, ज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहती है । यह सब केवल उसी समय सम्भव है, जब हमें सद्गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो तथा सेवा के पश्चात् हम उनके प्रेम को प्राप्त कर सकें । तभी भगवान भी, जो भक्तकामकल्पतरु हैं, हमारी सहायतार्थ आ जाते हैं । वे हमें कष्टों और दुःखों से मुक्त कर सुखी बना देते हैं । यह सब प्रगति केवल सद्गुरु की कृपा से ही संभव है, जो कि स्वयं ईश्वर के प्रतीक हैं । इसीलिए हमें सद्गुरु की खोज में सदैव रहना चाहिए । अब हम मुख्य विषय की ओर आते हैं ।

श्री साठे

एक महानुभाव का नाम श्री साठे था । क्राफर्ड के शासनकाल में कई वर्ष पूर्व, उन्हें कुछ ख्याति प्राप्त हो चुकी थी । इस शासन का बम्बई के गवर्नर लार्ड रे ने दमन कर दिया था । श्री साठे को व्यापार में अधिक हानि हुई और परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण उन्हें बड़ा धक्का लगा । वे अत्यन्त दुःखित और निराश हो गए और अशान्त होने के कारण उन्हें घर छोड़कर किसी एकान्त स्थान मे वास करने का विचार करने लगे । बहुधा मनुष्यों को ईश्वर की स्मृति आपत्तिकाल तथा दुर्दिनों में ही आती है और उनका विश्वास भी ईश्वर की ओर ऐसे ही समय मे बढ़ जाता है । तभी वे कष्टों के निवारणार्थ उनसे प्रार्थना करने लगते है । यदि उनके पापकर्म शेष न रहे हों तो भगवान् भी उनकी भेंट किसी संत से करा देते हैं, जो उनके कल्याणार्थ ही उचित मार्ग का निर्देश कर देते हैं । ऐसा ही श्री साठे के साथ भी हुआ । उनके एक मित्र ने उन्हें

शिरडी जाने की सलाह दी, जहाँ मन की शांति प्राप्त करने और इच्छा पूर्ति के निमित्त,देश के कोने-कोने से लोगों के झुंड के झुंड आ रहे हैं । उन्हें यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ और सन् १९१७ में वे शिरडी गए । बाबा के सनातन, पूर्ण-ब्रह्म, दीप्तिमान, निर्मल एवं विशुद्ध स्वरुप के दर्शन कर उनके मन की व्यग्रता नष्ट हो गई और उनका चित्त शान्त एवं स्थिर हो गया । उन्होंने सोचा कि गत जन्मों के संचित शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही आज मैं श्री साईबाबा के पवित्र चरणों तक पहुँचने में समर्थ हो सका हूँ । श्री साठे दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे । इसलिये उन्होंने शीघ्र ही गुरुचरित्र का पारायण प्रारम्भ कर दिया । जब एक सप्ताह में ही चरित्र की प्रथम आवृत्ति समाप्त हो गई, तब बाबा ने उसी रात्रि को उन्हें एक स्वप्न दिया, जो इस प्रकार है :-

बाबा अपने हाथ में चरित्र लिये हुए हैं और श्री साठे को कोई विषय समझा रहे हैं तथा श्री साठे सम्मुख बैठे ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे हैं । जब उनकी निद्रा भंग हुई तो स्वप्न को स्मरण कर वे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने विचार किया कि यह बाबा की अत्यंत कृपा है, जो इस प्रकार अचेतनावस्था में पड़े हुओं को जागृत कर उन्हें ''गुरुचरित्र'' का अमृतपान करने का अवसर प्रदान करते हैं । उन्होंने यह स्वप्न श्री काकासाहेब दीक्षित को सुनाया और श्री साईबाबा के पास प्रार्थना करने को कहा कि इसका यथार्थ अर्थ क्या है और क्या एक सप्ताह का पारायण ही मेरे लिये पर्याप्त है अथवा उसे पुनः प्रारम्भ करूँ ? श्री काकासाहेब दीक्षित ने उचित अवसर पाकर बाबा से पूछा कि ''हे देव ! उस दृष्टांत से आपने श्री साठे को क्या उपदेश दिया है ? क्या वे पारायण सप्ताह स्थगित कर दें ? वे एक सरलहृदय भक्त हैं । इसलिए उनकी मनोकामना आप पूर्ण करें और हे देव ! कृपा कर उन्हें इस स्वप्न का यथार्थ अर्थ भी समझा दें ।'' तब बाबा बोले कि ''उन्हें गुरुचरित्र का एक सप्ताह और पारायण करना उचित है । यदि वे ध्यानपूर्वक पाठ करेंगे तो उनका चित्त शुद्ध हो जाएगा और शीघ्र ही कल्याण होगा । ईश्वर भी प्रसन्न होकर उन्हें भव-बन्धन से मुक्त कर देंगे ।'' इस अवसर पर श्री हेमाडपंत भी वहाँ उपस्थित थे और बाबा के चरणकमलों की सेवा कर रहे थे । बाबा के वचन सुनकर उन्हें विचार आया कि साठे को केवल सप्ताह के पारायण से ही मनोवांछित फल की

प्राप्ति हो गई, जब कि मैं गत ४० वर्षों से ''गुरुचरित्र'' का पारायण कर रहा हूँ, जिसका परिणाम अब तक न निकला। उनका केवल सात दिनों का शिरडी निवास सफल हुआ और मेरा गत सात वर्ष का (१९१०-१७) सहवास क्या व्यर्थ हो गया ? चातक पक्षी के समान मैं सदा उस कृपाघन की राह देखा करता हूँ, जो मेरे ऊपर अमृतवर्षण करें। वे कब मुझे अपने उपदेश देने की कृपा करेंगे ? ऐसा विचार उनके मस्तिष्क में आया ही था कि बाबा को सब ज्ञात हो गया। ऐसा भक्तों ने सदैव ही अनुभव किया है कि उनके समस्त विचारों को जानकर बाबा तुरन्त कुविचारों का दमन कर उत्तम विचारें को प्रोत्साहित करते थे। हेमाडपंत का ऐसा विचार जानकर बाबा ने तुरन्त आज्ञा दी कि शामा के यहाँ जाओ और कुछ समय उनसे वार्तालाप कर १५ रुपये दक्षिणा ले आओ। बाबा को दया आ गई थी। इसी कारण उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। उनकी अवज्ञा करने का साहस भी किसे था ? श्री हेमाडपंत शीघ्र शामा के घर पहुँचे। इस समय पर शामा स्नान कर धोती पहन रहे थे। उन्होंने बाहर आकर हेमाडपंत से पूछा कि, ''आप यहाँ कैसे ? जान पड़ता है कि आप मस्जिद से ही आ रहे हैं तथा आप ऐसे व्यथित और उदास क्यों है ?आप अकेले ही क्यों आए हैं ? आइये, बैठिये और थोड़ा विश्राम तो करिये। जब तक मैं पूजनादि से भी निवृत्त हो जाँऊ, तब तक आप कृपा कर के पान आदि लें। इसके पश्चात् ही हम और आप सुखपूर्वक वार्तालाप करें।'' ऐसा कहकर वे भीतर चले गए। दालान में बैठे-बैठे हेमाडपंत की दृष्टि अचानक खिड़की पर रखी ''नाथ भागवत'' पर पड़ी। ''नाथ भागवत'' श्री एकनाथ द्वारा महाभागवत के ११ वें स्कन्ध पर मराठी भाषा में की हुई एक टीका है। श्री साईबाबा की आज्ञानुसार श्री बापूसाहेब जोग और श्री काकासाहेब दीक्षित शिरडी में नित्य भगवद्गीता का मराठी टीकासहित, जिसका नाम भावार्थ दीपिका या ज्ञानेश्वरी है (कृष्ण और भक्त अर्जुन संवाद), नाथ भागवत (श्रीकृष्ण उद्धव संवाद) और एकनाथ का महान् ग्रन्थ भावार्थरामायण का पठन किया करते थे। जब भक्तगण बाबा से कोई प्रश्न पूछने आते तो वे कभी आंशिक उत्तर देते और कभी उनको उपर्युक्त भागवत तथा प्रमुख ग्रंथों का श्रवण करने को कहते थे, जिन्हें सुनने पर भक्तों को अपने प्रश्नों के पूर्णतया संतोषप्रद उत्तर प्राप्त हो जाते थे। श्री हेमाडपंत भी नित्य प्रति ''नाथ भागवत''

के कुछ अंशों का पाठ किया करते थे ।

आज प्रातः मस्जिद को जाते समय कुछ भक्तों के सत्संग के कारण उन्होंने नित्य नियमानुसार पाठ अधूरा छोड़ दिया था । उन्होंने जैसे ही वह ग्रन्थ उठा कर खोला तो अपने अपूर्ण भाग का पृष्ठ सामने देखकर उनको आश्चर्य हुआ । उन्होंने सोचा कि बाबा ने इसी कारण ही मुझे यहाँ भेजा है, ताकि मैं अपना शेष पाठ पूरा कर लूँ और उन्होंने शेष अंश का पाठ आरम्भ कर दिया। पाठ पूर्ण होते ही शामा भी बाहर आए और उन दोनों में वार्तालाप होने लगा । हेमाडपंत ने कहा कि मैं बाबा का एक संदेश लेकर आपके पास आया हूँ । उन्होंने मुझे आपसे १५ रुपये दक्षिणा लाने तथा थोड़ी देर वार्तालाप कर आपको अपने साथ लेकर मस्जिद वापस आने की आज्ञा दी है । शामा आश्चर्य से बोले ''मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है । इसलिये आप रुपयों के बदले दक्षिणा में मेरे पन्द्रह नमस्कार ही ले जाओ ।'' तब हेमाडपंत ने कहा कि, ठीक है, मुझे आपके पन्द्रह नमस्कार ही स्वीकार हैं । आइये, अब हम कुछ वार्तालाप करें, और कृपा कर बाबा की कुछ लीलाएँ आप मुझे सुनाएँ, जिससे पाप नष्ट हो । शामा बोले ''तो कुछ देर बैठो। इस ईश्वर (बाबा) की लीला अद्‌भुत है । कहाँ मैं एक अशिक्षित देहाती और कहाँ आप एक विद्वान्, यहाँ आने के पश्चात् तो आप बाबा की अनेक लीलाएँ स्वयं देख ही चुके हैं, जिनका अब मैं आपके समक्ष कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? अच्छा, यह पान-सुपारी तो खाओ, तब तक मैं कपड़े पहन लूँ ।''

थोडी देर में शामा बाहर आए और फिर दोनों मे इस प्रकार वार्तालाप होने लगा -

शामा बोले - ''इस परमेश्वर (बाबा) की लीलायें अगाध हैं, जिसका कोई पार नहीं । वे तो लीलाओं से अलिप्त रहकर सदैव विनोद किया करते है । इसे हम अज्ञानी जीव क्या समझ सकें ? बाबा स्वयं ही क्यों नही कहते ? आप सरीखे विद्वान् को मुझ जैसे मूर्ख के पास क्यों भेजा है? उनकी कार्यप्रणाली ही कल्पना के परे है । मैं तो इस विषय में केवल इतना ही कह

सकता हूँ कि वे लौकिक नहीं है। इस भूमिका के साथ ही साथ शामा ने कहा कि अब मुझे एक की स्मृति हो आई है, जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। **जैसी भक्त की निष्ठा और भाव होता है, बाबा भी उसी प्रकार उनकी सहायता करते हैं। कभी-कभी तो बाबा भक्त की कठिन परीक्षा लेकर ही उसे उपदेश दिया करते हैं।**'' 'उपदेश' शब्द सुनकर साठे के गुरुचरित्र-पारायण की घटना का तत्काल ही स्मरण करके हेमाडपंत को रोमांच हो आया। उन्होंने सोचा, कदाचित् बाबा ने मेरे चित्त की चंचलता नष्ट करने के लिये ही मुझे यहाँ भेजा है ? फिर भी वे अपने विचार प्रगट न कर, शामा की कथा को ध्यानपूर्वक सुनने लगे। उन सब कथाओं का सार केवल यही था कि अपने भक्तों के प्रति बाबा के मन में कितनी दया और स्नेह है। इन कथाओं को श्रवण कर हेमाडपंत को आंतरिक उल्लास का अनुभव होने लगा। तब शामा ने नीचे लिखी कथा कही -

श्रीमती राधाबाई देखमुख

एक समय एक वृद्धा, श्रीमती राधाबाई, जो खाशाबा देशमुख की माँ थीं, बाबा की कीर्ति सुनकर संगमनेर के लोगों के साथ शिरडी आई। बाबा के श्री दर्शन कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री साई-चरणों में उनकी अटल श्रद्धा थी। इसलिए उन्होंने यह निश्चय किया कि जैसे भी हो बाबा को अपना गुरू बनाकर, उनसे उपदेश ग्रहण किया जाए।

आमरण अनशन का दृढ़ निश्चय कर अपने विश्राम-गृह में आकर उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। माधवराव देशपांडे इस वृद्धा की अग्निपरीक्षा से बिल्कुल भयभीत हो गया और बाबा से प्रार्थना करने लगा कि, ''देवा ! आपने अब यह क्या आरम्भ कर दिया है? ऐसे कितने लोगों को आप यहाँ आकर्षित किया करते हैं? आप उस वृद्ध महिला से पूर्ण परिचित ही हैं, जो हठपूर्वक आप पर अवलम्बित है। यदि आपने कृपादृष्टि कर उसे उपदेश न दिया और यदि दुर्भाग्यवश उसे कुछ हो

गया तो लोग व्यर्थ ही आपको दोषी ठहरायेंगे और कहेंगे कि बाबा से उपदेश प्राप्त न होने की वजह से ही उसकी मृत्यु हो गई है । इसलिये अब दया कर उसे आशीष और उपदेश दीजिये ।'' वृद्धा का ऐसा दृढ़ निश्चय देख कर बाबा ने उसे अपने पास बुलाया और मधुर उपदेश देकर उसकी मनोवृत्ति परिवर्तित कर कहा कि, ''हे माता ! क्यों व्यर्थ ही तुम यातना सहकर मृत्यु का आलिंगन करना चाहती हो ! तुम मेरी माँ और मैं तुम्हारा बेटा । तुम मुझ पर दया करो और जो कुछ मैं कहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो । मैं अपनी स्वयं की कथा तुमसे कहता हूँ, और यदि तुम उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करोगी तो तुम्हें अवश्य परम शान्ति प्राप्त होगी । मेरे एक गुरु, जो बड़े सिद्ध पुरुष थे, मुझ पर बड़े दयालु थे । दीर्घ काल तक मैं उनसे कभी अलग होना भी नहीं चाहता था । मेरी प्रबल उत्कंठा थी कि उनकी सेवा कर जिस प्रकार भी सम्भव हो, मंत्र प्राप्त करूँ । परन्तु उनकी रीति न्यारी ही थी । उन्होंने पहले मेरा मुंडन कर मुझसे दो पैसे दक्षिणा में माँगे, जो मैंने तुरन्त ही दे दिये । यदि तुम प्रश्न करो कि मेरे गुरु जब पूर्ण निष्काम थे तो उन्हें पैसे माँगना क्या शोभनीय था ? और फिर उन्हें विरक्त भी कैसे कहा जा सकता था ? इसका उत्तर केवल यह है कि वे कंचन को ठुकराया करते थे, क्योंकि उन्हें उसकी स्वप्न में भी आवश्यकता न थी । उन दो पैसों का अर्थ था (१) दृढ़ निश्चय और (२) धैर्य । जब मैंने ये दोनों वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । मैंने बारह वर्ष उनके श्री चरणों की सेवा में ही व्यतीत किये । उन्होंने ही मेरा भरण-पोषण किया । अतः मुझे भोजन और वस्त्रों का कोई अभाव न था । वे प्रेम की मूर्ति थे अथवा यों कहो कि वे प्रेम के साक्षात् अवतार थे । मैं उनका वर्णन ही कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि उनका तो मुझ पर अधिक स्नेह था और उनके समान कोई बिरला ही गुरु मिलेगा । जब मैं उनकी ओर निहारता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता कि वे गम्भीर मुद्रा में ध्यानमग्न हैं और तब हम दोनों आनंदित हो जाते थे । आठों प्रहर मैं एकटक उनके ही श्रीमुख की ओर निहारा करता था । मैं भूख और प्यास की सुध-बुध खो बैठा । उनके दर्शनों के बिना मैं अशांत हो उठता था । गुरु सेवा की चिन्ता के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई चिन्तनीय विषय या पदार्थ नहीं

था । मुझे तो सदैव उन्हीं का ध्यान रहता था । अतः मेरा मन उनके चरण-कमलों में लीन हो गया । यह हुई एक पैसे की दक्षिणा । धैर्य है दूसरा पैसा । मैं धैर्यपूर्वक बहुत काल तक प्रतीक्षा कर गुरुसेवा करता रहा । **यही धैर्य तुम्हें भी भवसागर से पार उतार देगा । धैर्य ही मनुष्य में मनुष्यत्व है । धैर्य धारण करने से समस्त पाप और मोह नष्ट होकर उनके हर प्रकार के संकट दूर होते तथा भय जाता रहता है ।** इसी प्रकार तुम्हें भी अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी । धैर्य तो गुणों की खदान व उत्तम विचारों की जननी है । निष्ठा और धैर्य दो जुड़वा बहनों के समान ही हैं, जिनमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम है ।''

''मेरे गुरु मुझसे किसी वस्तु की आकांक्षा न रखते थे । उन्होंने कभी मेरी उपेक्षा न की, वरन् सदैव रक्षा करते रहे । यद्यपि मैं सदैव उनके चरणों के समीप ही रहता था, फिर भी कभी किन्हीं अन्य स्थानों पर यदि चला जाता तो भी मेरे प्रेम में कभी कमी न हुई । वे सदा मुझ पर कृपादृष्टि रखते थे । जिस प्रकार कछुवी प्रेमदृष्टि से अपने बच्चों का पालन करती है, चाहे वे उसके समीप हों अथवा नदी के उस पार । सो हे माँ ! मेरे गुरु ने तो मुझे कोई मंत्र सिखलाया ही नहीं, तब मैं तुम्हारे कान में कैसे कोई मंत्र फूँकूँ ? केवल इतना ही ध्यान रखो कि गुरु की भी कछुवी के समान ही प्रेम-दृष्टि से हमें संतोष प्राप्त होता है । इस कारण **व्यर्थ में किसी से उपदेश प्राप्त करने का प्रयत्न न करो । मुझे ही अपने विचारों तथा कर्मों का मुख्य ध्येय बना लो और तब तुम्हें निस्संदेह ही परमार्थ की प्राप्ति हो जाएगी । मेरी ओर अन्य भाव से देखो तो मैं भी तुम्हारी ओर वैसे ही देखूँगा । इस मस्जिद में बैठकर मैं सत्य ही बोलूँगा कि किन्हीं साधनाओं या शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं, वरन् केवल गुरु में विश्वास ही पर्याप्त है । पूर्ण विश्वास रखो कि गुरु ही कर्ता है और वह धन्य है, जो गुरु की महानता से परिचित हो उसे हरि, हर और ब्रह्म (त्रिमूर्ति) का अवतार समझा जाता है ।''**

इस प्रकार समझाने से वृद्ध महिला को सान्त्वना मिली और उसने बाबा को नमन कर अपना उपवास त्याग दिया । यह कथा ध्यानपूर्वक

एकाग्रता से श्रवण कर तथा उसके उपयुक्त अर्थ पर विचार कर हेमाडपंत को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका हृदय भर आया और उन्हें रोमांच हो उठा। अत्यंत आनन्दविभोर हो जाने से उनका कंठ रूँध गया और वे मुख से एक शब्द भी न बोल सके। उनकी ऐसी स्थिति देख शामा ने पूछा कि, "आप ऐसे स्तब्ध क्यों हो गए ? बात क्या है? बाबा की तो इस प्रकार की लीलाएँ अगणित हैं, जिनका वर्णन मैं किस मुख से करूँ ?"

ठीक उसी समय मस्जिद में घण्टानाद होने लगा, जो कि मध्याह्न पूजन तथा आरती के आरम्भ का द्योतक था। तब शामा और हेमाडपंत भी शीघ्र ही मस्जिद की ओर चले। बापूसाहेब जोग ने पूजन आरम्भ कर दिया था, स्त्रियाँ मस्जिद में ऊपर खड़ी थीं और पुरुष वर्ग नीचे मंडप में। सब उच्च स्वर में वाद्यों के साथ-साथ आरती गा रहे थे। तभी हेमाडपंत का हाथ पकड़े हुए शामा भी ऊपर पहुँचे और वे बाबा के दाहिनी ओर तथा हेमाडपंत बाबा के सामने बैठ गए। उन्हें देख बाबा ने शामा से लायी हुई दक्षिणा देने के लिये कहा। तब हेमाडपंत ने उत्तर दिया कि रूपयों के बदले शामा ने मेरे द्वारा आपको पन्द्रह नमस्कार भेजे हैं तथा स्वयं ही यहाँ आकर उपस्थित हो गए है। बाबा ने कहा, "अच्छा, ठिक है। तो अब मुझे यह बताओ कि तुम दोनों में आपस में किस विषय पर वार्तालाप हुआ है?" तब घंटे, ढोल और सामूहिक गान की ध्वनि की चिंता न करते हुए हेमाडपंत उत्कंठापूर्वक उन्हें वह वार्तालाप सुनाने लगे। बाबा भी सुनने को अति उत्सुक थे। इसलिये वे तकिया छोड़कर थोड़ा आगे झुक गए। हेमाडपंत ने कहा कि वार्ता अति सुखदायी थी, विशेषकर उस वृद्ध महिला की कथा तो ऐसी अद्‌भुत थी कि जिसे श्रवण कर मुझे तुरन्त ही विचार आया कि आपकी लीलाएँ अगाध हैं और इस कथा की ही ओट में आपने मुझ पर विशेष कृपा की है। तब बाबा ने कहा, वह तो बहुत ही आश्चर्यपूर्ण हैं। अब मेरी तुम पर कृपा कैसे हुई, इसका पूर्ण विवरण सुनाओ। कुछ काल पूर्व सुना वार्तालाप जो उनके हृदय पटल अंकित हो चुका था, वह सब उन्होंने बाबा को सुना दिया। वार्ता सुनकर बाबा अति प्रसन्न हो कहने लगे कि, "क्या कथा से प्रभावित होकर उसका अर्थ भी तुम्हारी समझ में आया है?" तब हेमाडपंत ने

उत्तर दिया कि, ''हाँ बाबा, आया तो है । उससे मेरे चित्त की चंचलता नष्ट हो गई है। अब यथार्थ में मैं वास्तविक शांति और सुख का अनुभव कर रहा हूँ तथा मुझे सत्य मार्ग का पता चल गया है ।'' तब बाबा बोले, ''सुनो, मेरी पद्धति भी अद्वितीय है । यदि इस कथा का स्मरण रखोगे तो यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी । **आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ध्यान अत्यंत आवश्यक है** और यदि तुम इसका निरन्तर अभ्यास करते रहोगे तो कुप्रवृत्तियाँ शांत हो जाएँगी । तुम्हें आसक्तिरहित होकर सदैव ईश्वर का ध्यान करना चाहिए, जो सर्व प्राणियों में व्याप्त है और जब इस प्रकार मन एकाग्र हो जाएगा तो तुम्हें ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी । मेरे निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करो, जैसे कि तुम मुझे दिन-रात यहाँ देखते हो । इस प्रकार तुम्हारी वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाएँगी तथा ध्याता, ध्यान और ध्येय का पृथकत्व नष्ट हो, ध्याता चैतन्य से एकत्व को प्राप्त कर ब्रह्म के साथ अभिन्न हो जाएगा । कछुवी नदी के इस किनारे पर रहती है और उसके बच्चे दूसरे किनारे पर । न वह उन्हें दूध पिलाती है और न हृदय से ही लगाकर लेती है, वरन् केवल उसकी प्रेम-दृष्टि से ही उनका भरण-पोषण हो जाता है । छोटे बच्चे भी कुछ न करके केवल अपनी माँ का ही स्मरण करते रहते हैं । उन छोटे-छोटे बच्चों पर कछुवी की केवल दृष्टि ही उन्हें अमृततुल्य आहार और आनन्द प्रदान करती है । ऐसा ही गुरू और शिष्य का भी सम्बन्ध है।'' बाबा ने ये अंतिम शब्द कहे ही थे कि आरती समाप्त हो गई और सबने उच्च स्वर से - ''श्री सच्चिदानन्द सद्गुरू साईनाथ महाराज की जय'' बोला । प्रिय पाठकों ! कल्पना करो कि हम सब भी इस समय उसी भीड़ और जयजयकार में सम्मिलित हैं ।

आरती समाप्त होने पर प्रसाद वितरण हुआ । बापूसाहेब जोग हमेशा की तरह आगे बढ़े और बाबा को नमस्कार कर मुट्ठीभर मिश्री का प्रसाद बाबाको दिया । यह मिश्री हेमाडपंत को देकर वे बोले कि, ''यदि तुम इस कथा को अच्छी तरह से सदैव स्मरण रखोगे तो तुम्हारी भी स्थिति इस मिश्री के समान मधुर होकर समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी ओर तुम सुखी हो जाओगे ।'' हेमाडपंत ने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया और स्तुति की कि, ''प्रभो ! इसी

प्रकार दया कर सदैव मेरी रक्षा करते रहो ।'' तब बाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि, ''इन कथाओं को श्रवण कर, नित्य मनन तथा निदिध्यासन कर, तत्व ग्रहण करो, तब तुम्हें ईश्वर का सदा स्मरण तथा ध्यान बना रहेगा और वह स्वयं तुम्हारे समक्ष अपने स्वरूप को प्रकट कर देगा।'' प्यारे पाठकों ! हेमाडपंत को उस समय मिश्री का प्रसाद भली-भाँति मिला, जो आज हमें इस कथामृत के पान करने का अवसर प्राप्त हुआ । आओ, हम भी उस कथा का मनन करें तथा उसका सार ग्रहण कर बाबा की कृपा से स्वस्थ और सुखी हो जाएँ ।

१९ वें अध्याय के अन्त में हेमाडपंत ने कुछ और भी विषयों का वर्णन किया है, जो यहाँ दिये जाते हैं ।

अपने बर्ताव के सम्बन्ध में बाबा का उपदेश

नीचे दिये हुए अमूल्य वचन सर्वसाधारण भक्तों के लिये हैं और यदि उन्हें ध्यान मे रखकर आचरण में लाया गया तो सदैव ही कल्याण होगा । जब तक किसी से कोई पूर्व नाता या सम्बन्ध न हो, तब तक कोई किसी के समीप नहीं जाता । यदि कोई मनुष्य या प्राणी तुम्हारे समीप आए तो उसे घृणासे न ठुकराओ । उसका स्वागत कर आदरपूर्वक बर्ताव करो । यदि तृषित को जल, क्षुधा-पीड़ित को भोजन, नंगे को वस्त्र और आगन्तुक को अपना दालान विश्राम करने को दोगे तो भगवान् श्रीहरि तुमसे निस्सन्देह प्रसन्न होंगे। यदि कोई तुमसे द्रव्य-याचना करे और तुम्हारी इच्छा देने की न हो तो न दो, परन्तु उसके साथ अभद्र व्यवहार न करो । तुम्हारी कोई कितनी ही निंदा क्यों न करे, फिर भी कटु उत्तर देकर तुम उस पर क्रोध न करो । यदि इस प्रकार ऐसे प्रसंगो से सदैव बचते रहे तो यह निश्चित ही है कि तुम सुखी रहोगे । संसार चाहे उलट-पलट हो जाए, परन्तु तुम्हें स्थिर रहना चाहिए । सदा अपने स्थान पर दृढ़ रहकर गतिमान दृश्य को शान्तिपूर्वक देखो । एक को दूसरे से अलग रखने वाले भेद (द्वैत) की दीवार नष्ट कर दो, जिससे अपना मिलन-पथ सुगम हो जाए । द्वैत भाव (अर्थात् मैं और तू) ही भेद-वृत्ति है, जो शिष्य को अपने गुरु से पृथक् कर देती है । इसलिये जब तक इसका नाश न हो जाए, तब तक अभिन्नता प्राप्त करना सम्भव नहीं है । ''अल्लाह मालिक'' अर्थात् ईश्वर ही

सर्वशक्तिमान् है और उसके सिवा अन्य कोई संरक्षणकर्ता नहीं है । उनकी कार्यप्रणाली अलौकिक, अनमोल और कल्पना से परे है । उनकी इच्छा से ही सब कार्य होते हैं । वे ही मार्ग-प्रदर्शन कर सभी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं । ऋणानुबन्ध के कारण ही हमारा समागम होता है, इसलिये हमें परस्पर प्रेम कर एक दूसरे की सेवा कर सदैव सन्तुष्ट रहना चाहिए। जिसने अपने जीवन का ध्येय (ईश्वर दर्शन) पा लिया है, वही धन्य और सुखी है । दूसरे तो केवल कहने को ही जब तक प्राण हैं, तब तक जीवित हैं ।

उत्तम विचारों को प्रोत्साहन

यह ध्यान देने योग्य बात है कि श्री साईबाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहन दिया करते थे । इसलिये यदि हम प्रेम और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से उनकी शरण जाएँ तो हमें अनुभव हो जाएगा कि वे अनेक अवसरों पर हमे किस प्रकार सहायता पहुँचाते है ? किसी संत का कथन है कि यदि प्रातःकाल तुम्हारे हृदय में कोई उत्तम विचार उत्पन्न हो और यदि तुम उसका स्मरण दिनभर करो तो वह तुम्हारा विवेक अत्यन्त विकसित और चित्त प्रसन्न कर देगा । हेमाडपंत भी इसका अनुभव करना चाहते थे । इसलिये इस पवित्र शिर्डी भूमि पर अगले गुरुवार के समूच दिन नामस्मरण और कीर्तन में ही व्यतीत करूँ, ऐसा विचार कर वे सो गये । दूसरे दिन प्रातःकाल उठने पर उन्हें सहज ही राम-नाम का स्मरण हो आया, जिससे वे प्रसन्न हुए और नित्य कर्म समाप्त कर कुछ पुष्प लेकर बाबा के दर्शन करने गए । जब वे दीक्षित वाड़ा पर कर बूटी-वाड़े के समीप से जा रहे थे तो उन्हें एक मधुर भजन की ध्वनि, जो मस्जिद की ओर से आ रही थी, सुनाई पड़ी। एकनाथ का यह भजन औरंगाबादकर मधुर लयपूर्वक बाबा के समक्ष गा रहे थे -

गुरुकृपा अंजन पायो मेरे भाई । राम बिना कुछ मानत नाहीं ।।धृ।।
अन्दर रामा बाहर रामा । सपने में देखत सीताराम ।। १ ।। गुरु.।।
जागत रामा सोवत रामा । जहाँ देखे वहीं पूरन कामा ।। २ ।। गुरु.।।
एका जनार्दनी अनुभव नीका । जहाँ देखे वहाँ रामसरीखा ।। ३ ।। गुरु.।।

भजन अनेकों हैं, परन्तु विशेषकर यह भजन ही क्यों औरंगाबादकर ने चुना? क्या यह बाबा द्वारा ही संयाजित विचित्र अनुरूपता नहीं है? और क्या यह हेमाडपंत के पिछले दिन अखंड रामनाम स्मरण के संकल्प को प्रोत्साहन देना नहीं है? सभी संतों का इस सम्बन्ध में एक ही मत है और सभी रामनाम के जाप को प्रभावकारी तथा भक्तों की इच्छापूर्ति और सभी कष्टों से छुटकारा पाने के लिये इसे एक अमोघ उपाय बतलाते हैं।

निन्दा सम्बन्धी उपदेश

उपदेश देने के लिये किसी विशेष समय या स्थान की प्रतिक्षा न कर बाबा यथायोग्य समय पर ही स्वतन्त्रतापूर्वक उपदेश दिया करते थे। एक बार एक भक्त ने बाबा की अनुपस्थिति में दूसरे लोगों के सम्मुख किसी की निंदा की। गुणों की उपेक्षा कर उसने अपने भाई के दोषारोपण में इतने बुरे कटु वाक्यों का प्रयोग किया कि सुननेवालों को भी उसके प्रति घृणा होने लगी। बहुधा देखने में आता है कि लोग व्यर्थ ही दूसरों की निंदा कर झगड़ा और बुराइयाँ उत्पन्न करते हैं। संत तो निंदा को दूसरी ही दृष्टि से देखा करते हैं। उनका कथन है कि शुद्धि के लिये अनेक विधियों में मिट्टी, जल और साबुन पर्याप्त है, परन्तु निंदा करने वालों की उपयोगिता भिन्न ही होती है। वे दूसरों के दोषों को केवल अपनी जिह्वा से ही दूर करते हैं और इस प्रकार वे दूसरों की निंदा कर उनका उपकार ही किया करते हैं, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं[१]। निंदक को उचित मार्ग पर लाने के लिये साईबाबा की पद्धति सर्वथा ही भिन्न थी। वे तो सर्वज्ञ थे ही, इसलिये उस निंदक के कार्य को वे समझ गए। मध्याह्नकाल में जब लेण्डी (शिरडी गांवके पाससे बहनेवाला नाला) के समीप उससे भेंट हुई, तब उन्होंने विष्ठा खाते हुए एक सुअर की ओर उँगली उठाकर उससे कहा कि – ''देखो, वह कितने प्रेमपूर्वक विष्ठा खा रहा है। तुम जी

---

१. निन्दक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय॥ – कबीर

भरकर अपने भाईयों को सदा अपशब्द कहा करते हो और यह तुम्हारा आचरण भी ठीक उसी के सदृश ही है। **अनेक शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप ही तुम्हें मानव-तन प्राप्त हुआ और इसलिये यदि तुमने इसी प्रकार आचरण किया तो शिरडी तुम्हारी सहायता क्या कर सकेगी?**'' भक्त ने उपदेश ग्रहण कर लिया और वहाँ से चला गया। इस प्रकार प्रसंगानुसार ही वे उपदेश दिया करते थे। यदि उन पर ध्यान देकर नित्य उनका पालन किया जाए तो आध्यात्मिक ध्येय अधिक दूर न होगा। एक कहावत प्रचलित है कि – ''यदि मेरा श्रीहरि होगा तो वह मुझे चारपाई पर बैठे-बैठे ही भोजन पहुँचायेगा।'' यह कहावत भोजन और वस्त्र के विषय में सत्य प्रतीत हो सकती है, परन्तु यदि कोई इस पर विश्वास कर आलस्यवश बैठा रहे तो वह आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ भी प्रगति न कर उलटे पतन के घोर अंधकार में निमग्न हो जाएगा। इसलिये आत्मानुभूति-प्राप्ति के लिये प्रत्येक को अनवरत परिश्रम करना चाहिए और जितना प्रयत्न वह करेगा, उतना ही उसके लिए लाभप्रद भी होगा। बाबा ने कहा कि ''**मैं तो सर्वव्यापी हूँ और विश्व के समस्त भूतों तथा चराचर में व्याप्त रहकर भी अनंत हूँ।**'' केवल उनके भ्रम-निवारणार्थ ही जिनकी दृष्टि में वे साढ़े-तीन हाथ के मानव थे, स्वयं सगुण रूप धारण कर अवतीर्ण हुए। इसलिये **जो भक्त अनन्य भाव से उनकी शरण आए और जिन्होंने दिन-रात ही उनका ध्यान किया, उन्हें उनसे अभिन्नता प्राप्त हुई,** जिस प्रकार कि माधुर्य और मिश्री, लहर और समुद्र तथा नेत्र और कांति मे अभिन्नता हुआ करती है। जो आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहें, वे शांत और स्थिर होकर अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करें। दुःखदायी कटु शब्दों के प्रयोग से किसी को दुःखित न कर सदैव उत्तम कार्यों में संलग्न रहकर अपना कर्तव्य करते हुए अनन्य भाव से भयरहित हो उनकी शरण में जाना चाहिए। जो पूर्ण विश्वास से उनकी लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करेगा तथा अन्य वस्तुओं की चिंता त्याग देगा, उसे निस्संदेह ही आत्मानुभूति की प्राप्ति

होगी। उन्होंने अनेकों से नाम का जापकर अपनी शरण में आने को कहा। जो यह जानने को उत्सुक थे कि "मै कौन हूँ?" बाबा ने उन्हें भी लीलाएँ श्रवण और मनन करने का परामर्श दिया। किसी को भगवत् लीलाओं का श्रवण, किसी को भगवत्पादपूजन तो किसी को अध्यात्मरामायण व ज्ञानेश्वरी तथा धार्मिक ग्रन्थों का पठन एवं अध्ययन करने को कहा। अनेकों को अपने चरणों के समीप ही रखकर बहुतों को खंडोबा (शिवअवतार) के मन्दिर मे भेजा तथा अनेकों को विष्णु सहस्त्रनाम का जाप करने व छान्दोग्य उपनिषद् तथा गीता का अध्ययन करने को कहा। उनके उपदेशों की कोई सीमा न थी। उन्होंने किन्हीं को प्रत्यक्ष और बहुतों को स्वप्न में दृष्टांत दिये। एक बार वे एक मदिरा-सेवी के स्वप्न में प्रगट होकर उसकी छाती पर चढ़ गए और जब उसने मद्यपान त्यागने की शपथ खाई, तभी उसे छोड़ा। किसी-किसी को मंत्र जैसे "गुरुर्ब्रह्मा"[१] आदि का अर्थ स्वप्न मे समझाया तथा कुछ हठयोगियों को हठयोग छोड़ने का निर्देश देकर चुपचाप बैठ धैर्य रखने को कहा। उनसे सुगम पथ और विधि का वर्णन ही असम्भव है। साधारण सांसारिक व्यवहारों में उन्होंने अपने आचरण द्वारा ऐसे अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनमें से एक यहाँ नीचे दिया जाता है।

परिश्रम के लिये मजदूरी

एक दिन बाबा ने राधाकृष्णमाई के घर के समीप आकर एक सीढ़ी लाने को कहा। तब एक भक्त सीढ़ी ले आया और उनके बतलाये अनुसार वामन गोंदकर के घर पर उसे लगाया। वे उनके घर पर चढ़ गए और राधाकृष्णमाई के छप्पर पर से होकर दूसरे छोर से नीचे उतर आए। इसका अर्थ किसी की समझ में न आया। राधाकृष्णमाई इस समय ज्वर से काँप रही थीं। इसलिये हो सकता है कि उनका ज्वर दूर करने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया हो। नीचे

---

१. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुःसाक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

उतरने के पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने सीढ़ी लाने वाले को दो रुपये पारिश्रमिक स्वरूप दिये। तब एक ने साहस कर उनसे पूछा कि इतने अधिक पैसे देना क्या अर्थ रखता हैं? उन्होंने कहा कि किसी से बिना उसके परिश्रम का मूल्य चुकाये कार्य न कराना चाहिए और कार्य करने वाले को उसके श्रम का शीघ्र निपटारा कर उदार हृदय से मजदूरी देनी चाहिए।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२०

श्री काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री दासगणु की समस्या का विलक्षण समाधान, अद्वितीय शिक्षा पद्धति, ईशोपनिषद् की शिक्षा।

श्री काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री दासगणु की समस्या किस प्रकार हल हुई, इसका वर्णन हेमाडपंत ने इस अध्याय में किया है।

प्रारम्भ

श्री साई मूलतः निराकार थे, परन्तु भक्तों के प्रेमवश ही वे साकार रूप में प्रकट हुए। माया रूपी अभिनेत्री की सहायता से इस विश्व की वृहत् नाट्यशाला में उन्होंने एक महान् अभिनेता के सदृश अभिनय किया। आओ, श्री साईबाबा का ध्यान व स्मरण करें और फिर शिरडी चलकर ध्यानपूर्वक मध्याह्न की आरती के पश्चात् का कार्यक्रम देखें। जब आरती समाप्त हो गई, तब श्री साईबाबा ने मस्जिद से बाहर आकर एक किनारे खड़े होकर बड़ी करुणा तथा प्रेम के साथ भक्तों को विभूति वितरण की। भक्त गण भी उनके समक्ष खड़े होकर उनकी ओर निहारकर चरण छूते और विभूति वितरण का आनंद लेते थे। बाबा दोनों हाथों से भक्तों को उदी देते और उपने हाथ से उनके मस्तक पर उदी का टीका लगाते थे। बाबा के हृदय में भक्तों के प्रति असीम प्रेम था। वे भक्तों को प्रेम से सम्बोधित करते, ''ओ भाऊ ! अब जाओ, भोजन करो। अण्णा ! तुम भी अपने घर जाओ। बापू ! तू भी जा और भोजन कर।'' इसी प्रकार वे प्रत्येक भक्त से सम्भाषण करते और उन्हें घर लौटाया करते थे। अहा ! क्या दिन थे वे जो अस्त हुए तो ऐसे कि फिर इस जीवन में कभी न मिलें। यदि तुम कल्पना करो तो अभी भी उस आनन्द का अनुभव कर सकते हो। अब हम साई की आनन्दमयी मूर्ति का ध्यान कर नम्रता, प्रेम और आदरपूर्वक उनकी चरणवन्दना कर इस अध्याय की कथा का आरम्भ करते हैं।

ईशोपनिषद्

एक समय श्री दासगणु ने ईशोपनिषद् पर टीका (ईशावास्य-भावार्थबोधिनी) लिखना प्रारम्भ किया । वर्णन करने से पूर्व उपनिषद् का संक्षिप्त परिचय भी देना आवश्यक है । इसमें वैदिक संहिता के मंत्रों का समावेश होने के कारण इसे 'मन्त्रोपनिषद्' भी कते हैं और साथ ही इसमें यजुर्वेद के अंतिम (४० वें) अध्याय का अंश सम्मिलित होने के कारण यह वाजसनेयी (यजुः) संहितोपनिषद् के नाम से भी प्रसिद्ध है । वैदिक संहिता का समावेश होने के कारण इसे उन अन्य उपनिषदों की अपेक्षा श्रेष्ठतर माना जाता है, जो कि ब्राह्मण और आरण्यक (अर्थात् मन्त्र और धर्म) इन विषयों के विवरणात्मक ग्रंथ की कोटि में आते हैं । इतना ही नहीं, अन्य उपनिषद् तो केवल ईशोपनिषद् में वर्णित गूढ़ तत्वों पर ही आधारित टीकायें हैं । पण्डित सातवलेकर द्वारा रचित वृहदारण्यक उपनिषद् एवं ईशोपनिषद् की टीका प्रचलित टीकाओं में सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है ।

प्रोफेसर आर. डी. रानडे का कथन है कि ईशोपनिषद् एक लघु उपनिषद् होते हुए भी, उसमें अनेक विषयों का समावेश है, जो एक असाधारण अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है । इसमें केवल १८ श्लोकों में ही आत्मतत्ववर्णन, एक आदर्श संत की जीवनी, जो आकर्षण और कष्टों के संसर्ग में भी अचल रहता है, कर्मयोग के सिद्धान्तो का प्रतिबिम्ब, जिसका बाद में सूत्रीकरण किया गया तथा ज्ञान और कर्तव्य के पोषक तत्वों का वर्णन है, जिसके अन्त मे आदर्श, चमत्कारिक और आत्मासंबंधि गूढ़ तत्वों का संग्रह है ।

इस उपनिषद् के संबंध में संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट है कि इसका प्राकृत भाषा में वास्तविक अर्थ सहित अनुवाद करना कितना दुष्कर कार्य है । श्री दासगणु ने ओवी छन्दों में अनुवाद तो किया, परन्तु उसके सार तत्व को ग्रहण न कर सकने के कारण उन्हें अपने कार्य से सन्तोष न हुआ । इस प्रकार असंतुष्ट होकर उन्होंने कई अन्य विद्वानों से शंका-निवारणार्थ परामर्श और वादविवाद भी किया, परन्तु समस्या पूर्ववत् जटिल ही बनी रही और

सन्तोषजनक भावार्थ करने में कोई भी सफल न हो सका। इसी कारण श्री दासगणु बहुत ही असंतुष्ट हुए।

केवल सद्गुरु ही अर्थ समझाने में समर्थ

यह उपनिषद् वेदों का महान् विवरणात्मक सार है। इस अस्त्र के प्रयोग से जन्म-मरण का बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतः श्री दासगणु को विचार आया कि जिसे आत्मसाक्षात्कार हो चुका हो, केवल वही इस उपनिषद् का वास्तविक अर्थ कर सकता है। जब कोई भी उनकी शंका का निवारण न कर सका तो उन्होंने शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। जब उन्हें शिरडी जाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने बाबा से भेंट की और चरण-वन्दना करने के पश्चात् उपनिषद् में आई हुई कठिनाइयाँ उनके समक्ष रखकर उनसे हल करने की प्रार्थना की। श्री साईबाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि, "चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। उसमें कठिनाई ही क्या है ? जब तुम लौटोगे तो विलेपार्ला में काका दीक्षित की नौकरानी तुम्हारी शंका का निवारण कर देगी।" उपस्थित लोगों ने जब ये वचन सुने तो वे सोचने लगे कि बाबा केवल विनोद ही कर रहें हैं, और कहने लगे कि क्या एक अशिक्षित नौकरानी भी ऐसी जटिल समस्या हल कर सकती है? परन्तु दासगणु को तो पूर्ण विश्वास था कि बाबा के वचन कभी असत्य नहीं हो सकते, क्योंकि बाबा के वचन तो साक्षात् ब्रह्मवाक्य ही हैं।

काका की नौकरानी

बाबा के वचनों में पूर्ण विश्वास कर वे शिरडी से विलेपार्ला (बम्बई के उपनगर) में पहुँचकर काका दीक्षित के यहाँ ठरे। दूसरे दिन दासगणु सुबह की मीठी नींद का आनन्द ले रहे थे, तभी उन्हें एक निर्धन बालिका के सुन्दर गीत का स्पष्ट और मधुर स्वर सुनाई पड़ा। गीत का मुख्य विषय था - एक लाल रंग की साड़ी वह कितनी सुन्दर थी, उसका ज़री का आँचल कितना बढ़िया था, उसके छोर और किनारें कितने सुन्दर थे, इत्यादि। उन्हें वह गीत अति रुचिकर प्रतीत हुआ। इस कारण उन्होंने बाहर आकर देखा कि यह गीत एक बालिका-नाम्या की बहन - जो काकासाहेब दीक्षित का नौकरानी है - गा रही

है। बालिका बर्तन माँज रही थी और केवल एक फटे कपड़े से तन ढँके हुए थी। इतनी दरिद्र परिस्थिति में भी उसकी प्रसन्न-मुद्रा देखकर श्री दासगणु को दया आ गई और दूसरे दिन श्री दासगणु ने श्री एम. व्ही. प्रधान से उस निर्धन बालिका को एक उत्तम साड़ी देने की प्रार्थना की। जब रावबहादुर एम्. व्ही. प्रधान ने उस बालिका को आकर्षक साड़ी दी, तब एक क्षुधापीडित व्यक्ति को जैसे भाग्यवश मधुर भोजन प्राप्त होने पर प्रसन्नता होती है, वैसे ही उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। दूसरे दिन उसने नई साड़ी पहनी और अत्यन्त हर्षित होकर नाचने-कूदने लगी एवं अन्य बालिकाओं के साथ वह फुगड़ी खेलने में मग्न रही। अगले दिन उसने नई साड़ी सँभाल कर सन्दूक में रख दी और पूर्ववत् फटे-पुराने कपड़े पहनकर आयी, फिर भी पिछले दिन के समान ही प्रसन्न दिखाई दी। यह देखकर श्री दासगणु की दया आश्चर्य में परिणत हो गई। उनकी ऐसी धारणा थी कि निर्धन होने के ही कारण उसे फटे चिथड़े कपड़े पहनने पड़ते है, परन्तु अब तो उसके पास नई साड़ी थी, जिसे उसने सँभाल कर रख लिया और फटे कपड़े पहनकर भी उसी गर्व और आनन्द का अनुभव करती रही। उसके मुख पर दुःख या निराशा को कोई निशान भी नहीं था। इस प्रकार उन्हें अनुभव हुआ कि दुःख और सुख का अनुभव केवल मानसिक स्थिति पर निर्भर है। इस घटना पर गूढ़ विचार करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भगवान ने जो कुछ दिया है, उसी में समाधान वृत्ति रखनी चाहिए और यह निश्चयपूर्वक समझना चाहिए कि वह सब चराचर में व्याप्त है, और जो भी स्थिति उसकी दया से प्राप्त है, वह अपने लिये अवश्य ही लाभप्रद होगी। इस विशिष्ट घटना में बालिका की निर्धनावस्था, उसके लिये अवश्य ही लाभप्रद होगी। इस विशिष्ट घटना में बालिका की निर्धनावस्था, उसके फटे पुराने कपड़े और नयी साड़ी देने वाला तथा उसकी स्वीकृति देने वाला, ये सब ईश्वर द्वारा ही प्रेरित था। श्री दासगणु को उपनिषद् के पाठ की प्रत्यक्ष शिक्षा मिल गई अर्थात् जो कुछ अपने पास है, उसी में समाधानवृत्ति माननी चाहिए। सार यह है कि जो कुछ होता है, सब उसी की इच्छा से नियंत्रित है, अतः उसी में संतुष्ट रहने में हमारा कल्याण है।

अद्वितीय शिक्षापद्धति

उपर्युक्त घटना से पाठकों को विदित होगा कि बाबा की शिक्षा पद्धति

अद्वितीय और अपूर्व थी। बाबा शिरडी के बाहर कभी नहीं गए, परन्तु फिर भी उन्होंने किसी को मच्छिन्द्रगढ़, किसी को कोल्हापूर या सोलापुर साधनाओं के लिये भेजा। किसी को दिन में और किसी को रात्रि में दर्शन दिये। किसी को काम करते हुए, तो किसी को निद्रावस्था में दर्शन दिये और उनकी इच्छाएँ पूर्ण कीं। भक्तों को शिक्षा देने के लिये उन्होंने कौन कौन-सी युक्तियाँ काम में लाई, इसका वर्णन करना असम्भव है। इस विशिष्ट घटना में उन्होंने श्री दासगणु को विलेपार्ला भेज कर वहाँ नौकरानी द्वारा समस्या हल कराई। जिनका ऐसा विचार हो कि श्री दासगणु को बाहर भेजने की आवश्यकता ही क्या थी, क्या वे स्वयं नहीं समझा सकते थे ? उनसे मेरा कहना है कि बाबा ने उचित मार्ग ही अपनाया। अन्यथा श्री दासगणु किस प्रकार एक अमूल्य शिक्षा उस निर्धन नौकरानी व उसकी साड़ी द्वारा प्राप्त करते, जिसकी रचना स्वयं साई ने की थी।

ईशोपनिषद् की शिक्षा

ईशोपनिषद् की मुख्य देन नीति-शास्त्र सम्बधि उपदेश है। हर्ष की बात है कि इस उपनिषद् की नीति निश्चित रूप से आध्यात्मिक विषयों पर आधारित है, जिसका इसमें वृहत् रूप से वर्णन किया गया है। उपनिषद् का प्रारम्भ ही यहीं से होता है कि समस्त वस्तुएँ ईश्वर से ओत-प्रोत हैं। यह आत्मविषयक स्थिति का भी एक उपसिद्धान्त है; और जो नीतिसंबंधी उपदेश उससे ग्रहण करने योग्य है, वह यह है कि जो कुछ ईशकृपा से प्राप्त है, उसमें ही आनन्द मानना चाहिए और दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है और इसलिए जो कुछ उसने दिया है, वही हमारे लिये उपयुक्त है। यह भी उसमें प्राकृतिक रूप से वर्णित है कि पराये धन की तृष्णा की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। सारांश यह है कि अपने पास जो कुछ है, उसी में सन्तुष्ट रहना, क्योंकि यही ईश्वर की इच्छा है। चरित्र सम्बधि द्वितीय उपदेश यह है कि कर्तव्य को ईश्वरेच्छा समझते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए,

विशेषतः उन कर्मों को जिनको शास्त्र में वर्णित किया गया है । इस विषय में उपनिषद् का कहना है कि आलस्य से आत्मा का पतन हो जाता है और इस प्रकार निरपेक्ष कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करने वाला ही अकर्मण्यता के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अन्त में कहा कि जो सब प्राणियों को अपना ही आत्मस्वरुप समझता है तथा जिसे समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरूप हो चुके हैं, उसे मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है । ऐसे व्यक्ति को दुःख का कोई कारण नहीं हो सकता ।

सर्वभूतों में आत्मदर्शन न कर सकने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के शोक, मोह और दुःखो की वृद्धि होती है । जिसके लिये सब वस्तुएँ आत्मस्वरूप बन गई हों, वह अन्य सामान्य मनुष्यों का छिद्रान्वेषण क्यों करे ?

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।
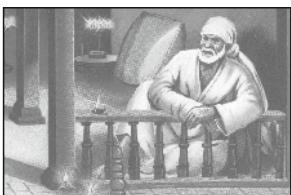
(१) श्री व्ही. एच्, ठाकूर
(२) श्री अनंतराव पाटणकर और
(३) पंढरपुर के वकील की कथाएँ ।

इस अध्याय में हेमाडपंत ने श्री विनायक हरिश्चंद्र ठाकुर, बी. ए., श्री अनंतराव पाटणकर, पुणे निवासी तथा पंढरपुर के एक वकील की कथाओं का वर्णन किया है । ये सब कथाएँ अति मनोरंजक हैं । यदि इनका सारांश मननपूर्वक ग्रहण कर उन्हें आचरण में लाया जाए तो आध्यात्मिक पथ पर पाठकगण अवश्य अग्रसर होंगे ।

प्रारम्भ

यह एक साधारण-सा नियम है कि गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही हमें संतों का सान्निध्य और उनकी कृपा प्राप्त होती है । उदाहरणार्थ हेमाडपंत स्वयं अपनी घटना प्रस्तुत करते हैं । वे अनेक वर्षों तक बम्बई के उपनगर बांद्रा के स्थानीय न्यायाधीश रहे । पीर मौलाना नामक एक मुस्लिम संत भी वहीं निवास करते थे । उनके दर्शनार्थ अनेक हिन्दू, पारसी और अन्य धर्मावलंबी वहाँ जाया करते थे । उनके मुजावर (पुजारी) ने हेमाडपंत से भी उनका दर्शन करने के लिये बहुत आग्रह किया, परन्तु किसी न किसी कारणवश उनकी भेंट उनसे न हो सकी। अनेक वर्षों के उपरान्त जब उनका शुभ काल आया तब वे शिरडी पहुँचे और बाबा के दरबार में जाकर स्थायी रूप से सम्मिलित हो गए । भाग्यहीनों को संतसमागम की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? केवल वे ही सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें ऐसा अवसर प्राप्त हो ।

संतों द्वारा लोकशिक्षा

संतो द्वारा लोकशिक्षा का कार्य चिरकाल से ही इस विश्व में संपादित होता आया है । अनेकों संत भिन्न-भिन्न स्थानों पर किसी निश्चित उद्देश्य की

पूर्ति के लिये स्वयं प्रगट होते हैं। यद्यपि उनका कार्यस्थल भिन्न होता है, परन्तु वे सब पूर्णतः एक ही हैं। वे सब उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की संचालनशक्ति के अंतर्गत एक ही लहर में कार्य करते हैं। उन्हें प्रत्येक के कार्य का परस्पर ज्ञान रहता है और आवश्यकतानुसार वे परस्पर पूर्ति भी करते हैं, जो निम्नलिखित घटना द्वारा स्पष्ट है।

श्री ठाकुर

श्री व्ही. एच्. ठाकूर, बी. ए., रेव्हेन्यु विभाग में एक कर्मचारी थे। वे एक समय भूमिमापक दल के साथ कार्य करते हुए बेलगाँव के समीप वडगाँव नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक कानड़ी संत पुरुष (अप्पा) के दर्शन कर उनकी चरण वन्दना की। वे अपने भक्तों को निश्चलदासकृत ''विचार-सागर'' नामक ग्रंथ (जो वेदान्त के विषय में है) का भावार्थ समझा रहे थे। जब श्री ठाकुर उनसे विदाई लेने लगे तो उन्होंने कहा, तुम्हें इस ग्रंथ का अध्ययन अवश्य करना चाहिए और ऐसा करने से तुम्हारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी तथा जब कालान्तर में तुम उत्तर दिशा में जाओगे तो सौभाग्यवश तुम्हारी एक महान् संत से भेंट होगी, जो मार्ग-प्रदर्शन कर तुम्हारे हृदय को शांति और सुख प्रदान करेंगे।

बाद में उनका स्थानांतरण जुन्नर को हो गया, जहाँ कि नाणेघाट पार करे जाना पड़ता था। यह घाट अधिक गहरा और पार करने में कठिन था। इसलिये उन्हें भैंसे की सवारी कर घाट पार करना पड़ा, जो उन्हें अधिक असुविधाजनक तथा कष्टकर प्रतीत हुआ। इसके पश्चात् उनका स्थानांतरण कल्याण में एक उच्च पद पर हो गया और वहाँ उनका नानासाहेब चाँदोरकर से परिचय हुआ। उनके द्वारा उन्हें श्री साईबाबा के संबंध मे बहुत कुछ ज्ञात हुआ और उनके दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा हुई। दूसरे दिन ही नानासाहेब शिरडी को प्रस्थान कर रहे थे। उन्होंने श्री ठाकुर से भी अपने साथ चलने का आग्रह किया। ठाणे के दीवनी-न्यायालय में एक मुकदमे के संबंध में उनकी उपस्थिति आवश्यक होने के कारण वे उनके साथ न जा सके। इस कारण

नानासाहेब अकेले ही रवाना हो गए । ठाणे पहुँचने पर मुकदमे की तारीख आगे के लिए बढ़ गई। इसलिए उन्हें नानासाहेब का साथ न देने पर पश्चाताप हुआ । फिर वे शिरडी पहुँचे, तब वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि नानासाहेब पिछले दिन ही यहाँ से चले गए हैं ।वे अपने कुछ मित्रों के साथ, जो उन्हें वहीं मिल गए थे, श्री साईबाबा के दर्शन को गए । उन्होंने बाबा के दर्शन किये और उनके चरणकमलों की आराधना कर अत्यन्त हर्षित हुए । उन्हें रोमांच हो आया और उनकी आँखो से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं । त्रिकालदर्शी बाबा ने उनसे कहा – इस स्थान का मार्ग इतना सुगम नहीं, जितना कि कानड़ी संत अप्पा के उपदेश या नाणेघाट पर भैंसे की सवारी थी । आध्यात्मिक पथ पर चलने के लिये तुम्हें घोर परिश्रम करना पड़ेगा, क्योंकि वह अत्यन्त कठिन पथ है । जब श्री ठाकुर ने सारगर्भित शब्द सुने, जिनका अर्थ उनके अतिरिक्त और कोई न जानता था तो उनके हर्ष का परावार न रहा और उन्हे कानड़ी संत के वचनों की स्मृति हो आई । तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर बाबा के चरणों पर अपना मस्तक रखा और उनसे प्रार्थना की कि, ''प्रभु, मुझ पर कृपा करो और इस अनाथ को अपने चरणकमलों की शीतलछाया में स्थान दो ।'' तब बाबा बोले, ''जो कुछ अप्पा ने कहा वह सत्य था । उसका अभ्यास कर उसके अूसार ही तुम्हें आचरण करना चाहिए । व्यर्थ बैठने से कुछ लाभ न होगा । जो कुछ तुम पठन करते हो, उसको आचरण में भी लाओ, अन्यथा उसका उपयोग ही क्या ? गुरु कृपा के बिना ग्रंथावलोकन तथा आत्मानुभूति निरर्थक ही है ।'' श्री ठाकुर ने अभी तक केवल ''विचार सागर'' ग्रन्थ में सैद्धांतिक प्रकरण ही पढ़ा था, परन्तु उसकी प्रत्यक्ष व्यवहार प्रणाली तो उन्हें शिरडी में ही ज्ञात हुई । एक दूसरी कथा भी सत्य का और अधिक सशक्त प्रमाण है ।

श्री अनंतराव पाटणकर

पूना के एक महाशय, श्री अनंतराव पाटणकर श्री साईबाबा के दर्शन इच्छुक थे । उन्होंने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये । दर्शन से उनके नेत्र

शीतल हो गए और वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने बाबा के श्री चरण छुए और यथायोग्य पूजन करने के उपरान्त बोले, ''मैंने बहुत कुछ पठन किया। वेद, वेदांत और उपनिषदों का भी अध्ययन किया तथा अन्य पुराण भी श्रवण किये, फिर भी मुझे शान्ति न मिल सकी। इसलिये मेरा पठन व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। एक निरा अज्ञानी भक्त मुझसे कहीं श्रेष्ठ है। जब तक मन को शांति नहीं मिलती, तब तक ग्रन्थावलोकन व्यर्थ ही है। मैंने ऐसा सुना है कि आप केवल अपनी दृष्टि मात्र से और विनोदपूर्ण वचनों द्वारा दूसरों के मन को सरलतापूर्वक शान्ति प्रदान कर देते हैं। यही सुनकर मैं भी यहाँ आया हूँ। कृपा कर मुझ दास को भी आशीर्वाद दीजिये।'' तब बाबाने निम्नलिखित कथा कही –

घोड़ी की लीद के नौ गोले (नवधा भक्ति)

''एक समय एक सौदागर यहाँ आया। उसके सम्मुख ही एक घोड़ी ने लीद की। जिज्ञासु सौदागर ने अपनी धोती का एक छोर बिछाकर उसमें लीद के नौ गोले रख लिये और इस प्रकार उसके चित्त को शांति प्राप्त हुई।'' श्री पाटणकर इस कथा का कुछ भी अर्थ न समझ सके। इसलिए उन्होंने श्री गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर से अर्थ समझाने की प्रार्थना की और पूछा कि, ''बाबा के कहने का अभिप्राय क्या है ?'' वे बोले कि ''जो कुछ बाबा कहते हैं, उसे मैं स्वयं भी अच्छी तरह नहीं समझ सकता, परंतु उनकी प्रेरणा से ही मैं जो कुछ समझ सका हूँ, वह तुम से कहता हूँ। घोड़ी है ईश-कृपा, और नौ एकत्रित गोले हैं नवविधा[१] भक्ति-यथा (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) नामस्मरण (४) पादसेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य (८) सख्य (९) आत्मनिवेदन। ये भक्ति के नौ प्रकार हैं। इनमें से यदि एक को भी सत्यता से कार्यरूप में लाया जाए तो भगवान श्रीहरि अति प्रसन्न होकर भक्त के घर प्रकट हो जाएँगे। समस्त साधनायें अर्थात् जप, तप, योगाभ्यास तथा वेदों के पठन-पाठन में जब तक भक्ति का सम्पुट न हो, बिल्कुल शुष्क ही हैं। वेदज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी की कीर्ति भक्तिभाव के अभाव में निरर्थक है।

---

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणो पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्।।

आवश्यकता है तो केवल पूर्ण भक्ति की । अपने को भी उसी सौदागर के समान ही जानकर और व्यग्रता तथा उत्सुकतापूर्वक सत्य को खोज कर नौ प्रकार की भक्ति को प्राप्त करो । तब कहीं तुम्हें दृढ़ता तथा मानसिक शांति प्राप्त होगी ।''

दूसरे दिन जब श्री पाटणकर बाबा को प्रणाम करने गए तो बाबा ने पूछा कि, ''क्या तुमने लीद के नौ गोले एकत्रित किये ?'' उन्होंने कहा कि ''मै अनाश्रित हूँ । आपकी कृपा के बिना उन्हें सरलतापूर्वक एकत्रित करना संभव नहीं है।'' बाबा ने उन्हें आशीर्वाद देकर सात्वना दी कि, ''तुम्हें सुख और शांति प्राप्त हो जाएगी,'' जिसे सुनकर श्री पाटणकर के हर्ष का पारावर न रहा ।

पंढरपुर के वकील

भक्तों के दोष दूर कर उन्हें उचित पथ पर ला देने की बाबा की त्रिकालज्ञता की एक छोटी-सी कथा का वर्णन कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे । एक समय पंढरपुर से एक वकील शिरडी आए । उन्होंने बाबा के दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया तथा कुछ दक्षिणा भेंट देकर एक कोने में बैठ वार्तालाप सुनने लगे । बाबा उनकी ओर देख कर कहने लगे कि, ''लोग कितने धूर्त हैं, जो यहाँ आकर चरणों पर गिरते और दक्षिणा देते हैं, परंतु पीठ पीछे निंदा करते हैं । कितने आश्चर्य की बात है न ?'' यह पगड़ी वकील के सिर पर ठीक बैठी और उन्हें उसे पहननी पड़ी । कोई भी इन शब्दों का अर्थ न समझ सका । परन्तु वकील साहब इसका गुढ़ार्थ समक्ष गए, फिर भी वे सिर झुकाकर बैठे ही रहे । वाड़े लौटकर वकील साहब ने काकासाहेब दीक्षित को बतलाया कि बाबा ने जो कुछ उदाहरण दिया और वह मेरी ही ओर लक्ष्य कर कहा गया था, वह सत्य है । वह केवल चेतावनी ही थी कि मुझे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए । एक समय जब उपन्यायाधीश श्री नूलकर स्वास्थ्य लाभ करने के लिये पंढरपुर से शिरडी आकर ठहरे तो बाररुम में उनके संबंध में चर्चा हो रही थी । विवाद का विषय था कि जिस व्याधि से उपन्यायाधीश अस्वस्थ हैं, क्या बिना औषधि सेवन किये केवल साईबाबा की शरण में जाने से ही उससे

छुटकारा पाना सम्भव है ? और क्या श्री नूलकर सदृश एक शिक्षित व्यक्ति को इस मार्ग का अवलम्बन करना उचित है ? उस समय श्री नूलकर का और साथ ही साथ श्री साईबाबा का भी बहुत उपहास किया गया । मैंने भी इस आलोचना में हाथ बँटाया था । श्री साईबाबा ने मेरे उसी दूषित आचरण पर प्रकाश डाला है । यह मेरे लिये उपहास नहीं वरन् एक उपकार है, जो केवल उपदेश है कि मुझे किसी की निन्दा न करनी चाहिए और न ही दूसरों के कार्यों में विघ्न डालना चाहिए ।

शिरडी और पंढरपुर में लगभग ३०० मील का अन्तर है । फिर भी बाबा ने अपनी सर्वज्ञता द्वारा जान लिया कि बाररूम में क्या चल रहा था ? मार्ग में आने वाली नदियाँ, जंगल और पहाड़ उनकी सर्वज्ञता के लिये रोड़ा न थे । वे सबके हृदय की गुह्य बात जान लेते थे और उनसे कुछ छिपा न था । समीपस्थ या दूरस्थ प्रत्येक वस्तु उनके लिए दिन के प्रकाश के समान जाज्वल्यमान थी तथा उनकी सर्वव्यापक दृष्टि से ओझल न थी । इस घटना से वकीलसाहब को शिक्षा मिली कि कभी किसी का छिद्रान्वेषण एवं निंदा नहीं करनी चाहिए ।

यह कथा केवल वकीलसाहेब के लिए नहीं, वरन् सब के लिए शिक्षाप्रद है । श्री साईबाबा की महानता कोई न आँक सका और न ही उनकी अद्‌भुत लीलाओं का अंत ही पा सका । उनकी जीवनी भी तदनुरूप ही है, क्योंकि वे परब्रह्मस्वरूप हैं ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२२

सर्प-विष से रक्षा

(१) श्री बालासाहेब मिरीकर
(२) श्री बापूसाहेब बूटी
(३) श्री अमीर शक्कर
(४) श्री हेमाडपंत
(५) बाबा के विचार।

बाबा की सर्प मारने पर सलाह

श्री साईबाबा का ध्यान कैसे किया जाए ? उस सर्वशक्तिमान् की प्रकृति अगाध है, जिसका वर्णन करने में वेद और सहस्त्रमुखी शेषनाग भी अपने को असमर्थ पाते हैं। भक्तों की रुचि स्वरूप-वर्णन से नहीं। उनकी तो दृढ़ धारणा है कि आनन्द की प्राप्ति केवल उनके श्री चरणों से ही संभव है। उनके चरणकमलों के ध्यान के अतिरिक्त उन्हें अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति का अन्य मार्ग विदित ही नहीं। हेमाडपंत भक्ति और ध्यान का जो एक अति सरल मार्ग सुझाते हैं, वह है -

कृष्ण पक्ष के आरम्भ होने पर चन्द्र-कलाएँ दिन प्रतिदिन घटती जाती हैं तथा उनका प्रकाश भी क्रमशः क्षीण होता जाता है और अन्त में अमावस्या के दिन चन्द्रमा के पूर्ण विलीन रहने पर चारों ओर निशा का भयंकर अंधेरा छा जाता है, परन्तु जब शुक्ल पक्ष का प्रारंभ होता है तो लोग चन्द्र-दर्शन के लिए अति उत्सुक हो जाते हैं। इसके बाद द्वितीया को जब चन्द्र अधिक स्पष्ट नहीं होता, तब लोगों को वृक्ष की दो शाखाओं के बीच से चन्द्रदर्शन के लिये कहा जाता है; और जब इन शाखाओं के बीच उत्सुकता और ध्यानपूर्वक देखने का प्रयत्न किया जाता है तो दूर क्षितिज पर छोटी-सी चन्द्र-रेखा के दृष्टिगोचर होते ही मन अति प्रफुल्लित हो जाता है इसी सिद्धांत का अनुमोदन करते हुए हमें बाबा के श्री दर्शन का भी प्रयत्न करना चाहिए। बाबा के चित्र की ओर देखो। अहा, कितना सुन्दर है ? वे पैर मोड़ कर बैठे हैं और दाहिना पैर

बायें घुटने पर रखा गया है। बायें हाथ की अँगुलियाँ दाहिने चरण पर फैली हुई हैं। दाहिने पैर के अँगुठे पर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियाँ फैली हुई हैं। इस आकृति से बाबा समझा रहे हैं कि यदि तुम्हें मेरे आध्यात्मिक दर्शन करने की इच्छा हो तो अभिमानशून्य और विनम्र होकर उक्त दो अँगुलियों के बीच वे मेरे चरण के अँगुठे का ध्यान करो। तब कहीं तुम उस सत्य स्वरूप का दर्शन करने में सफल हो सकोगे। भक्ति प्राप्त करने का यह सबसे सुगम पंथ है।

अब एक क्षण श्री साईबाबा की जीवनी का अवलोकन करें। साईबाबा के वास से ही शिरडी तीर्थस्थल बन गया है। चारों ओर से लोगों की भीड़ वहाँ प्रति दिन बढ़ने लगी है तथा धनी और निर्धन सभी को किसी न किसी रूप में लाभ पहुँच रहा है। बाबा के असीम प्रेम, उनके अद्‌भुत ज्ञानभंडार और सर्वव्यापकता का वर्णन करने की सामर्थ्य किसे है ? धन्य तो वही है, जिसे कुछ अनुभव हो चुका है। कभी-कभी वे ब्रह्म में निमग्न रहने के कारण दीर्घ मौन धारण कर लिया करते थे। कभी दृष्टान्त देते तो कभी हास्य-विनोद किया करते थे। कभी सरल चित्त रहते तो कभी क्रुद्ध भी हो जाया करते थे। भक्तों को उनके मुखमंडल के अवलोकन, वार्तालाप करने और लीलाएँ सुनने की इच्छाएँ सदा अतृप्त ही बनी रहती। फिर भी हम फूले न समाते थे। जलवृष्टि के कणों की गणना की जा सकती है, वायु को भी चर्म की थैली में संचित किया जा सकता है, परन्तु बाबा की लीलाओं का कोई भी अंत न पा सकता। अब उन लीलओं में से एक लीला का यहाँ दर्शन करें। भक्तों के संकटों के घटित होने पूर्व बाबा उपयुक्त अवसर पर किस प्रकार उनकी रक्षा किया करते थे ? श्री बालासाहेब मिरीकर, जो सरदार काकासाहेब के सुपुत्र तथा कोपरगाँव के मामलतदार थे, एक बार दौरे पर चितली जा रहे थे। तभी मार्ग में, वे साईबाबा के दर्शनार्थ शिरडी पधारे। उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा की चरण-वन्दना की और सदैव की भाँति स्वास्थ्य तथा अन्य विषयों पर चर्चा की। बाबा ने उन्हें चेतावनी देकर कहा कि, ''जहाँ तुम बैठे हो, वही द्वारकामाई है। जो उसकी गोद में बैठता है, वह अपने बच्चों के समस्त दुःखों और कठिनाइयों को दूर कर देती है। यह मस्जिदमाई परम दयालु हैं।

सरलहृदय भक्तों की तो वह माँ है और संकटो में उनकी रक्षा अवश्य करेगी। जो उसकी गोद में एक बार बैठता है, उसके समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं। जो उसकी छत्रछाया में विश्राम करता है, उसे आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है।'' तदुपरांत बाबा ने उन्हे उदी देकर अपना वरद्हस्त उनके मस्तक पर रख आशीर्वाद दिया।

जब श्री बालासाहेब जाने के लिये उठ खड़े हुए तो बाबा बोले कि, ''क्या तुम लम्बे बाबा (अर्थात सर्प) से परिचित हो ?'' और अपनी बाईं मुट्ठी बन्द कर उसे दाहिने हाथ की कुहनी के पास ने जाकर दाहिने हाथ को साँप के सदृश हिलाकर बोले कि, ''वह अति भयंकर है, परन्तु द्वारकामाई के लालों का वह कर ही क्या सकता हैं ? जब स्वयं द्वारकामाई उनकी रक्षा करने वाली है तो सर्प की सामर्थ्य ही क्या हैं ? वहाँ उपस्थित लोग इसका अर्थ तथा मिरीकर को इस प्रकार चेतावनी देने का कारण जानना चाहते थे, परन्तु पूछने का साहस किसी में भी न था। बाबा ने शामा को बुलाया और बालासाहेब के साथ जाकर चितली यात्रा का आनन्द लेने की आज्ञा दी। तब शामा ने जाकर बाबा का आदेश बालासाहेब को सुनाया। वे बोले मार्ग में असुविधाएँ बहुत हैं, अतः आपको व्यर्थ ही कष्ट उठाना उचित नहीं हैं। बालासाहेब ने जो कुछ कहा, वह शामा ने बाबा को बताया। बाबा बोले कि, ''अच्छा ठीक है, न जाओ। सदैव उचित अर्थ ग्रहणकर श्रेष्ठ कार्य ही करना चाहिए। जो कुछ होने वाला है, सो तो होकर ही रहेगा।''

बालासाहेब ने पुनः विचार कर शामा को अपने साथ चलने के लिये कहा। तब शामा पुनः बाबा की आज्ञा प्राप्त कर बालासाहेब के साथ ताँगे में रवाना हो गए। वे नौ बजे चितली पहुँचे और मारुति मंदिर में जाकर ठहरे। ऑफिस के कर्मचारीगण अभी नहीं आए थे, इस कारण वे यहाँ-वहाँ की चर्चाएँ करने लगे। बालासाहेब दैनिक पत्र पढ़ते हुए चटाई पर शांतिपूर्वक बैठे थे। उनकी धोती का ऊपरी सिरा कमर पर पड़ा हुआ था और उसी के एक भाग पर एक सर्प बैठा हुआ था। किसी का भी ध्यान उधर न था। वह सी-सी करता हुआ आगे रेंगने लगा। यह आवाज सुनकर चपरासी दौड़ा और

लालटेन ले आया । सर्प को देखकर वह साँप-साँप कहकर उच्च स्वर में चिल्लाने लगा । तब बालासाहेब अति भयभीत होकर काँपने लगे । शामा को भी आश्चर्य हुआ । तब वे तथा अन्य व्यक्ति वहाँ से धीरे से हटे और अपने हाथ में लाठियाँ ले लीं । सर्प धीरे-धीरे कमर से नीचे उतर आया । तब लोगों ने उसका तत्काल ही प्राणांत कर दिया । जिस संकट की बाबा ने भविष्यवाणी की थी, वह टल गया और साई-चरणों में बालासाहेब का प्रेम दृढ़ हो गया ।

बापूसाहेब बूटी

एक दिन महान् ज्योतिषी श्री नानासाहेब डेंगले ने बापूसाहेब बुटी से (जो उस समय शिरडी में ही थे)कहा, ''आज का दिन तुम्हारे लिए अत्यन्त अशुभ है और तुम्हारे जीवन को संकटप्रद है ।'' यह सुनकर बापूसाहेब बड़े अधीर हो उठे । जब सदैव की भाँति वे बाबा के दर्शन करने गए तो वे बोले कि, ''ये नाना क्या कहते हैं ? वे तुम्हारी मृत्यु की भविष्यवाणी कर रहे हैं, परन्तु तुम्हें भयभीत होने की किंचित् मात्र भी आवश्यकता नहीं है। इनसे दृढ़तापूर्वक कह दो कि, अच्छा देखें, काल मेरा किस तरह अपहरण करता है ।'' जब संध्यासमय बापू अपने शौच-गृह में गए तो वहाँ उन्हें एक सर्प दिखाई दिया । उनके नौकर ने भी सर्प को देख लिया और उसे मारने को एक पत्थर उठाया । बापूसाहेब ने एक लम्बी लकड़ी मँगवाई, परन्तु लकड़ी आने से पूर्व ही वह साँप दूरी पर रेंगता हुआ दिखाई दिया और तुरन्त ही दृष्टि से ओझल हो गया । बापूसाहेब को बाबा के अभयपूर्ण वचनों का स्मरण हुआ और बड़ा ही संतोष हुआ ।

अमीर शक्कर

अमीर शक्कर कोऱ्हाले गाँव का निवासी था, जो कोपरगाँव तालुके में है । वह जाति का कसाई था और बान्द्रा में दलाली का धंधा किया करता था । वह प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक था । एक बार वह गठिया रोग से अधिक कष्ट पा रहा था । जब उसे खुदा की स्मृति आई, तब काम-धंदा छोड़कर वह शिरडी आया और बाबा से रोग-निवृत्ति की प्रार्थना करने लगा । तब बाबा ने उसे

चावड़ी में रहने की आज्ञा दे दी । चावड़ी उस समय एक अस्वास्थ्यकारक स्थान होने के कारण इस प्रकार के रोगियों के लिये सर्वथा अयोग्य थी । गाँव का अन्य कोई भी स्थान उसके लिये बेहतर होता, परन्तु बाबा के शब्द तो निर्णयात्मक तथा मुख्य औषधिस्वरूप थे । बाबा ने उसे मस्जिद में न आने दिया और चावड़ी में ही रहने की आज्ञा दी । वहाँ उसे बहुत लाभ हुआ । बाबा प्रातः और सायंकाल चावड़ी से निकलते थे तथा एक दिन के अंतर से जुलूस के साथ वहाँ आते और वहीं विश्राम किया करते थे । इसलिये अमीर को बाबा का सान्निध्य सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाया करता था । अमीर वहाँ पूरे नौ मास रहा । जब किसी अन्य कारणवश उसका मन उस स्थान से ऊब गया, तब रात्रि में वह चोरी से उस स्थान को छोड़कर कोपरगाँव की धर्मशाला में जा ठहरा । वहाँ पहुँचकर उसने वहाँ एक फकीर को मरते हुए देखा, जो पानी माँग रहा था । अमीर ने उसे पानी दिया, जिसे पीते ही उसका देहांत हो गया । अब अमीर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया । उसे विचार आया कि अधिकारियों को इसकी सूचना दे दूँ तो मैं ही मृत्यु के लिये उत्तरदायी ठहराया जाँऊगा और प्रथम सूचना पहुँचाने के नाते कि मुझे अवश्य इस विषय की अधिक जानकारी होगी, सबसे प्रथम मैं ही पकड़ा जाँऊगा । तब बिना आज्ञा शिरडी छोड़ने की उतावली पर उसे बड़ा पश्चाताप हुआ । उसने बाबा से मन ही मन प्रार्थना की और शिरडी लौटने का निश्चय कर उसी रात्रि बाबा का नाम लेते हुए पौ फटने से पूर्व ही शिरडी वापस पहुँचकर चिंतामुक्त हो गया । फिर वह चावड़ी में बाबा की इच्छा और आज्ञानुसार ही रहने लगा और शीघ्र ही रोगमुक्त हो गया ।

एक समय ऐसा हुआ कि अर्द्ध रात्रि को बाबा ने जोर से पुकारा कि ''ओ अब्दुल ! कोई दुष्ट प्राणी मेरे बिस्तर पर चढ़ रहा है ।'' अब्दुल ने लालटेन लेकर बाबा का बिस्तर देखा, परन्तु वहाँ कुछ भी न दिखा । बाबा ने ध्यानपूर्वक सारे स्थान का निरीक्षण करने को कहा और वे अपना सटका भी जमीन पर पटकने लगे । बाबा की यह लीला देखकर अमीर ने सोचा कि हो सकता है कि बाबा को किसी साँप के आने की शंका हुई हो ।

दीर्घकाल तक बाबा की संगति में रहने कारण अमीर को उनके शब्दों और कार्यों का अर्थ समझ में आ गया था। उन्होंने अपने बिस्तर के पास कुछ रेंगता हुआ देखा, तब उन्होंने अब्दुल से बत्ती मँगवाई और एक साँप को कुंडली मारे हुये वहाँ बैठे देखा, जो अपना फन हिला रहा था। फिर वह साँप तुरन्त ही मार डाला गया। इस प्रकार बाबा ने सामयिक सूचना देकर अमीर के प्राणों की रक्षा की।

हेमाडपंत (बिच्छू और साँप)

(१) बाबा की आज्ञानुसार काकासाहेब दीक्षित श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रंन्थो भागवत और भावार्थरामायण का नित्य पारायण किया करते थे। एक समय जब रामायण का पाठ हो रहा था, तब श्री हेमाडपंत भी श्रोताओं में सम्मिलित थे। अपनी माँ के आदेशानुसार किस प्रकार हनुमान ने श्री राम की महानता की परीक्षा ली - यह प्रसंग चल रहा था। सब श्रोता-जन मंत्र मुग्ध हो रहे थे तथा हेमाडपंत की भी वही स्थिति थी। पता नहीं कहाँ से एक बड़ा बिच्छू उनके उपर आ गिरा और उनके दाहिने कंधे पर बैठ गया, जिसका उन्हें कोई भान तक न हुआ। ईश्वर को श्रोताओं की रक्षा स्वयं करनी पड़ती है। अचानक ही उनकी दृष्टि कंधे पर पड़ गई। उन्होंने उस बिच्छू देख लिया। वह मृतप्राय-सा प्रतीत हो रहा था, मानो वह भी कथा के आनन्द में तल्लीन हो। हरि-इच्छा जान कर उन्होंने श्रोताओं में बिना विघ्न डाले उसे अपनी धोती के दोनों सिरे मिलाकर उसमें लपेट लिया और दूर ले जाकर बगीचे में छोड़ दिया।

(२) एक अन्य अवसर पर संध्या समय काकासाहेब वाड़े के ऊपरी खंड में बैठे हुये थे, तभी एक साँप खिड़की की चौखट के एक छिद्र में से भीतर घुस आया और कुंडली मारकर बैठ गया। बत्ती लाने पर पहले तो वह थोड़ा चमका, फिर वहीं चुपचाप बैठा रहा और अपना फन हिलाने लगा। बहुत-से लोग छड़ी और डंडा लेकर वहाँ दौंड़े। परन्तु वह एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर बैठा था, जहाँ उस किसी के प्रहार का कोई भी असर न पड़ता था। लोगों का

शोर सुनकर वह शीघ्र ही उसी छिद्र में से अदृश्य हो गया, तब कहीं सब लोगों की जान में जान आई ।

बाबा के विचार

एक भक्त मुक्ताराम कहने लगा कि चलो, अच्छा ही हुआ, जो एक जीव बेचारा बच गया । श्री हेमाडपंत ने उसकी अवहेलना कर कहा कि साँप को मारना ही उचित है । इस कारण इस विषय पर वादविवाद होने लगा । एक का मत था कि साँप तथा उसके सदृश जन्तुओं को मार डालना ही उचित है, किन्तु दूसरे का इसके विपरीत मत था । रात्रि अधिक हो जाने के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुँचे बिना ही उन्हें विवाद स्थगित करना पड़ा । दूसरे दिन यह प्रश्न बाबा के समक्ष लाया गया । तब बाबा निर्णयात्मक वचन बोले कि, ''सब जीवों में और समस्त प्राणियों में ईश्वर का निवास है, चाहे वह साँप हो या बिच्छू । वे ही इस विश्व के नियंत्रणकर्ता हैं और सब प्राणी साँप, बिच्छू इत्यादि उनकी आज्ञा का ही पालन किया करते हैं । उनकी इच्छा के बिना कोई भी दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता । समस्त विश्व उनके अधीन है तथा स्वतंत्र कोई भी नहीं है । इसलिए हमें सब प्राणियों से दया और स्नेह करना चाहिए । वैमनस्य या संहार करना छोड़कर शान्त चित्त से जीवन व्यतीत करना चाहिए । ईश्वर सबका ही रक्षक है ।''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायणः तृतीय विश्राम

अध्याय-२३

योग और प्याज, शामा की सर्पदंश से मुक्ति, विषूचिका (हैजा) निवारणार्थ नियमों का उल्लंघन, गुरु भक्ति की कठिन परीक्षा ।

प्रस्तावना

वस्तुतः मनुष्य त्रिगुणमय (तीन गुण अर्थात् सत्व-रज-तम) है तथा माया के प्रभाव से ही उसे भासित होने लगता है कि मैं शरीर हूँ । दैहिक बुद्धि के आवरण के कारण ही वह ऐसी धारणा बना लेता है कि मैं ही कर्त्ता और उपभोग करनेवाला हूँ और इस प्रकार वह अपने को अनेक कष्टों में स्वयं फँसा लेता है । फिर उसे उससे छुटकारे का कोई मार्ग नहीं सूझता । **मुक्ति का एकमात्र उपाय है - गुरु के श्री चरणों में अटल प्रेम और भक्ति ।** सबसे महान् अभिनयकर्ता भगवान् साई ने भक्तों को पूर्ण आनन्द पहुँचाकर उन्हें निज-स्वरूप में परिवर्त्तित कर लिया है । उपर्युक्त कारणों से **हम साईबाबा को ईश्वर का ही अवतार मानते हैं ।** परन्तु वे सदा यही कहा करते थे कि ''मै तो ईश्वर का दास हूँ ।'' अवतार होते हुए भी मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिए तथा अपने वर्ण के कर्तव्यों को किस प्रकार निबाहना चाहिए, इसका उदाहरण उन्होंने लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया । जो जब जड़ और चेतन पदार्थों में ईश्वर के दर्शन करता हो, उसको विनयशीलता ही उपयुक्त थी । उन्होंने किसी की उपेक्षा या अनादर नहीं किया । वे सब प्राणियों में भगवद् दर्शन करते थे । उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि, ''मैं अनल हक़ (सोऽहम्) हूँ ।'' वे सदा यही कहते थे कि ''मैं तो यादे हक़ (दासोऽम्) हूँ ।'' **''अल्लाह मालिक'' सदा उनके होठों पर था ।** हम अन्य संतों से परिचित नहीं हैं और न हमें ज्ञात है कि वे किस प्रकार आचरण किया करते हैं अथवा उनकी दिनचर्या इत्यादि क्या है । ईश-कृपा से केवल हमें इतना ही ज्ञात है कि वे

अज्ञान और बद्ध जीवों के निमित्त स्वयं अवतीर्ण होते हैं । **शुभ कर्मों के परिणामस्वरुप ही हम में सन्तों की कथाएँ और लीलाएँ श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं ।** अब हम मुख्य कथा पर आते हैं ।

योग और प्याज

एक समय कोई एक योगाभ्यासी नानासाहेब चाँदोरकर के साथ शिरडी आया । उसने पातंजलि योगसूत्र तथा योगशास्त्र के अन्य ग्रन्थों का विशेष अध्ययन किया था, परन्तु वह व्यावहारिक अनुभव से वंचित था । मन एकाग्र न हो सकने के कारण वह थोड़े समय के लिये भी समाधि न लगा सकता था । यदि साईबाबा की कृपा प्राप्त हो जाए तो उनसे अधिक समय तक समाधि अवस्था प्राप्त करने की विधि ज्ञात हो जाएगी, इस विचार से वह शिरडी आया और जब मस्जिद में पहुँचा तो साईबाबा को प्यासहित रोटी खाते देख उसे ऐसा विचार अया कि यह कच्ची प्याजसहित सूखी रोटी खानेवाला व्यक्ति मेरी कठिनाईयों को किस प्रकार हल कर सकेगा? साईबाबा अन्तर्ज्ञान से उसका विचार जानकर तुरन्त नानासाहेब से बोले कि, ''ओ नाना ! जिसमें प्याज हजम करने की शक्ति है, उसको ही उसे खाना चाहिए, अन्य को नहीं।'' इन शब्दों से अत्यन्त विस्मित होकर योगी ने साईचरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया । शुद्ध और निष्कपट भाव से अपनी कठिनाइयाँ बाबा के समक्ष प्रस्तुत करके उनसे उनका हल प्राप्त किया, और इस प्रकार संतुष्ट और सुखी होकर बाबा के दर्शन और उदी लेकर वह शिरडी से चला गया ।

शामा की सर्पदंश से मुक्ति

कथा प्रारंभ करने से पूर्व हेमाडपंत लिखते हैं कि जीव की तुलना पालतू तोते से की जा सकती है, क्योंकि दोनों ही बद्ध हैं । एक शरीर में तो दूसरा पिंजड़े में । दोनो ही अपना बद्धावस्था को श्रेयस्कर समझते हैं । परंतु यदि हरिकृपा से उन्हें कोई उत्तम गुरु मिल जाए और वह उनके ज्ञानचक्षु खोलकर उन्हें बंधन मुक्त कर दे तो उनकी चेतना का स्तर उच्च हो जाता है, जिसकी तुलना में पूर्व संकीर्ण स्थिति सर्वथा तुच्छ ही थी ।

गत अध्याय में किस प्रकार श्री मिरीकर पर आनेवाले संकट की पूर्वसूचना देकर उन्हें उससे बचाया गया, इसका वर्णन किया जा चुका है। पाठकवृन्द अब उसी प्रकार की एक और कथा श्रवण करें। एक बार शामा को विषधर सर्प ने उसके हाथ की उँगली में डस लिया। समस्त शरीर में विष का प्रसार हो जाने के कारण वे अत्यन्त कष्ट का अनुभव करके क्रंदन करने लगे कि अब मेरा अन्तकाल समीप आ गया है। उनके इष्ट मित्र उन्हें भगवान बिरोबा (विरभद्र) के पास ले जाना चाहते थे, जहाँ इस प्रकार की समस्त पीड़ाओं की योग्य चिकित्सा होती है, परन्तु शामा मस्जिद की ओर ही दौड़ा– अपने बिरोबा (विरभद्र) श्री साईबाबा के पास। जब बाबा ने उन्हें दूर से आते देखा तो वे झिड़कने और गाली देने लगे। वे क्रोधित होकर बोले – ''अरे, ओ नादान कृतघ्न बम्मन*! ऊपर मत चढ़। सावधान, यदि ऐसा किया तो।'' और फिर गर्जन करते हुए बोले, ''हट, दूर हट, नीचे उतर।'' श्री साईबाबा को इस प्रकार अत्यंत क्रोधित देख शामा उलझन में पड़ गया और निराश होकर सोचने लगा कि केवल मस्जिद ही तो मेरा घर है और साईबाबा मात्र असहायों के आश्रयदाता हैं और जब वे ही इस प्रकार मुझे यहाँ से भगा रहें हैं तो मैं अब किसकी शरण में जाऊँ? उसने अपने जीवन की आशा ही छोड़ दी और वहीं शान्तिपूर्वक बैठ गया। थोड़े समय के पश्चात् जब बाबा पूर्ववत् शांत हुए तो शामा ऊपर आकर उनके समीप बैठ गया। तब बाबा बोले, ''डरो नहीं। तिल मात्र भी चिन्ता मत करो। दयालु फकीर तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा। घर जाकर शान्ति से बैठो और बाहर न निकलो। मुझपर विश्वास कर निर्भय होकर चिन्ता त्याग दो।'' उन्हें घर भिजवाने के पश्चात् ही पीछे से बाबा ने तात्या पाटील और काका साहेबा दीक्षित के द्वारा यह कहला भेजा कि वह इच्छानुसार भोजन करें, घर में टहलते रहें, लेटें नही और न शयन करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि आदेशों का अक्षरशः पालन किया गया और थोड़े

---

* यह साँप पिछले जन्म में बम्मन था, इसकी ओर यह संकेत है। साँप को ब्राह्मण भी माना जाता है।

समय में ही वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। इस विषय में केवल यही बात स्मरण योग्य है कि बाबा के शब्द (हट, दूर हट, नीचे उतर) शामा को लक्ष्य करके नहीं कहे गए थे, जैसा कि ऊपर से प्रतीत होता है, वरन् उस साँप और उसके विष के लिये ही यह आज्ञा थी (अर्थात् शामा के शरीर में विष न फैलाने की आज्ञा थी।) अन्य मंत्र शास्त्रों के विशेषज्ञों की तरह बाबा ने किसी मंत्र या मंत्रोक्त चावल या जल आदि का प्रयोग नहीं किया।

इस कथा और इसी प्रकार की अन्य कथाओं को सुनकर साईबाबा के चरणों में यह दृढ़ विश्वास हो जाएगा कि यदि मायायुक्त संसार को पार करना हो तो केवल श्री साईचरणों का हृदय में ध्यान करो।

हैजा महामारी (विषूचिका)

एक बार शिरडी विषूचिका के प्रकोप से दहल उठी और ग्रामवासी भयभीत हो गए। उनका पारस्परिक सम्पर्क अन्य गाँव के लोगों से प्रायः समाप्त सा हो गया। तब गाँव के पंचों ने एकत्रित होकर दो आदेश प्रसारित किये। प्रथम–लकड़ी की एक भी गाड़ी गाँव में न आने दी जाए। द्वितीय – कोई भी बकरे की बलि न दे। इन आदेशों का उल्लंघन करने वाले को मुखिया और पंचों द्वारा दंड दिया जाएगा। बाबा तो जानते ही थे कि यह सब केवल अंधविश्वास ही है और इसी कारण उन्होंने पंचों के आदेशों की कोई चिंता न की। जब ये आदेश लागू थे, तभी एक लकड़ी की गाड़ी गाँव में आयी। सबको ज्ञात था कि गाँव में लकड़ी का अधिक अभाव है, फिर भी लोग उस गाड़ी वाले को भगाने लगे। यह समाचार कहीं से बाबा के पास पहुँच गया। तब वे स्वयं वहाँ आए और गाड़ी वाले से गाड़ी मस्जिद में ले चलने को कहा। बाबा के विरुद्ध कोई चूँ–चपाट तक भी न कर सका। यथार्थ में उन्हें धूनी के लिए लकड़ियों की अत्यन्त आवश्यकता थी और इसीलिए उन्होंने वह गाड़ी मोल ले ली। एक महान् अग्निहोत्र की तरह उन्होंने जीवन भर धूनी को चैतन्य रखा। बाबा की धूनी दिन–रात प्रज्ज्वलित रहती और इसलिए वे लकड़ियाँ एकत्रित कर के रखते थे।

बाबा का घर अर्थात् मस्जिद सबके लिए सदैव खुली थी । उसमें किसी ताले चाभी की आवश्यकता न थी । गाँव के गरीब आदमी अपने उपयोग के लिए उसमें से लकड़ियाँ निकाल भी ले जाया करते थे, परंतु बाबा ने इस पर कभी कोई आपत्ति ने की । बाबा तो सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर से ओत-प्रोत देखते थे, इसलिए उनमें किसी के प्रति घृणा या शत्रुता की भावना न थी । पूर्ण विरक्त होते हुए भी उन्होंने एक साधारण गृहस्थ का-उदाहरण लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया ।

गुरुभक्ति की कठिन परीक्षा

अब देखिये, दूसरे आदेश की भी बाबा ने क्या दशा की । वह आदेश लागू रहते समय कोई मस्जिद में एक बकरा लाया था । वह अत्यन्त दुर्बल, बूढ़ा और मरने ही वाला था । उस समय मालेगाँव के फकीर पीर मोहम्मद उर्फ बड़े बाबा भी उनके समीप ही खड़े थे । बाबा ने उन्हें बकरा काटकर बलि चढ़ाने को कहा । श्री साईबाबा बड़े बाबा का आदर किया करते थे । इस कारण वे सदैव उनके दाहिनी ओर ही बैठा करते थे । सबसे पहले वे ही चिलम पीते और फिर बाबा को देते, बाद में अन्य भक्तों को । जब दोपहर को भोजन परोस दिया जाता, तब बाबा बड़े बाबा को आदरपूर्वक बुलाकर अपने दाहिनी ओ बिठाते और तब सब भोजन करते । बाबा के पास जो दक्षिणा एकत्रित होती, उसमें से वे ५० रुपये प्रतिदिन बड़े बाबा को दे दिया करते थे । जब वे लौटते तो बाबा भी उनके साथ सौ कदम तक जाया करते थे । उनका इतना आदर होते हुए भी जब बाबा ने उनसे बकरा काटने को कहा तो उन्होंने अस्वीकार कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि बलि चढ़ाना व्यर्थ ही है । तब बाबा ने शामा से बकरे की बलि के लिये कहा । वे राधाकृष्णमाई के घर जाकर एक चाकू ले आए और उसे बाबा के सामने रख दिया । राधाकृष्णमाई को जब कारण का पता चला तो उन्होंने चाकू वापस मँगवा लिया । अब शामा दूसरा चाकू लाने के लिये गए, किन्तु बड़ी देर तक मस्जिद में न लौटे । तब काकासाहेब दीक्षित की बारी आयी । वह सोना सच्चा तो था, परन्तु उसको

कसौटी पर कसना भी अत्यन्त आवश्यक था। बाबा ने उनसे चाकू लाकर बकरा काटने को कहा। वे साठेवाड़े से एक चाकू ले आए और बाबा की आज्ञा मिलते ही काटने को तैयार हो गए। उन्होंने पवित्र ब्राह्मण-वंश मे जन्म लिया था और अपने जीवन में वे बलिकृत्य जानते ही न थे। यद्यपि हिंसा करना निंदनीय है, फिर भी वे बकरा काटने के लिये उद्यत हो गए। सब लोगों को आश्चर्य था कि बड़े बाबा एक यवन होते हुए भी बकरा काटने को सहमत नहीं हैं और यह सनातन ब्राह्मण बकरे की बलि देने की तैयारी कर रहा है। उन्होंने अपनी धोती ऊपर चढ़ा फेंटा कस लिया और चाकू लेकर हाथ ऊपर उठाकर बाबा की अन्तिम आज्ञा की प्रतिक्षा करने लगे। बाबा बोले, ''ठहरो, तुम कितने दुष्ट हो ? ब्राह्मण होकर तुम बकरे की बलि दे रहे हो ?'' काकासाहेब चाकू नीचे रक कर बाबा से बोले, ''आपकी आज्ञा ही हमारे लिये सब कुछ है, हमें अन्य आदेशों से क्या ? हम तो केवल आपका ही सदैव स्मरण तथा ध्यान करते हैं और दिन-रात आपकी आज्ञा का पालन किया करते हैं। हमें यह विचार करने की आवश्यकता नहीं कि बकरे को मारना उचित है या अनुचित ? और न हम इसका कारण ही जानना चाहते हैं। हमारा कर्तव्य और धर्म तो निःसंकोच होकर गुरु की आज्ञा का पूर्णतः पालन करने में है।'' तब बाबा ने काकासाहेब से कहा कि, ''मैं स्वयं ही बलि चढ़ाने का कार्य करूँगा।'' तब ऐसा निश्चित हुआ कि तकिये के पास जहाँ बहुत से फकिर बैठते हैं, वहाँ चलकर इसकी बलि देनी चाहिए। जब बकरा वहाँ ले जाया जा रहा था, तभी रास्ते में गिर कर वह मर गया।

भक्तों के प्रकार का वर्णन कर श्री हेमाडपंत यह अध्याय समाप्त करते हैं। भक्त तीन प्रकार के हैं - (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) साधारण। प्रथम श्रेणी के भक्त वे हैं. जो अपने गुरु की इच्छा पहले से ही जानकर अपना कर्तव्य मान कर सेवा करते हैं। द्वितीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा मिलते ही उसका तुरन्त पालन करते हैं। तृतीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा सदैव टालते हुए पग-पग पर त्रुटि किया करते हैं। भक्तगण यदि

अपनी जागृत बुद्धि और धैर्य धारण कर दृढ़ विश्वास स्थिर करें तो निःसन्देह उनका आध्यात्मिक ध्येय उनसे अधिक दूर नहीं है । श्वासोच्छ्वास का नियंत्रण, हठ योग या अन्य कठिन साधनाओं की कोई आवश्यकता नहीं है । जब शिष्य में उपर्युक्त गुणों का विकास हो जाता है और जब अग्रिम उपदेशों के लिये भूमिका तैयार हो जाती है, तभी गुरु स्वयं प्रगट होकर उसे पूर्णता की ओर ले जाते हैं । अगले अध्याय में बाबा के मनोरंजक हास्य-विनोद के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभ भवतु ।।

अध्याय-२४

श्री बाबा का हास्य विनोद, चने की लीला (हेमाडपंत), सुदामा की कथा, अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई की कथा, बाबा की भक्त-परायणता।

प्रारम्भ

अगले अध्याय में अमुक-अमुक विषयों का वर्णन होगा, ऐसा कहना एक प्रकार का अहंकार ही है। जब तक अहंकार गुरुचरणों में अर्पित न कर दिया जाए, तब तक सत्यस्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं। यदि हम निरभिमान हो जाएँ तो सफलता प्राप्त होना निश्चित ही है।

श्री साईबाबा की भक्ति करने से ऐहिक तथा आध्यात्मिक दोनों पदार्थों की प्राप्ति होती है और हम अपनी मूल प्रकृति में स्थिरता प्राप्त कर शांति और सुख के अधिकारी बन जाते हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे आदरसहित श्री साईबाबा की लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करें। यदि वे इसी प्रकार प्रयत्न करते रहेंगे तो उन्हें अपनी जीवन-ध्येय तथा परमानंद की सहज प्राप्ति हो जाएगी।

प्रायः सभी लोगों को हास्य प्रिय होता है, परन्तु स्वयं हास्य का पात्र कोई नहीं बनना चाहता। इस विषय में बाबा की पद्धति भी विचित्र थी। मनोविनोद जब भावपूर्ण होता तो अति मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद होता था। इसीलिए भक्तों को यदि स्वयं हास्य का पात्र बनना भी पड़ता था तो उन्हें उसमें कोई आपत्ति न होती थी। श्री हेमाडपंत भी ऐसा एक अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चना लीला

शिरडी में बाजार प्रति रविवार को लगता है। निकटवर्ति ग्रामों से लोग आकर वहाँ रास्तों पर दुकानें लगाते और माल बेचते हैं। मध्याह्न के समय

मस्जिद लोगों से ठसाठस भर जाया करती थी, परन्तु इतवार के दिन तो लोगों की इतनी अधिक भीड़ होती कि प्रायः दम ही घुटने लगता था। ऐसे ही एक रविवार के दिन श्री हेमाडपंत बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे। शामा बाबा के बाईं ओर व वामनराव बाबा के दाहिनी ओर थे। इस अवसर पर श्रीमान् बूटीसाहेब और काकासाहेब दीक्षित भी वहाँ उपस्थित थे। तब शामा ने हँसकर अण्णासाहेब से कहा कि, ''देखो, तुम्हारे कोट की बाँह पर कुछ चने लगे हुए-से प्रतीत होते हैं।'' - ऐसा कहकर शामा ने उनकी बाँह स्पर्श की, जहाँ कुछ चने के दाने मिले।

जब हेमाडपंत ने अपनी बाईं कुहनी सीधी की तो चने के कुछ दाने लुढ़क कर नीचे भी गिर पड़े, जो उपस्थित लोगों ने उठाये।

भक्तों को तो हास्य का विषय मिल गया और सभी आश्चर्यचकित होकर भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगे, परन्तु कोई भी यह न जान सका कि ये चने के दाने वहाँ आए कहाँ से और इतने समय तक उसमें कैसे फँसे रहे? इसका संतोषप्रद उत्तर किसी के पास न था, परन्तु इस रहस्य का भेद जानने को हर कोई उत्सुक था। तब बाबा कहने लगे कि, ''इन महाशय-आण्णासाहेब को एकांत में खाने की बुरी आदत हैं। आज बाजार का दिन है और ये चने चबाते हुए ही यहाँ आए हैं। मैं तो इनकी आदतों से भली भाँति परिचित हूँ और ये चने मेरे कथन की सत्यता के प्रमाण हैं। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या हैं?'' हेमाडपंत बोले कि ''बाबा, मुझे कभी भी एकांत में खाने की आदत नहीं है, फिर इस प्रकार मुझ पर दोषारोपण क्यों करते हैं? अभी तक मैंने शिरडी के बाजार के दर्शन भी नहीं किये तथा आज के दिन तो मैं भूल कर भी बाजार नहीं गया, तब उनके खाने की बात तो दूर है। भोजन के समय भी जो मेरे निकट होते हैं, उन्हें उनका उचित भाग दिये बिना मैं कभी भोजन ग्रहण नहीं करता।''

बाबा - ''तुम्हारा कथन सत्य है। परन्तु जब तुम्हारे समीप ही कोई न हो तो तुम या हम कर ही क्या सकते हैं ? अच्छा, बताओ, क्या भोजन करने से पूर्व तुम्हें कभी मेरी स्मृति भी आती है ? क्या मै सदैव तुम्हारे साथ नहीं हूँ ?

फिर क्या तुम पहले मुझे ही अर्पण कर भोजन किया करते हो ?''

शिक्षा

इस घटना द्वारा बाबा क्या शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, थोड़ा इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है । इसका सारांश यह है कि इन्दियाँ, मन और बुद्धि द्वारा पदार्थों का रसास्वादन करने के पूर्व बाबा का स्मरण करना चाहिए । उनका स्मरण ही अर्पण की एक विधि है । इन्द्रियाँ विषय पदार्थों की चिन्ता किये बिना कभी नहीं रह सकतीं । इन पदार्थों को उपभोग से पूर्व ईश्वरार्पण कर देने से उनकी आसक्ति स्वभावतः नष्ट हो जाती है । इसी प्रकार समस्त इच्छाएँ, क्रोध और तृष्णा आदि कुप्रवृत्तियों को पहले ईश्वरार्पण कर गुरु की ओर मोड़ देना चाहिए । यदि इसका नित्याभ्यास किया जाए तो परमेश्वर तुम्हारी कुवृत्तियों के दमन में सहायक होंगे । विषय के रसास्वादन के पूर्व वहाँ बाबा की उपस्थिति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए । तब विषय उपभोग के उपयुक्त है या नहीं, यह प्रश्न उपस्थित हो जाएगा और आचरण में सुधार होगा । इसके फलस्वरूप गुरुप्रेम में वृद्धि होकर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी । जब इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती हैतो दैहिक बुद्धि नष्ट हो चैतन्यघन में लीन हो जाती है । वस्तुतः गुरु और ईश्वर में कोई पृथकत्व नहीं है, और जो उन्हें भिन्न समझता है, वह तो निरा अज्ञानी है तथा उसे ईश्वर-दर्शन होना भी दुर्लभ है । इसलिए समस्त भेदभाव को भूल कर, गुरु और ईश्वर को अभिन्न समझना चाहिए । इस प्रकार गुरु सेवा करने से ईश्वरकृपा प्राप्त होना निश्चित ही है और तभी वे हमारा चित्त शुद्ध कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करेंगे । सारांश यह है कि ईश्वर और गुरु को पहले अर्पण किये बिना हमें किसी भी इन्द्रियग्राह्य विषय का रसास्वादन न करना चाहिए । इस प्रकार अभ्यास करने से भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी । फिर श्री साईबाबा की मनोहर सगुण मूर्ति सदैव आँखो के सम्मुख रहेगी, जिससे भक्ति, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी । ध्यान प्रगाढ़ होने से क्षुधा और संसार के अस्तित्व की विस्मृति हो जाएगी और सांसारिक विषयों का आकर्षण स्वतः नष्ट होकर चित्त को सुख और शांति प्राप्त होगी ।

सुदामा की कथा

उपर्युक्त घटना का वर्णन करते-करते हेमाडपंत को इसी प्रकार की सुदामा की कथा याद आई, जो ऊपर वर्णित नियमों की पुष्टि करती है। श्रीकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा अपने सहपाठी सुदामा के साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार कृष्ण और बलराम लकड़ियाँ लाने के लिए वन गए। सांदीपनि ऋषी की पत्नी ने सुदामा को भी उसी कार्य के निमित्त वन भेजा तथा तीनों विद्यार्थियों के खाने को कुछ चने भी उन्होंने सुदामा के द्वारा भेजे। जब कृष्ण और सुदामा की भेंट हुई तो कृष्ण ने कहा, ''दादा, मुझे थोड़ा जल दीजिये, प्यास अधिक लग रही है।'' सुदामा ने कहा, ''**भूखे पेट जल पीना हानिकारक होता है,** इसलिए पहले कुछदेर विश्राम कर लो।'' सुदामा ने चने के संबंध में न कोई चर्चा की और न कृष्ण को उनका भाग ही दिया। कृष्ण थके हुए तो थे ही, इसलिए सुदामा की गोद में अपना सिर रखते ही वे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गए। तभी सुदामा ने अवसर पाकर चने चबाना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में अचानकर कृष्ण पूछ बैठे कि, ''दादा, तुम क्या खा रहे हो और यह कड़कड़ की ध्वनि कैसी हो रही है ?'' सुदामा ने उत्तर दिया कि ''यहाँ खाने को है ही क्या ? मैं तो शीत से काँप रहा हूँ और इसलिए मेरे दाँत कड़कड़ बज रहे हैं। देखो तो, मैं अच्छी तरह से विष्णुसहस्त्रनाम भी उच्चारण नहीं कर पा रहा हूँ।'' यह सुनकर अन्तर्यामी कृष्ण ने कहा कि, ''दादा, मैंने अभी स्वप्न में देखा कि एक व्यक्ति दूसरे की वस्तुएँ खा रहा है। जब उससे इस विषय में प्रश्न किया गया तो उसने उत्तर दिया कि, ''मैं खाक़ (धूल) खा रहा हूँ।'' तब प्रश्नकर्ता ने कहा, ''ऐसा ही हो'' (एवमस्तु)। दादा, यह केवल स्वप्न था, **मुझे तो ज्ञात है कि तुम मेरे बिना अन्न का दाना भी ग्रहण नहीं करते**, परंतु श्रम के वशीभूत होकर मैंने तुम से ऐसा प्रश्न किया था।'' यदि सुदामा किंचित् मात्र भी कृष्ण की सर्वज्ञता से परिचित होते तो वे इस भाँति आचरण कभी न करते। श्रीकृष्ण के लँगोटिया मित्र होते हुए भी सुदामा को अपना शेष जीवन दरिद्रता में व्यतीत करना पड़ा परन्तु केवल एक ही मुट्ठी रूखे चावल (पोहा), जो

उनकी स्त्री सुशीला ने अत्यन्त परिश्रम से उपार्जित किए थे, भेंट करने पर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हो गए और उन्हें उसके बदले में सुवर्णनगरी प्रदान कर दी। जो दूसरों को दिये बिना एकांत में खाते हैं, उन्हें इस कथा को सदैव स्मरण रखना चाहिए।

श्रुति भी इस मत का प्रतिपादन करती है कि प्रथम ईश्वर को ही अर्पण करें तथा उच्छिष्ट हो जाने के उपरांत ही उसे ग्रहण करें। यही शिक्षा बाबा ने हास्य के रूप में दी है।

अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई

अब श्री हेमाडपंत एक दूसरी हास्यपूर्ण कथा का वर्णन करते हैं, जिसमें बाबा ने शान्ति-स्थापन का कार्य किया है। दामोदर घनश्याम बाबरे, उपनाम अण्णा चिंचणीकर बाबा के भक्त थे। वे सरल, सुदृढ़ और निर्भिक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे निडरतापूर्वक स्पष्ट भाषण करते और व्यवहार में सदैव नगद नारायण-से थे। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से वे रूखे और असहिष्णु प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से कपटहीन और व्यवहार-कुशल थे। इसी कारण बाबा उन्हें विशेष प्रेम करते थे। सभी भक्त अपनी-अपनी इच्छानुसार बाबा के अंग-अंग को दबा रहे थे। बाबा का हाथ कठड़े पर रखा हुआ था। दूसरी ओर एक वृद्ध विधवा उनकी सेवा कर रही थीं, जिनका नाम वेणुबाई कौजलगी था। बाबा उन्हें ''माँ'' शब्द से सम्बोधित करते तथा अन्य लोग उन्हें मौसीबाई कहते थे। वे एक शुद्ध हृदय की वृद्ध महिला थीं। वे उस समय दोनों हाथों की अँगुलियाँ मिलाकर बाबा के शरीर को मसल रही थीं। जब वे बलपूर्वक उनका पेट दबातीं तो पेट और पीठ का प्रायः एकीकरण हो जाता था। बाबा भी इस दबाव के कारण यहाँ-वहाँ सरक रहे थे। अण्णा दूसरी ओर सेवा में व्यस्त थे। मौसीबाई का सिर हाथों की परिचालन क्रिया के साथ नीचे-ऊपर हो रहा था। जब इस प्रकार दोनों सेवा में जुटे थे तो अनायास ही मौसीबाई का मुख अण्णा के अति निकट आ गया। मौसीबाई विनोदी प्रकृति की होने के कारण ताना देकर बोलीं कि, ''यह अण्णा बहुत बुरा व्यक्ति है और

यह मेरा चुम्बन करना चाहता है। इसके केश तो पक गए हैं, परन्तु मेरा चुंबन करने में इसे तनिक भी लज्जा नहीं आती है।'' यह सुनकर अण्णा क्रोधित होकर बोले, ''तुम कहती हो कि मैं एक वृद्ध और बुरा व्यक्ति हूँ। क्या मैं मूर्ख हूँ ? तुम खुद ही छेड़खानी करके मुझसे झगड़ा कर रही हो?'' वहाँ उपस्थित सब लोग इस विवाद का आनन्द ले रहे थे। बाबा का स्नेह तो दोनों पर था, इसलिये उन्होंने कुशलतापूर्वक विवाद का निपटारा कर दिया। वे प्रेमपूर्वक बोले, ''अरे अण्णा, व्यर्थ ही क्यों झगड़ रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता कि माँ का चुम्बन करने में दोष ही क्या है ?''

बाबा के शब्दों को सुनकर दोनों शान्त हो गए और सब उपस्थित लोग भी जी भरकर ठहाका मारकर बाबा के विनोद का आनन्द लेने लगे।

बाबा की भक्त-परायणता

बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही सेवा करने दिया करते थे और इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप उन्हें सहन न था। एक अन्य अवसर पर मौसीबाई बाबा का पेट बलपूर्वक मसल रही थीं, जिसे देख कर दर्शकगण व्यग्र होकर मौसीबाई से कहने लगे कि, ''माँ ! कृपा कर धीरे-धीरे ही पेट दबाओ। इस प्रकार मसलने से तो बाबा की अंतड़ियाँ और नाड़ियाँ ही टूट जाएँगी।'' वे इतना की भी न पाये थे कि बाबा अपने आसन से तुरन्त उठ बैठे और अंगारे के समान लाल आँखे कर क्रोधित हो गए। साहस किसे था, जो उन्हें रोके ? उन्होंने दोनों हाथों से सटके का एक छोर पकड़ नाभि में लगाया और दूसरा छोर पासवाले खम्बेको लगाके उसे पेट से धक्का देने लगे। सटका (सोटा) लगभग २ या ३ फुट लम्बा था। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पेट में छिद्र कर प्रवेश कर जाएगा। लोग भयभीत हो उठे कि अब पेट फटने ही वाला है। अब बाबा अपने स्थान पर दृढ़ हो, उसके अत्यन्त समीप होते जा रहे थे और प्रतिक्षण पेट फटने की आशंका हो रही थी। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। वे आश्चर्यचकित और भयभीत हो ऐसे खड़े थे, मानो गूँगो का समुदाय हो। यथार्थ में भक्तगण का संकेत मौसीबाई को केवल इतना ही था कि वे सहज रीति से सेवा-शुश्रुषा करें। किसी की इच्छा बाबा को कष्ट पहुँचाने

की न थी। भक्तों ने तो यह कार्य केवल सद्भावना से प्रेरित होकर ही किया था । परन्तु बाबा तो अपने कार्य में किसी का हस्तक्षेप कणमात्र भी न होने देना चाहते थे । भक्तों को आश्चर्य हो रहा था कि शुभ भावना से प्रेरित कार्य दुर्गति में परिणत हो गया और वे केवल दर्शक बने रहने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते थे ? भाग्यवश बाबा का क्रोध शान्त हो गया और सटका छोड़कर वे पुनः आसन पर विराजमान हो गए । इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि अब दूसरों के कार्य में कभी भी हस्तक्षेप न करेंगे और सबको उनकी इच्छानुसार ही बाबा की सेवा करने देंगे । केवल बाबा ही सेवा का मूल्य आँकने में समर्थ थे ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२५
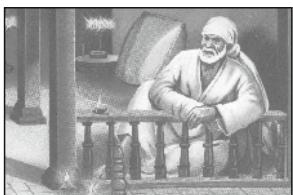
(१) दामू अण्णा कासार - अहमदनगर के रूई और अनाज के सौदे
(२) आम्र-लीला, प्रार्थना ।

प्राक्कथन

जो अकारण ही सभी पर दया करते हैं तथा समस्त प्राणियों के जीवन व आश्रयदाता हैं, जो परब्रह्मके पूर्ण अवतार हैं, ऐसे अहेतुक दयासिन्धु और महान् योगिराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर अब हम यह अध्याय आरम्भ करते हैं ।

श्री साई की जय हो ! वे सन्त चूड़ामणि, समस्त शुभ कार्यों के उद्‌गम स्थान और हमारे आत्माराम तथा भक्तों के आश्रयदाता हैं । हम उन साईनाथ की चरण-वन्दना करते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया है ।

श्री साईबाबा अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप हैं । हमें तो केवल उनके चरणकमलों में दृढ़ भक्ति ही रखनी चाहिए । जब भक्त का विश्वास दृढ़ और भक्ति परिपक्व हो जाती है तो उसका मनोरथ भी शीघ्र ही सफल हो जाता है । जब हेमाडपंत को साईचरित्र तथा साई लीलाओं के रचने की तीव्र उत्कंठा हुई तो बाबा ने तुरन्त ही वह पूर्ण कर दी । जब उन्हें स्मृति-पत्र (नोटस्) इत्यादि रखने की आज्ञा हुई तो हेमाडपंत में स्फूर्ति, बुद्धिमता, शक्ति तथा कार्य करने की क्षमता स्वयं ही आ गई । वे कहते हैं कि मैं इस कार्य के सर्वदा अयोग्य होते हुए भी श्री साई के शुभाशीर्वाद से इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका । फलस्वरूप यह ग्रन्थ ''श्री साई सच्चरित्र'' आप लोगों को उपलब्ध हो सका, जो एक निर्मल स्त्रोत या चन्द्रकान्तमणि के ही सदृश है, जिसमें से सदैव

साई-लीलारूपी अमृत झरा करता है, ताकि पाठकगण जी भर कर उसका पान करें ।

जब भक्त पूर्ण अन्तःकरण से श्री साईबाबा की भक्ति करने लगता है तो बाबा उसके समस्त कष्टों और दुर्भाग्यों को दूर कर स्वयं उसकी रक्षा करने लगते हैं । अहमदनगर के श्री दामोदर साँवलराम रासने कासार की निम्नलिखित कथा उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है ।

दामू अण्णा

पाठकों को स्मरण होगा कि इन महाशय का प्रसंग छठवें अध्याय में शिरडी के रामनवमी उत्सव के प्रसंग में आ चुका है । ये लगभग सन् १८९५ में शिरडी पधारे थे, जब कि रामनवमी उत्सव का प्रारम्भ ही हुआ था और उसी समय से वे एक ज़रीदार बढ़िया ध्वज इस अवसर पर भेंट करते तथा वहाँ एकत्रित गरीब भिक्षुकों को भोजनादि कराया करते थे ।

दामू अण्णा के सौदे

(१) रुई का सौदा

दामू अण्णा को बम्बई से उनके एक मित्र ने लिखा कि वह उनके साथ साझेदारी में रुई का सौदा करना चाहते हैं, जिसमें लगभग दो लाख रुपयों का लाभ होने की आशा है । सन् १९३६ मं नरसिंह स्वामी को दिये गए एक वक्तव्य में दामू अण्णा ने बतलाया कि रूई के सौदे का यह प्रस्ताव बम्बई के एक दलाल ने उनसे किया था, जो कि साझेदारी से हाथ खींचकर मुझ पर ही सारा भार छोड़ने वाला था । (भक्तों के अनुभव भाग ११, पृष्ठ ७५ के अनुसार) । दलाल ने लिखा था कि धंधा अति उत्तम है और हानि की कोई आशंका नहीं । ऐसे स्वर्णिम अवसर को हाथ से न खोना चाहिए । दामू अण्णा के मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, परन्तु स्वयं कोई निर्णय करने का साहस वे न कर सके । उन्होंने इस विषय में कुछ विचार तो अवश्य कर लिया, परन्तु बाबा के भक्त होने के कारण पूर्ण विवरण सहित एक पत्र शामा को दूसरे ही दिन मिल गया, जिसे दोपहर के समय मस्जिद में जाकर

उन्होंने बाबा के समक्ष रख दिया । शामा से बाबा ने पत्र के सम्बन्ध में पूछताछ की । उत्तर में शामा ने कहा कि, ‘‘अहमदनगर के दामू अण्णा कासार आपसे कुछ आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं ।’’ बाबा ने पूछा कि, ‘‘वह इस पत्र में क्या लिख रहा है और उसने क्या योजना बनाई है ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आकाश को छूना चाहता है । उसे जो कुछ भी भगवत्कृपा से प्राप्त है, वह उससे सन्तुष्ट नहीं है । अच्छा, पत्र पढ़कर सुनाओ ।’’ शामा ने कहा, ‘‘जो कुछ आपने अभी कहा, वही तो पत्र में भी लिखा हुआ है । हे देवा ! आप यहाँ शान्त और स्थिर बैठे रहकर भी भक्तों को उद्विग्न कर देते हैं और जब वे अशान्त हो जाते हैं तो आप उन्हें आकर्षित कर, किसी को प्रत्यक्ष तो किसी को पत्रों द्वारा यहाँ खींच लेते हैं । जब आपको पत्र का आशय विदित ही है तो फिर मुझे पत्र पढ़ने को क्यों विवश कर रहे हैं ?’’ बाबा कहने लगे कि ‘‘शामा ! तुम तो पत्र पढ़ो। मैं तो ऐसे ही अनापशनाप बकता हूँ । मुझ पर कौन विश्वास करता है ?’’ तब शामा ने पत्र पढ़ा और बाबा उसे ध्यानपूर्वक सुनकर चिंतित हो कहने लगे कि, ‘‘मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सेठ (दामू अण्णा) पागल हो गया है । उसे लिख दो कि उसके घर किसी वस्तु का अभाव नहीं है । इसलिये उसे आधी रोटी में ही सन्तोष कर लाखों के चक्कर से दूर ही रहना चाहिए ।’’ शामा ने उत्तर लिखकर भेज दिया, जिसकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक दामू अण्णा कर रहे थे । पत्र पढ़ते ही लाखों रूपयों के लाभ होने की उनकी आशा पर पानी फिर गया । उन्हें उस समय ऐसा विचार आया कि बाबा से परामर्श कर उन्होंने भूल की है । परन्तु शामा ने पत्र में संकेत कर दिया था कि ‘‘देखने और सुनने में फर्क हुआ करता है । इसलिये श्रेयस्कर तो यही होगा कि स्वयं शिरडी आकर बाबा की आज्ञा प्राप्त करो ।’’ बाबा से स्वयं अनुमति लेना उचित समझकर वे शिरडी आए । बाबा के दर्शन कर उन्होंने चरण सेवा की । परन्तु बाबा के सम्मुख सौदे वाली बात करने का साहस वे न कर सके । उन्होंने संकल्प किया कि यदि उन्होंने कृपा कर दी तो इस सौदे में से कुछ लाभांश उन्हें भी अर्पण कर दूँगा । यद्यपि यह विचार दामू अण्णा बड़ी गुप्त रीति से अपने मन में कह रहे थे तो भी त्रिकालदर्शी बाबा से क्या छिपा रह सकता था ? बालक तो मिष्ठान्न माँगता है, परन्तु उसकी माँ उसे कड़वी औषधि देती

है, क्योंकि मिठाई स्वास्थ के लिये हानिकारक होती है और इस कारण वह बालक के कल्याणार्थ उसे समझा-बुझाकर कड़वी औषधि पिला दिया करती है। बाबा एक दयालु माँ के समान थे। वे अपने भक्तों को वर्तमान और भविष्य जानते थे। इसलिये उन्होंने दामू अण्णा के मन की बात जानकर कहा कि, ''बापू ! मैं अपने को इस सांसारिक झंझटो में फँसना नहीं चाहता।'' बाबा की अस्वीकृति जानकर दामू अण्णा ने यह विचार त्याग दिया।

(२) अनाज का सौदा

तब उन्होंने आनाज, गेहूँ, चावल आदि अन्य वस्तुओं का धन्धा आरम्भ करने का विचार किया। बाबा ने इस विचार को भी समझ कर उनसे कहा कि तुम रूपये का ५ सेर खरीदोगे और ७ सेर को बेचोगे। इसलिये उन्हें इस धन्धे का भी विचार त्यागना पड़ा। कुछ समय तक तो अनाजों का भाव चढ़ता ही गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि संभव है, बाबा की भविष्यवाणी सत्य निकले। परन्तु दो-एक मास के पश्चात् ही सब स्थानों में पर्याप्त वृष्टि हुई, जिसके फलस्वरूप भाव अचानक ही गिर गए और जिन लोगों ने अनाज संग्रह कर लिया था, उन्हें यथेष्ट हानि उठानी पड़ी। पर दामू अण्णा इस विपत्ति से बच गए। यह कहना व्यर्थ न होगा कि रुई का सौदा, जो कि उस दलाल ने अन्य व्यापारी की साझेदारी में किया था, उसमें उसे अधिक हानि हुई। बाबा ने उन्हें बड़ी विपत्तियों से बचा लिया है, यह देखकर दामू अण्णा का साईचरणों में विश्वास दृढ़ हो गया और वे जीवनपर्यन्त बाबा के सच्चे भक्त बने रहे।

आम्रलीला

एक बार गोवा के एक मामलतदार ने, जिसका नाम राले था, लगभग ३०० आमों का एक पार्सल शामा के नाम शिरडी भेजा। पार्सल खोलने पर प्रायः सभी आम अच्छे निकले। भक्तों में इनके वितरण का कार्य शामा को सौंपा गया। उनमें से बाबा ने चार आम दामू अण्णा के लिये पृथक् निकाल कर रख लिये। दामू अण्णा की तीन स्त्रियाँ थीं। परन्तु अपने दिये वक्तव्य में उन्होंने बतलाया कि उनकी केवल दो ही स्त्रियाँ थीं। वे सन्तानहीन थे, इस कारण

उन्होंने अनेक ज्योतिषियों से इसका समाधान कराया और स्वयं भी ज्योतिष शास्त्र थोड़ा सा अध्ययन कर ज्ञात कर लिया कि जन्म कुण्डली में एक पापग्रह के स्थित होने के कारण इस जीवन में उन्हें सन्तान का मुख देखने का कोई योग नहीं है। परन्तु बाबा के प्रति तो उनकी अटल श्रद्धा थी। पार्सल मिलने के दो घण्टे पश्चात् ही वे पूजनार्थ मस्जिद में आए। उन्हें देख कर बाबा कहने लगे कि लोग आमों के लिये चक्कर काट रहे हैं, परन्तु ये दो दामू के हैं। जिसके हैं, उन्हीं को खाने दो और मरने दो। इन शब्दों को सुन दामू अण्णा के हृदय पर वज्राघात सा हुआ, परन्तु म्हालसापति (शिरडी के एक भक्त) ने उन्हें समझाया कि इस ''मृत्यु'' शब्द का अर्थ अहंकार के विनाश से है और बाबा के चरणों की कृपा से तो वह आशीर्वादस्वरूप है, तब वे आम खाने को तैयार हो गए। इस पर बाबा ने कहा कि, ''वे तुम न खाओ, उन्हें अपनी छोटी स्त्री को खाने दो। इन आमों के प्रभाव से उसे चार पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी।'' यह आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने वे आम ले जाकर अपनी छोटी स्त्री को दिये। धन्य है श्री साईबाबा की लीला, जिन्होंने भाग्य-विधाता पलट कर उन्हें सन्तान-सुख दिया। बाबा की स्वेच्छा से दिये वचन सत्य हुये, ज्योतिषियों के नही।

बाबा के जीवन काल में उनके शब्दों ने लोगों में अधिक विश्वास और महिमा स्थापित की, परन्तु महान् आश्चर्य हैं कि उनके समाधिस्थ होने के उपरांत भी उनका प्रभाव पूर्ववत् ही है। बाबा ने कहा कि, **''मुझ पर पूर्ण विश्वास रखो। यद्यपि मैं देहत्याग भी कर दूँगा, परन्तु फिर भी मेरी अस्थियाँ आशा और विश्वास का संचार करती रहेंगी। केवल मैं ही नहीं, मेरी समाधि भी वार्तालाप करेगी, चलेगी, फिरेगी और उन्हें आशा का सन्देंश पहुँचाती रहेगी, जो अनन्य भाव से मेरे शरणागत होंगे। निराश न होना कि मैं तुमसे विदा हो जाऊँगा। तुम सदैव मेरी अस्थियों को भक्तों के कल्याणार्थ ही चिंतित पाओगे। यदि मेरा निरन्तर स्मरण और मुझ पर दृढ़ विश्वास रखोगे तो तुम्हें अधिक लाभ होगा।''**

प्रार्थना

एक प्रार्थना कर हेमाडपंत यह अध्याय समाप्त करते हैं ।

''हे साई सद्‌गुरु ! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आपके अभय चरणों की हमें कभी विस्मृति न हो । आपके श्री चरण कभी भी हमारी दृष्टि से ओझल न हों । हम इस जन्म-मृत्यु के चक्र से इस संसार में अधिक दुःखी हैं । अब दया कर इस चक्र से हमारा शीघ्र उद्धार कर दो । हमारी इन्द्रियाँ, जो विषय-पदार्थों की ओर आकर्षित हो रही हैं, उनकी बाह्य प्रवृत्ति से रक्षा कर, उन्हें अंतर्मुखी बना कर हमें आत्म-दर्शन के योग्य बना दो । जब तक हमारा, इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति और चंचल मन पर अंकुश नही है, तब तक आत्मसाक्षात्कार की हमें कोई आशा नहीं है । हमारे पुत्र और मित्र, कोई भी अन्त में हमारे काम न आएंगे । हे साई ! हमारे तो एकमात्र तुम्हीं हो, जो हमें मोक्ष और आनन्द प्रदान करोगे । हे प्रभु ! हमारी तर्कवितर्क तथा अन्य कुप्रवृत्तियों को नष्ट कर दो । हमारी जिह्वा सदैव तुम्हारे नामस्मरण का स्वाद लेती रहे । हे साई ! हमारे अच्छ बुरे सब प्रकार के विचारों को नष्ट कर दो । हे प्रभु ! कुछ ऐसा कर दो कि जिससे हमें अपने शरीर और गृह में आसक्ति न रहे । हमारा अहंकार सर्वथा निर्मूल हो जाए और हमें एकमात्र तुम्हारे ही नाम की स्मृति बनी रहे तथा शेष सबका विस्मरण हो जाए । हमारे मन की अशांति को दूर कर, उसे स्थिर और शान्त करो । हे साई ! यदि तुम हमारे हाथ अपने हाथ में ले लोगे तो अज्ञानरूपी रात्रि का आवरण शीघ्र दूर हो जाएगा और हम तुम्हारे ज्ञान-प्रकाश में सुखपूर्वक विचरण करने लगेंगे । यह जो तुम्हारा लीलामृत पान करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ तथा जिसने हमे अखण्ड निद्रा से जागृत कर दिया है, यह तुम्हारी ही कृपा और हमारे गत जन्मों के शुभ कर्मों का ही फल है।''

विशेष :- इस सम्बन्ध में श्री दामू अण्णा के उपरोक्त कथन को उद्धृत किया जाता है, जो ध्यान देने योग्य है - ''एक समय जब मैं अन्य लोगों सहित बाबा के श्रीचरणों के समीप बैठा था तो मेरे मन में दो प्रश्न उठे ।'' उन्होंने

उनका उत्तर इस प्रकार दिया -(१)जो जनसमुदाय श्री साई के दर्शनार्थ शिरडी आता है, क्या उन सभी को लाभ पहुँचता है? इसका उन्होंने उत्तर दिया कि ''बौर लगे आम वृक्ष की ओर देखो । यदि सभी बौर फल बन जाएँ तो आमों की गणना भी न हो सकेगी । परन्तु क्या ऐसा होता है ? बहुत-से बौर झर कर गिर जाते हैं । कुछ फले और बढ़े भी तो आँधी के झकोरों से गिरकर नष्ट हो जाते हैं और उनमें से कुछ ही शेष रह जाते हैं ।'' (२) दूसरा प्रश्न मेरे स्वयं के विषय में था । यदि बाबा ने निर्वाण ले लिया तो मैं बिल्कुल ही निराश्रित हो जाऊँगा, तब मेरा क्या होगा? इसका बाबा ने उत्तर दिया कि ''जब और जहाँ भी तुम मेरा स्मरण करोगे, मैं तुम्हारें साथ ही रहुँगा ।'' इन वचनों को उन्होंने सन् १९१८ के पूर्व भी निभाया और सन् १९१८ के पश्चात् आज भी निभा रहे हैं । वे अभी भी मेरे ही साथ रहकर मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं । यह घटना लगभग सन् १९१०-११ की हैं । ''उसी समय मेरा भाई मुझसे पृथक् हुआ और मेरी बहन की मृत्यु हो गई । मेरे घर में चोरी हुई और पुलिस-जाँच पड़ताल कर रही थी । इन्हीं सब घटनाओं ने मुझे पागल-सा बना दिया था ।''

''मेरी बहन का स्वर्गवास होने के कारण मेरे दुःख का पारावार न रहा और जब मैं बाबा की शरण गया तो उन्होंने अपने मधुर उपदेशों से मुझे सान्त्वना देकर अप्पा कुलकर्णी के घर पूरनपोली खिलाई तथा मेरे मस्तक पर चन्दन लगाया ।''

''जब मेरे घर चोरी हुई और मेरे ही एक तीसवर्षीय मित्र ने मेरी स्त्री के गहनों का सन्दूक, जिसमें मंगलसूत्र और नथ आदि थे, चुरा लिये, तब मैंने बाबा के चित्र के समक्ष रुदन किया और उसके दूसरे ही दिन वह व्यक्ति स्वयं गहनों का सन्दूक मुझे लौटाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा।''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२६

(१) भक्त पन्त
(२) हरिश्चंद्र पितले और
(३) गोपाल आंबडेकर की कथाएँ।

इस सृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म, चेतन और जड़ आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब एक ब्रह्म है और इसी एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म को ही हम भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते तथा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं । जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई एक रस्सी या हार को हम भ्रमवश सर्प समझ लेते हैं, उसी प्रकार हम समस्त पदार्थों के केवल बाह्य स्वरूप को ही देखते हैं, न कि उनके सत्य स्वरूप को । एकमात्र सद्गुरु ही हमारी दृष्टि से माया का आवरण दूर कर हमें वस्तुओं के सत्यस्वरूप का यथार्थ में दर्शन करा देने में समर्थ हैं । इसलिये आओ, हम श्री सद्गुरु साईमहाराज की उपासना कर उनसे सत्य का दर्शन कराने की प्रार्थना करें, जो कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं ।

आन्तरिक पूजन

श्री हेमाडपंत उपासना की एक सर्वथा नविन पद्धति बताते हैं । वे कहते हैं कि सद्गुरु के पादप्रक्षालन के निमित्त आनन्द-अश्रु के उष्ण जल का प्रयोग करो । उन्हें सत्यप्रेमरूपी चन्दन का लेप कर, दृढ़विश्वासरूपी वस्त्र पहनाओ तथा कोमल और एकाग्र चित्तरूपी फल उन्हें अर्पित करो । भावरूपी बुक्का उनके श्री मस्तक पर लगा, भक्ति की कफनी बाँध, अपना मस्तक उनके चरणों पर रखो । इस प्रकार श्री साई को समस्त आभूषणों से विभूषित कर, उन्हें अपना सर्वस्व निछावर कर दो । उष्णता दूर करने के लिये भाव की सदा चँवर डुलाओ । इस प्रकार आनन्ददायक पूजन कर उनसे प्रार्थना करो -

''हे प्रभु साई ! हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बना दो। सत्य और असत्य का विवेक दो तथा सांसारिक पदार्थों से आसक्ति दूर कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करो। हम अपनी काया और प्राण आपके श्री चरणों में अर्पित करते हैं। हे प्रभु साई ! मेरे नेत्रों को तुम अपने नेत्र बना लो, ताकि हमें सुख और दुःख का अनुभव ही न हो। हे साई ! मेरे शरीर और मन को तुम अपनी इच्छानुकूल चलने दो तथा मेरे चंचल मन को अपने चरणों की शीतल छाया में विश्राम करने दो।''

अब हम इस अध्याय की कथाओं की ओर आते हैं।

भक्त पंत

एक समय एक भक्त, जिनका नाम पंत था और एक अन्य सद्‌गुरु के शिष्य थे, उन्हें शिरडी पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी शिरडी आने की इच्छा तो न थी, परन्तु ''मेरे मन कुछ और है, विधाता के कुछ और '' वाली कहावत चरितार्थ हुई। वे रेल (पश्चिम रेल्वे) द्वारा यात्रा कर रहे थे, जहाँ उनके बहुत से मित्र व सम्बन्धियों से अचानक ही भेंट हो गई, जो कि शिरडी यात्रा को ही जा रहे थे। उन लोगों ने उनसे शिरडी तक साथ-साथ चलने का प्रस्ताव किया। पंत यह प्रस्ताव अस्वीकार न कर सके। तब वे सब लोग बम्बई में उतरे और पन्त विरार में उतर अपने सद्‌गुरु से शिरडी प्रस्थान करने की अनुमति लेकर तथा आवश्यक खर्च आदि का प्रबन्ध कर, सब लोगों के साथ रवाना हो गए। वे प्रातःकाल वहाँ पहुँच गए और लगभग ११ बजे मस्जिद को गए। वहाँ पूजनार्थ भक्तों का एकत्रित समुदाय देख सब को अति प्रसन्नता हुई, परन्तु पन्त को अचानक ही मूर्च्छा आ गई ओर वे बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। तब सब लोग भयभीत होकर उन्हें स्वस्थ करने के समस्त उपचार करने लगे। बाबा की कृपा से और मस्तक पर जल के छींटे देने से वे स्वस्थ हो गए और ऐसे उठ बैठे, जैसे कि कोई नींद से जगा हो। त्रिकालज्ञ बाबा ने यह सब जानकर कि यह अन्य गुरु का शिष्य है, उन्हें अभय-दान देकर उनके गुरु में ही उनके विश्वास को दृढ़ करते हुए कहा कि, ''कैसे भी आओ, परन्तु भूलो नहीं, अपने ही स्तंभ को दृढ़तापूर्वक पकड़कर सदैव स्थिर हो उनसे अभिन्नता प्राप्त करो।'' पन्त तुरन्त इन शब्दों का आशय

समझ गए और उन्हे उसी समय अपने सद्गुरु की स्मृति हो आई । उन्हें बाबा के इस अनुग्रह की जीवन भर स्मृति बनी रही ।

श्री हरिश्चंद्र पितले

बम्बई में एक हरिश्चंद्र पितले नामक सद्गृहस्थ थे । उनका पुत्र मिर्गी रोग से पीड़ित था। उन्होंने अनेक प्रकार की देशी व विदेशी चिकित्साएँ कराईं, परन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ । अब केवल यही उपाय शेष रह गया था कि किसी सन्त के चरण-कमलों की शरण ली जाए । १५ वें अध्याय में बतलाया जा चुका है कि श्री दासगणु के सुमधुर कीर्तन से श्री साईबाबा की कीर्ति बम्बई में अधिक फैल चुकी थी । पितले ने भी सन् १९१० में उनका कीर्तन सुना और उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री साईबाबा के केवल कर-स्पर्श तथा दृष्टिमात्र से ही असाध्य रोग समूल नष्ट हो जाते हैं । तब उनके मन में भी श्री साईबाबा के शुभ दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई । यात्रा का प्रबन्ध कर भेंट देने हेतु फलों की टोकरी लेकर पत्नी और बच्चों सहित वे शिरडी पधारे। मस्जिद पहुँचकर उन्होंने चरण-वंदना की तथा अपने रोगी पुत्र को उनके श्री-चरणों में डाल दिया । बाबा की दृष्टि उस पर पड़ते ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया । बच्चे ने आँखे फेर दी और बेसुध हो कर गिर पड़ा । उसके मुँह से झाग निकलने लगी तथा शरीर पसीने से भीग गया और ऐसी आशंका होने लगी कि उसके प्राण निकलने ही वाले हैं । यह देखकर उसके माता-पिता अत्यंत निराश होकर घबराने लगे । बच्चे को बहुधा थोड़ी मूर्च्छा तो अवश्य आ जाया करती थी, परन्तु यह मूर्च्छा दीर्घ काल तक रही । माता की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह दुःखग्रसित हो आर्तनाद करने लगी कि, ''मैं ऐसी स्थिति में हूँ, जैसे कि एक व्यक्ति, चोरों के डर से भाग कर किसी घर में प्रविष्ट हो जाए और वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़े।'' तब बाबा ने सान्त्वना देते हुये कहा कि, ''इस प्रकार प्रलाप न कर धैर्य धारण करो । बच्चे को अपने निवासस्थान पर ले जाओ । वह आधा घण्टे के पश्चात् होश में आ जाएगा ।'' तब उन्होंने बाबा के आदेश का तुरन्त पालन किया । बाबा के वचन सत्य निकले । जैसे ही उसे वाड़े में लाये कि बच्चा स्वस्थ हो गया और पितले

परिवार पति, पत्नी व अन्य सब लोगों को महान् हर्ष हुआ और उनका सन्देह दूर हो गया। श्री पितले अपनी धर्मपत्नी सहित बाबा के दर्शनों को आए और अति विनम्र होकर आदरपूर्वक चरण-वन्दना कर पादसेवन करने लगे। मन ही मन वे बाबा को धन्यवाद दे रहे थे। तब बाबा ने मुस्कराकर कहा कि, ''क्या तुम्हारे समस्त विचार और शंकाएँ मिट गईं ? जिन्हें विश्वास और धैर्य है, उनकी रक्षा श्री हरि अवश्य करेंगे।'' श्री पितले एक धनाढ्य व्यक्ति थे, इसलिये उन्होंने अधिक मात्रा में मिठाई बाँटी और उत्तम फल तथा पान-बीड़े बाबा को भेंट किये। श्रीमती पितले सात्विक वृत्ति की महिला थीं। वे एक स्थान पर बैठकर बाबा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा करती थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू गिरते थे। उनका मृदु और सरल स्वभाव देखकर बाबा अति प्रसन्न हुए। ईश्वर के समान ही सन्त भी भक्तों के अधीन है। जो उनकी शरण में जाकर उनका अनन्य भाव से पूजन करते हैं, उनकी रक्षा सन्त करते हैं। शिरडी में कुछ दिन सुखपूर्वक व्यतीत कर पितले परिवार ने बाबा के समीप मस्जिद में जाकर और चरण-वन्दना कर शिरडी से प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उन्हें उदी देकर आशीर्वाद दिया। पितले को पास बुलाकर वे कहने लगे ''बापू ! पहले मैंने तुम्हें दो रुपये दिये थे और अब मैं तुम्हें तीन रुपये देता हूँ। इन्हें अपने पूजा-गृह में रखकर नित्य इनका पूजन करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।'' श्री पितले ने उन्हें प्रसादस्वरूप ग्रहण कर, बाबा को पुनः साष्टांग प्रणाम किया तथा आशीष के लिए प्रार्थना की। उन्हें ये विचार भी आया कि प्रथम अवसर होने के कारण मैं इसका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ कि दो रुपये मुझे पहले कब दिये थे ?

वे इस बात का स्पष्टीकरण चाहते थे, परन्तु बाबा मौन ही रहे। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने अपनी वृद्ध माता को शिरडी की विस्तृत वार्ता सुनाई और उन दो रुपयों की समस्या भी उनसे कही। उनकी माता को भी पहले-पहले तो कुछ समझ में न आया, परन्तु पूरी तरह विचार करने पर उन्हें एक पुरानी घटना की स्मृति हो आई, जिसने यह समस्या हल कर दी। उनकी वृद्ध माता कहने लगीं कि, ''जिस प्रकार तुम अपने पुत्र को लेकर श्री साईबाबा के

दर्शनार्थ गए थे, ठीक उसी प्रकार तुम्हें लेकर तुम्हारे पिता अनेक वर्षों पहले अक्कलकोट महाराज के दर्शनार्थ गए थे। महाराज पूर्ण सिद्ध, योगी, त्रिकालज्ञ और बड़े उदार थे। तुम्हारे पिता परम भक्त थे। इस कारण उनकी पूजा स्वीकार हुई। तब महाराज ने उन्हें पूजनार्थ दो रुपये दिये थे, जिनकी उन्होंने जीवनपर्यन्त पूजा की। उनके पश्चात् उनकी पूजा यथाविधि न हो सकी और वे रुपये खो गए। कुछ दिनों के उपरान्त उनकी पूर्ण विस्मृति भी हो गई। तुम्हारा सौभाग्य है, जो श्री अक्कलकोट महाराज ने साईरूप में तुम्हें अपने कर्तव्यों और पूजन की स्मृति कराकर आपत्तियों से मुक्त कर दिया है। अब भविष्य में जागरूक रहकर समस्त शंकाएँ और सोच-विचार छोड़कर अपने पूर्वजों को स्मरण कर रिवाजों का अनुसरण कर, उत्तम प्रकार का आचरण अपनाओ। अपने कुलदेव तथा इन रुपयों की पूजा कर उनके यथार्थ स्वरूप को समझो और सन्तों का आशीर्वाद ग्रहण करने में गर्व मानो। श्री साई समर्थ ने दया कर तुम्हारे हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया है और अब तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसकी वृद्धि करो।'' माता के मधुर वचनामृत का पान कर श्री पितले को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्हें बाबा की सर्वकालज्ञता विदित हो गई और उनके श्री दर्शन का भी महत्व ज्ञात हो गया। इसके पश्चात् वे अपने व्यवहार में अधिक सावधान हो गए।

श्री आम्बडेकर

पूने के श्री गोपाल नारायण आम्बडेकर बाबा के परम भक्तों में से एक थे, जो ठाणे जिला और जव्हार स्टेट के आबकारी विभाग में दस वर्षों से कार्य करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्ति होने पर उन्होंने अन्य नौकरी ढूँढी, परन्तु वे सफल न हुए। तब उन्हें दुर्भाग्य ने चारों ओर से घेर लिया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सात वर्ष व्यतीत किये। वे प्रति वर्ष शिरडी जाते और अपनी दुःखदायी कथा-वार्ता बाबा को सुनाया करते थे। सन् १९१६ में तो उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। तब उन्होंने शिरडी जाकर आत्महत्या करने की ठानी। इसलिए वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शिरडी आए और वहाँ दो मास

तक ठहरे । एक रात्रि को दीक्षितवाड़े के सामने एक बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे उन्होंने कुएँ मे कुदकर प्राणान्त करने का निश्चय किया । वहीं समीप ही एक भोजनालय के मालिक श्री सगुण मेरु नायक ठीक उसी समय बाहर आकर उनसे इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि, ''क्या आपने कभी श्री अक्कलकोट महाराज की जीवनी पढ़ी?'' सगुण से पुस्तक लेकर उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ दिया । पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वे एक ऐसी कथा पर पहुँचे, जो इस प्रकार थी - श्री अक्कलकोट महाराज के जीवन काल में एक व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित था । जब वह किसी प्रकार भी कष्ट सह न सका तो वह बिल्कुल निराश हो गया और रात्रि को कुएँ में कूद पड़ा । तत्क्षण ही महाराज वहाँ पहुँच गए और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उसे बाहर निकाला । वे उसे समझाने लगे कि, ''**तुम्हें अपने शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना चाहिए । यदि भोग अपूर्ण रह गया तो पुनर्जन्म धारण करना पड़ेगा, इसलिये मृत्यु से यह श्रेयस्कर है कि कुछ काल तक उन्हें सहन कर पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त कर सदैव के लिये मुक्त हो जाओ ।**''

यह सामयिक और उपयुक्त कथा पढ़कर आम्बडेकर को महान् आश्चर्य हुआ और वे द्रवित हो गए ।

यदि इस कथा द्वारा उन्हें बाबा का संकेत प्राप्त न होता तो अभी तक उनका प्राणान्त हो ही गया होता । बाबा की व्यापकता और दयालुता देखकर उनका विश्वास दृढ़ हो गया और वे बाबा के परम भक्त बन गए । उनके पिता श्री अक्कलकोट महाराज के शिष्य थे और बाबा की इच्छा भी उन्हीं के पद-चिन्हों का अनुसरण कराने की थी । बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अब उनका भाग्य चमक उठा । उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर उसमें बहुत उन्नति कर ली और बहुत-सा धन अर्जित करके अपना शेष जीवन सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत किया ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२७
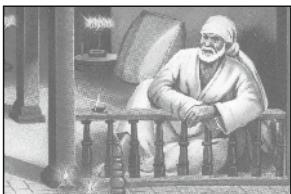
भागवत और विष्णुसहस्त्रनाम प्रदान कर अनुग्रहीत करना, गीता रहस्य, दादासाहेब खापर्डे।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्री साईबाबा ने किस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों को करस्पर्श कर अपने भक्तों को पारायण के लिये देकर अनुग्रहीत किया तथा और भी अन्य घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भ

जन-साधारण का ऐसा विश्वास है कि समुद्र में स्नान कर लेने ही समस्त तीर्थों तथा पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेने मात्र से तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) और परब्रह्म को नमन करने का श्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है। श्री सच्चिदानंद साईमहाराज तो भक्तों के लिये कल्पतरू, दया के सागर और आत्मानुभूति देने वाले हैं। हे साई ! तुम अपनी कथाओं के श्रवण में मेरी श्रद्धा जागृत कर दो। घनघोर वर्षा ऋतु में जिस प्रकार चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की केवल एक बूँद का पान कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपनी कथाओं के सारसिन्धु से प्रगटित एक जल कण का सहस्त्रांश दे दो, जिससे पाठकों और श्रोताओं के ह्वदय तृप्त होकर प्रसन्नता से भरपूर हो जाएँ। शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगे, आँसुओं से नेत्र परिपूर्ण हो जाएँ, प्राण स्थिरता पाकर चित्त एकाग्र हो जाए और पल-पल पर रोमांच हो उठे, ऐसा सात्विक भाव सभी में जागृत कर दो। पारस्परिक वैमनस्य तथा वर्ग-अपवर्ग का भेद-भाव नष्ट कर दो, जिससे वे तुम्हारी भक्ति में सिसकें, बिलखें और कम्पित हो उठें। यदि ये सब भाव उत्पन्न होने लगें तो इसे गुरु-कृपा के लक्षण जानो। इन भावों को अन्तःकरण में उदित देखकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर

तुम्हें आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करेंगे । **माया से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय अनन्य भाव से केवल श्री साईबाबा की शरण जाना ही है । वेद-वेदान्त भी मायारूपी सागर से पार नहीं उतार सकते । यह कार्य तो केवल सद्‌गुरु द्वारा ही संभव है ।** समस्त प्राणियों और भूतों में ईश्वर-दर्शन करने के योग्य बनाने की क्षमता केवल उन्हीं में है ।

पवित्र ग्रन्थों का प्रदान

गत अध्याय में बाबा की उपदेश-शैली की नवीनता ज्ञात हो चुकी है । इस अध्याय में उसके केवल एक उदाहरण का ही वर्णन करेंगे । भक्तों को जिस ग्रन्थविशेष का पारायण करना होता था, उसे वे बाबा के करकमलों में भेंट कर देते थे और यदि बाबा उसे अपने करकमलों से स्पर्श कर लौटा देते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे । उनकी ऐसी भावना हो जाती थी कि ऐसे ग्रन्थ का यदि नित्य पठन किया जाएगा तो बाबा सदैव उनके साथ ही होंगे । एक बार काका महाजनी श्री एकनाथी भागवत लेकर शिरडी आए । शामा ने यह ग्रन्थ अध्ययन के लिये उनसे ले लिया और उसे लिए हुए वे मस्जिद में पहुँचे । तब बाबा ने वह ग्रन्थ शामा से ले लिया और उन्होंने उसे स्पर्श कर कुछ विशेष पृष्ठों को देखकर उसे सँभाल कर रखने की आज्ञा देकर वापस लौटा दिया । शामा ने उन्हें बताया कि यह ग्रन्थ तो काकासाहेब का है और उन्हें इसे वापस लौटाना है । तब बाबा कहने लगे कि, ''नहीं, नहीं, यह ग्रन्थ तो मैं तुम्हें दे रहा हूँ । तुम इसे सावधानी से अपने पास रखो। यह तुम्हें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा ।'' कुछ दिनों के पश्चात् काका महाजनी पुनः श्री एकनाथी भागवत की दूसरी प्रत लेकर आए और बाबा के करकमलों में भेंट कर दी, जिसे बाबा ने प्रसाद-स्वरूप लौटाकर उन्हें भी उसे सावधानी से सँभाल कर रखने की आज्ञा दी । साथ ही बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह तुम्हें उत्तम स्थिति में पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा । काका ने उन्हें प्रणाम कर उसे स्वीकार कर लिया ।

शामा और विष्णुसहस्त्रनाम

शामा बाबा के अंतरंग भक्त के थे । इस कारण बाबा उन्हें ''विष्णुसहस्त्रानाम'' प्रसादरूप में देने की कृपा करना चाहते थे । तभी एक रामदासी आकर कुछ दिन शिरडी में ठहरा। वह नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठता और हाथ मुँह धोने के पश्चात् स्नान कर भगुवा वस्त्र धारण करता तथा शरीर पर भस्म लगाकर विष्णुसहस्त्रनाम का जाप किया करता था और बहुधा इन्हीं ग्रन्थों को ही पढ़ा करता था । कुछ दिनों के पश्चात् बाबा ने शामा को भी ''विष्णुसहस्त्रनाम'' से परिचित कराने का विचार कर रामदासी को अपने समीप बुलाकर उससे कहा कि मेरे उदर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है और जब तक मैं सोनामुखी का सेवन न करूँगा, तब तक मेरा कष्ट दूर न होगा । तब रामदासी ने अपना पाठ स्थगित कर दिया और वह औषधि लाने बाजार चला गया । उसी समय बाबा अपने आसन से उठे और जहाँ वह पाठ किया करता था, वहाँ जाकर उन्होंने विष्णुसहस्त्रनाम की वह पुस्तिका उठाई और पुनः अपने आसन पर विराजमान हो कर शामा से कहने लगे कि, 'यह पुस्तक अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली है । इसलिए मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ, ताकि तुम इसका नित्य पठन करो । एक बार जब मैं बहुत रूग्ण था तो मेरा ह्दय धड़कने लगा । मेरे प्राणपखेरू उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंने इस सद्ग्रन्थ को अपने ह्दय पर रख लिया । कैसा सुख पहुँचाया इसने ? उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ मानो अल्लाह ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की । इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ । इसे थोड़ा धीरे-धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा ।'' तब शामा कहने लगे कि, ''मुझे इस ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका स्वामी रामदासी अतिक्रोधी व्यक्ति है, जो व्यर्थ ही अभी आकर लड़ने को तैयार हो जाएगा । अल्पशिक्षित होने के नाते, मै संस्कृत भाषा में लिखित इस ग्रन्थ को पढ़ने में भी असमर्थ हूँ । शामा की धारणा थी कि बाबा मेरे और रामदासी के बीच मनमुटाव करवाना चाहते हैं, इसलिये ही उन्होंने

यह नाटक रचा है । बाबा का विचार उनके प्रति क्या था, यह उनकी समझ में न आया। बाबा ''येन केन प्रकारेण'' विष्णुसहस्त्रनाम उसके कंठ में उतार देना चाहते थे । वे तो अपने एक अल्पशिक्षित अंतरंग भक्त को सांसारिक दुःखों से मुक्त कर देना चाहते थे । **ईश्वर-नाम के जाप का महत्व तो सभी को विदित ही है, जो हमें पापों से बचाकर कुवृत्तियों से हमारी रक्षा कर, जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देता है । यह आत्मशुद्धि के लिये एक उत्तम साधन है, जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न किसी नियम के बन्धन की । इससे सुगम और प्रभावकारी साधन अन्य कोई नहीं ।** बाबा की इच्छा तो शामा से यह साधना कराने की थी, परन्तु शामा ऐसा न चाहते थे, इसीलिये बाबा ने उनपर दबाव डाला। ऐसा बहुधा सुनने में आया है कि बहुत पहले श्री एकनाथ महाराज ने भी अपने एक पड़ोसी ब्राह्मण से विष्णुसहस्त्रनाम का जाप करने के लिये आग्रह कर उसकी रक्षा की थी । विष्णुसहस्त्रनाम का जाप चित्तशुद्धि के लिये एक श्रेष्ठ तथा सरल मार्ग है । इसीलिये बाबा ने शामा को अनुरोधपूर्वक इसके जाप में प्रवृत्त किया । रामदासी बाजार से तुरन्त सोनामुखी लेकर लौट आया । अण्णा चिंचणीकर, जो वहीं उपस्थित थे, प्रायः पूरे ''नारद मुनि'' ही थे और उन्होंने उक्त घटना का सम्पूर्ण वृत्तांत रामदासी को बता दिया ।

रामदासी क्रोधावेश में आकर शामा की ओर लपका और कहने लगा कि, ''यह तुम्हारा ही कार्य है, जो तुमने बाबा के द्वारा मुझे उदर पीड़ा बहाने औषधि लेने को भेजा । यदि तुमने पुस्तक न लौटाई तो मैं अपना सिर तोड़ दूँगा ।'' शामा ने उसे शान्तिपूर्वक समझाया, परन्तु उनका कहना व्यर्थ ही हुआ । तब बाबा प्रेमपूर्वक बोले कि, ''अरे रामदास, यह क्या बात है ? क्यों उपद्रव कर रहे हो ? क्या शामा अपना बालक नहीं है ? तुम उसे व्यर्थ क्यों झगड़ा करते हो। क्या तुम नम्र और मृदुल वाणी नहीं बोल सकते ? तुम नित्य इन पवित्र ग्रन्थों का पाठ किया करते हो और फिर भी तुम्हारा चित्त अशुद्ध ही है ? जब तुम्हारी इच्छाएँ ही तुम्हारे वश में नही हैं तो तुम रामदासी कैसे ? तुम्हें

तो समस्त वस्तुओं से अनासक्त (वैराग्य) होना चाहिए । कैसी विचित्र बात है कि तुम्हें इस पुस्तक पर इतना अधिक मोह है ? सच्चे रामदासी को तो ममता त्याग कर समदर्शी होना चाहिए । तुम तो अभी बालक शामा से केवल एक छोटी सी पुस्तक के लिये झगड़ा कर रहे थे । जाओ, अपने आसन पर बैठो । पैंसो से पुस्तकें तो अनेक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मनुष्य नहीं । उत्तम विचारक बनकर विवेकशील होओ । पुस्तक का मूल्य ही क्या है और उससे शामा को क्या प्रयोजन ? मैंने स्वयं उठाकर वह पुस्तक उसे दी थी, यह सोचकर कि तुम्हें तो यह पुस्तक पूर्णतः कंठस्थ है । शामा को इसके पठन से कुछ लाभ पहुँचे, इसलिये मैंने उसे दे दी ।'' बाबा के ये शब्द कितने मृदु और मार्मिक तथा अमृततुल्य हैं । इनका प्रभाव रामदासी पर पड़ा। वह चुप हो गया तथा फिर शामा से बोला कि मैं इसके बदले में पंचरत्नी गीता की एक प्रति स्वीकार कर लूँगा । तब शामा भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि ''एक ही क्यों, मैं तो तुम्हें उसके बदले में १० प्रतियाँ देने को तैयार हूँ ।''

इस प्रकार यह विवाद तो शान्त हो गया, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि रामदासी ने पंचरत्नी गीता के लिये - एक ऐसी पुस्तक जिसका उसे कभी ध्यान भी न आया था, इतना आग्रह क्यों किया और जो मस्जिद में हर दिन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करता हो, वह बाबा के समक्ष ही इतना उत्पात करने पर क्यों उतारू हो गया ? हम नहीं जानते कि इस दोष का निराकरण कैसे करें और किसे दोषी ठहरावें ? हम तो केवल इतना ही जाने सके हैं कि यदि इस प्रणाली का अनुसरण न किया गया होता तो विषय का महत्व और ईश्वर नाम की महिमा तथा शामा को विष्णुसहस्त्रनाम के पठन का शुभ अवसर ही प्राप्त न होता । इससे यही प्रतीत होता है कि बाबा के उपदेश की शैली और उसकी क्रिया अद्वितीय है । शामा ने धीरे-धीरे इस ग्रन्थ का इतना अध्ययन कर लिया और उन्हें इस विषय का इतना ज्ञान हो गया कि वह श्रीमान् बूटीसाहेब के दामाद-प्रोफेसर जी.जी.नारके, एम.ए. (इंजीनियरिंग कालेज, पूना) को भी उसका यथार्थ अर्थ समझाने में पूर्ण सफल हुए ।

गीता रहस्य

ब्रह्मविद्या (अध्यात्म) का जो भक्त अध्ययन करते, उन्हें बाबा सदैव प्रोत्साहित करते थे। इसका एक उदाहरण है कि एक समय बापूसाहेब जोग का एक पार्सल आया, जिसमें श्री लोकमान्य तिलक कृत गीता-भाष्य की एक प्रति थी, जिसे काँख में दबाये हुये वे मस्जिद में आए। जब वे चरण-वन्दना के लिये झुके तो वह पार्सल बाबा के श्री-चरणों पर गिर पड़ा। तब बाबा उनसे पूछने लगे कि इसमें क्या है ? श्री जोग ने तत्काल ही पार्सल से वह पुस्तक निकालकर बाबा के कर-कमलों में रख दी। बाबा ने थोड़ी देर उसके कुछ पृष्ठ देखकर जेब से एक रुपया निकाला और उसे पुस्तक पर रखकर जोग को लौटा दिया और कहने लगे कि, ''इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करत रहो, इससे तुम्हारा कल्याणा होगा।''

श्रीमान् और श्रीमती खापर्डे

एक बार श्री दादासाहेब खापर्डे सकुटुम्ब शिरडी आए और कुछ मास वहीं ठहरे। उनके ठहरने के नित्य कार्यक्रम का वर्णन श्री साईलीला पत्रिका के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ है। दादा कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे एक धनाढ्य और अमरावती (बरार) के सुप्रसिद्ध वकील तथा केन्द्रीय धारासभा (दिल्ली) के सदस्य थे। वे विद्वान् और प्रवीण वक्ता भी थे। इतने गुणवान् होते हुए भी उन्हें बाबा के समक्ष मुँह खोलने का साहस न होता था। अधिकांश भक्तगण तो बाबा से हर समय अपनी शंका का समाधान कर लिया करते थे। केवल तीन व्यक्ति खापर्डे, नूलकर और बूटी ही ऐसे थे, जो सदैव मौन धारण किये रहते तथा अति विनम्र और उत्तम प्रकृति के व्यक्ति थे। दादासाहेब, विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित पंचदशी नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ, जिसमें अद्वैतवेदान्त का दर्शन है, उसका विवरण दूसरों को तो समझाया करते थे, परन्तु जब वे बाबा के समीप मस्जिद में आए तो वे एक शब्द का भी उच्चारण न कर सके। यथार्थ में कोई व्यक्ति, चाहे वह जितना वेदवेदान्तों में पारंगत क्यों न हो, परन्तु ब्रह्मपद को पहुँचे हुए व्यक्ति के समक्ष उसका शुष्क ज्ञान

प्रकाश नहीं दे सकता । दादा चार मास तथा उनकी पत्नी सात मास वहाँ ठहरीं । वे दोनो अपने शिरडी-प्रवास से अत्यन्त प्रसन्न थे । श्रीमती खापर्डे श्रद्धालु तथा पूर्ण भक्त थीं, इसलिये उनका साई चरणों में अत्यन्त प्रेम था । प्रतिदिन दोपहर को वे स्वयं नैवेद्य लेकर मस्जिद को जातीं और जब बाबा उसे ग्रहण कर लेते, तभी वे लौटकर अपना भोजन किया करती थीं । बाबा उनकी अटल श्रद्धा की झाँकी का दूसरों को भी दर्शन कराना चाहते थे । एक दिन दोपहर को वे साँजा, पूरी, भात, सार, खीर और अन्य भोज्य पदार्थ लेकर मस्जिद में आयी।

और दिनों तो भोजन प्रायः घंटो तक बाबा की प्रतीक्षा में पड़ा रहता था, परन्तु उस दिन वे तुरंत ही उठे और भोजन के स्थान पर आकर आसन ग्रहण कर लिया और थाली पर से कपड़ा हटाकर उन्होंने रुचिपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ कर दिया । तब शामा कहने लगे कि, ''यह पक्षपात क्यों ? दूसरों की थालियों पर तो आप दृष्टि तक नहीं डालते, उल्टे उन्हें फेंक देते हैं, परन्तु आज इस भोजन को आप बड़ी उत्सुकता और रुचि से खा रहे है । आज इस बाई का भोजन आपको इतना स्वादिष्ट क्यों लगा ? यह विषय तो हम लोगों के लिये एक समस्या बन गया है ।'' तक बाबा ने इस प्रकार समझाया -

''सचमुच ही इस भोजन में एक विचित्रता है । पूर्व जन्म में यह बाई एक व्यापारी की मोटी गाय थी, जो बहुत अधिक दूध देती थी । पशुयोनि त्यागकर इसने एक माली के कुटुम्ब में जन्म लिया । उस जन्म के उपरान्त फिर यह एक क्षत्रिय वंश मे उत्पन्न हुई और इसका ब्याह एक व्यापारी से हो गया । इस बार एक ब्राह्मण के घर उनका जन्म हुआ है । दीर्घ काल के पश्चात् इूसे भेंट हुई है । इसलिये इनकी थाली में से प्रेमपूर्वक चार ग्रास तो खा लेने दो ।'' ऐसा कह कर बाबा ने भरपेट भोजन किया और फिर हाथ मुँह धोकर और तृप्ति की चार-पाँच डकारें लेकर वे अपने आसन पर पुनः विराजे । फिर श्रीमती खापर्डे ने बाबा को नमन किया और उनके पाद-सेवन करने लगी । बाबा उनसे वार्तालाप करने लगे और साथ-साथ उनके हाथ भी दबाने लगे । इस प्रकार

परस्पर सेवा करते देख शामा मुस्कराने लगा और बोला कि, ''देखो तो, यह एक अद्भुत दृश्य है कि भगवान और भक्त एक दूसरे की सेवा कर रहे हैं ।'' उनकी सच्ची लगन देखकर बाबा अत्यन्त कोमल तथा मृदु शब्दों में अपने श्रीमुख से कहने लगे कि अब सदैव ''राजाराम, राजाराम'' का जाप किया करो और यदि तुमने इसका अभ्यास क्रमबद्ध कर लिया तो तुम्हें अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी । तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होकर अत्यधिक लाभ होगा, आध्यात्मिक विषयों से अपरिचित व्यक्तियों के लिए यह घटना साधारण सी प्रतीत होगी परन्तु शास्त्रीय भाषा में यह ''शक्तिपात'' के नाम से विदित है, अर्थात् गुरु द्वारा शिष्य में शक्तिसंचार करना । बाबा के वे शब्द कितने शक्तिशाली और प्रभावकारी थे जो एक क्षण में ही हृदय-कमल में प्रवेश कर गए और वहाँ अंकुरित हो उठे । यह घटना गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आदर्श की द्योतक है । गुरु-शिष्य दोनों को एक दूसरे को अभिन्न जानकर प्रेम और सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उन दोनों में कोई भेद नहीं है । वे दोनों अभिन्न और एक ही हैं, जो कभी पृथक् नहीं हो सकते । शिष्य गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख रहा है, यह तो केवल बाह्य दृश्यमात्र है । आन्तरिक दृष्टि से दोनों अभिन्न और एक ही हैं तथा जो उनमें भेद समझता है, वह अभी अपरिपक्व और अपूर्ण ही है ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-२८

चिड़ियों का शिरडी को खींचा जाना -
(१) लक्ष्मीचंद
(२) बुरहानपुर की महिलाएँ
(३) मेघा का निर्वाण

प्राक्कथन

श्री साई अनंत हैं । वे एक चींटी से लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त सर्वभूतों में व्याप्त है। वेद और आत्मविज्ञान में पूर्ण पारंगत होने के कारण वे सद्‌गुरू कहलाने के सर्वथा योग्य हैं । चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, परन्तु यदि वह अपने शिष्य की जागृति कर उसे आत्मस्वरूप का दर्शन न करा सके तो उसे सद्‌गुरु के नाम से कदापि सम्बोधित नहीं किया जा सकता । साधारणतः पिता केवल इस नश्वर शरीर का ही जन्मदाता है, परन्तु सद्‌गुरू तो जन्म और मृत्यु दोनों से ही मुक्ति करा देने वाले हैं । अतः वे अन्य लोगों से अधिक दयावन्त हैं ।

श्री साईबाबा हमेशा कहा करते थे कि, ''**मेरा भक्त चाहे एक हजार कोस की दूरी पर ही क्यों न हो, वह शिरडी को ऐसा खिंचा चला आता है, जैसे धागे से बँधी हुई चिड़ियाँ खिंच कर स्वयं ही आ जाती हैं ।**'' इस अध्याय में ऐसी ही तीन चिड़ियों का वर्णन हैं ।

(१) लाला लक्ष्मीचन्द

ये महानुभाव बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस मे नौकरी करते थे । वहाँ से नौकरी छोड़कर वे रेलवे विभाग में आए और फिर वे मेसर्स रैली ब्रदर्स एंड कम्पनी में मुन्शी का कार्य करने लगे । उनका सन् १९१० में श्री साईबाबा से सम्पर्क हुआ । बड़े दिन (क्रिसमस) से लगभग एक या दो मास पहले सांताक्रुज में उन्होंने स्वप्न में एक दाढ़ीवाले वृद्ध को देखा, जो चारों ओर से भक्तों से घिरा हुआ खड़ा था । कुछ दिनों के पश्चात् वे अपने मित्र श्री दत्तात्रेय

मंजुनाथ बिजूर के यहाँ दासगणु का कीर्तन सुनने गए । दासगणु का यह नियम था कि वे कीर्तन करते समय सम्मुख श्री साईबाबा का चित्र रख लिया करते थे । लक्ष्मीचन्द को यह चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में उन्हें जिस वृद्ध के दर्शन हुए थे, उनकी आकृति भी ठीक इस चित्र के अनुरूप ही थी । इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वप्न में दर्शन देने वाले स्वयं शिरडी के श्री साईनाथ समर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं है । चित्र-दर्शन, दासगणु का मधुर कीर्तन और उनके संत तुकाराम पर प्रवचन आदि का कुछ ऐसा प्रभाव उनपर पड़ा कि उन्होंने शिरडी-यात्रा का दृढ़ संकल्प कर लिया । भक्तों को चिरकाल से ही ऐसा अनुभव होता आया है कि **जो सद्गुरु या अन्य किसी आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकलता है, उसकी ईश्वर सदैव ही सहायता करते हैं ।** उसी रात्रि को लगभग आठ बजे उनके एक मित्र शंकरराव ने उनका द्वार खटखटाया और पूछा कि, क्या हमारे साथ शिरडी चलने को तैयार है ? लक्ष्मीचन्द के हर्ष का पारावार न रहा और उन्होंने तुरन्त ही शिरडी चलने का निश्चय कर लिया । एक मारवाड़ी से पन्द्रह रूपये उधार लेकर तथा अन्य आवश्यक प्रबन्ध कर उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया । रेलगाड़ी में उन्होंने अपने मित्र के साथ कुछ देर भजन भी किया । उसी डिब्बे में चार यवन यात्री बैठे थे, जो शिरडी के समीप ही अपने-अपने घरों को लौट रहे थे । लक्ष्मीचन्द ने उन लोगों से श्री साईबाबा के सम्बन्ध में कुछ पूछताछ की । तब लोगों ने उन्हे बताया कि श्री साईबाबा शिरडी में अनेक वर्षों से निवास कर रहे है और वे एक पहुँचे हुए संत हैं । जब वे कोपरगाँव पहुँचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरूद खरीदने का उन्होंने विचार किया । वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में कुछ ऐसे तल्लीन हुए कि उन्हें अमरूद लेने की सुधि ही न रही । परन्तु जब वे शिरडी के समीप आए तो यकायक उन्हें अमरूद खरीदने की स्मृति हो आई । इसी बीच उन्होंने देखा कि एक वृद्धा टोकरी में अमरूद लिये ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है । यह देख उन्होंने ताँगा रुकवाया और उनमें से कुछ बढ़िया अमरूद खरीद लिये । तब वह वृद्धा उनसे कहने लगी कि, ''कृपा कर ये शेष अमरूद भी मेरी ओर से बाबा को भेंट कर देना ।'' यह सुनकर तत्क्षण ही उन्हें विचार हो आया

कि मैंने अमरूद खरीदने की जो इच्छा पहले की थी और जिसे मैं भूल गया था, उसी की इस वृद्धा ने पुनः स्मृति करा दी है। श्री साईबाबा के प्रति उसकी भक्ति देख वे दोनों बड़े चकित हुए। लक्ष्मीचंद ने यह सोचकर कि हो सकता है कि स्वप्न में जिस वृद्ध के दर्शन मैंने किये थे, उनकी ही यह कोई रिश्तेदार हो, वे आगे बढ़े। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें दूर से ही मस्जिद में फहराती ध्वजाएँ दिखाई दीं, जिन्हें देख प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन-सामग्री लेकर वे मस्जिद पहुँचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गए। उनके दर्शन कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए तथा उनके शीतल चरणों से ऐसे लिपटे, जैसे एक मधुमक्खी कमल के मकरन्द की सुगन्ध से मुग्ध होकर उससे लिपट जाती है। तब बाबा ने उनसे जो कुछ कहा, उसका वर्णन हेमाडपंत ने अपने मूल ग्रन्थ में इस प्रकार किया है, ''साले, रास्ते में भजन करते और दूसरे आदमी से पूछते। दूसरे से क्या पूछना ? सब कुछ अपनी आँखों से देखना। काहे को दूसरे आदमी से पूछना ? सपना क्या झूठा है या सच्चा? कर लो अपना विचार आप। मारवाड़ी से उधार लेने की क्या जरूरत थी ? हुई क्या मुराद पूरी?'' ये शब्द सुनकर उनकी सर्वव्यापकता पर लक्ष्मी चन्द को बड़ा अचम्भा हुआ। वे बड़े लज्जित हुए कि घर से शिरडी तक मार्ग में जो कुछ हुआ, उसका उन्हें सब पता हैं। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात केवल यही है कि बाबा यह नहीं चाहते थे कि उनके दर्शन के लिए कर्ज़ लिया जाए या तीर्थ यात्रा में छुट्टी मनायें।

साँजा (उपमा)

दोपहर के समय जब लक्ष्मीचंद भोजन को बैठे तो उन्हें एक भक्त ने साँजे का प्रसाद लाकर दिया, जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन भी वे साँजा की आशा लगाये बैठे रहे, परन्तु किसी भक्त ने वह प्रसाद न दिया, जिसके लिए वे अति उत्सुक थे। तीसरे दिन दोपहर की आरती पर बापूसाहेब जोग ने बाबा से पूछा कि नैवेद्य के लिए क्या बनाया जाए ? तब बाबा ने उनसे सांजा लाने को कहा। भक्तगण दो बड़े बर्तनों में सांजा भर कर ले आए।

लक्ष्मीचंद को भूख भी अधिक लगी थी । साथ ही उनकी पीठ में दर्द भी था । बाबा ने लक्ष्मीचंद से कहा – (हेमाडपंत ने मूल ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन किया है) ''तुमको भूख लगी है, अच्छा हुआ । कमर में दर्द भी है । लो, अब साँजे की ही करो दवा।'' उन्हें पुनः अचम्भा हुआ कि मेरे मन के समस्त विचारों को उन्होंने जान लिया है । वस्तुतः वे सर्वज्ञ है !

कुदृष्टि

इसी यात्रा में एक बार उनको चावड़ी का जुलूस देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया । उस दिन बाबा कफ़ से अधिक पीड़ित थे । उन्हें विचार आया कि इस कफ़ का कारण शायद किसी की नज़र लगी हो । दूसरे दिन प्रातःकाल जब बाबा मस्जिद को गए तो शामा से कहने लगे कि, ''कल जो मुझे कफ़ से पीड़ा हो रही थी, उसका मुख्य कारण किसी की कुदृष्टि ही है । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की नज़र लग गई है, इसीलिए यह पीड़ा मुझे हुई है ।'' लक्ष्मीचन्द के मन में जो विचार उठ रहे थे, वही बाबा ने भी कह दिये । बाबा की सर्वज्ञता के अनेक प्रमाण तथा भक्तों के प्रति उनका स्नेह देखकर लक्ष्मीचंद बाबा के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे कि ''आपके प्रिय दर्शन से मेरे चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई है । मेरा मन आपके चरण कमल और भजनों मे ही लगा रहें । आपके भवभयनाशक चरणों का स्मरण करते हुये मेरा जीवन आनन्द से व्यतीत हो जाए, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है ।''

बाबा से आशीर्वाद तथा उदी लेकर वे मित्र के साथ प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मार्ग में उनकी कीर्ति का गुणगान करते हुए घर वापस लौट आए और सदैव उनके अनन्य भक्त बने रहे । शिरडी जाने वालों के हाथ वे उनको हार, कपूर और दक्षिणा भेजा करते थे ।

(२) बुरहानपुर की महिला

अब हम दूसरी चिड़िया (भक्त) का वर्णन करेंगे । एक दिन बुरहानपुर में एक महिला ने स्वप्न में देखा कि श्री साईबाबा उसके द्वार पर खड़े भोजन के

लिए खिचड़ी माँग रहे है । उसने उठकर देखा तो द्वार पर कोई भी न था । फिर भी वह प्रसन्न हुई और उसने यह स्वप्न अपने पति तथा अन्य लोगों को सुनाया । उसका पति डाक विभाग में नौकरी करता था । वे दोनों ही बड़े धार्मिक थे । जब उसका स्थानान्तरण अकोला (महाराष्ट्र) को हुआ तो दोनों ने शिरडी जाने का भी निश्चय किया और एक शुभ दिन उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया । मार्ग में गोमती तीर्थ होकर वे शिरडी पहुँचे और वहाँ दो माह तक ठहरे । प्रतिदिन वे मस्जिद जाते और बाबा का पूजन कर आनन्द से अपना समय व्यतीत करते थे । यद्यपि दम्पत्ति खिचड़ी का नैवेद्य भेंट करने को ही आए थे, परन्तु किसी कारणवश उन्हें १४ दिनों तक ऐसा संयोग प्राप्त न हो सका । उनकी स्त्री इस कार्य में अब अधिक विलम्ब न करना चाहती थी । इसीलिए जब १५ वें दिन दोपहर के समय वह खिचड़ी लेकर मस्जिद में पहुँची तो उसने देखा कि बाबा अन्य लोगों के साथ भोजन करने बैठ चुके हैं । परदा गिर चुका था, जिसके पश्चात् किसी का साहस न था कि वह भीतर प्रवेश कर सके । परन्तु वह एक क्षण भी प्रतीक्षा न कर सकी और हाथ से परदा हटाकर भीतर चली आयी । बड़े आश्चर्य की बात थी कि उसने देखा कि बाबा की इच्छा उस दिन सबसे पहले खिचड़ी खाने की ही थी, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी । जब वह थाली लेकर भीतर आई तो बाबा को बड़ा हर्ष हुआ और वे उसी में से खिचड़ी के ग्रास लेकर खाने लगे । बाबा की ऐसी उत्सुकता देख प्रत्येक को बड़ा आश्चर्य हुआ और जिन्होंने यह खिचड़ी की वार्ता सुनी, उन्हें भक्तों के प्रति बाबा का असाधारण स्नेह देख बड़ी प्रसन्नता हुई ।

मेघा का निर्वाण

अब तृतीय पक्षी की चर्चा सुनिये । बिरमगाँव (खेडा जिल्हा, गुजरात) का रहने वाला मेघा अत्यन्त सीधा और अनपढ़ व्यक्ति था । वह रावबहादुर ह. वि. साठे के यहाँ रसोईए का काम किया करता था । वह शिवजी का परम भक्त था, और सदैव पंचाक्षरी मंत्र ''नमः शिवाय'' का जाप किया करता था ।

सन्ध्योपासना आदि का उसे कुछ भी ज्ञान न था। यहाँ तक कि वह संध्या के मूल गायत्रीमंत्र को भी न जानता था। रावबहादुर साठे का उस पर अत्यन्त स्नेह था। इसलिये उन्होंने उसे सन्ध्या की विधि तथा गायत्रीमंत्र की शिक्षा दी। साठे साहेब ने श्री साईबाबा को शिवजी का साक्षात् अवतार बतलाकर उसे शिरडी भेजने का निश्चय किया। किन्तु साठे साहेब से पूछने पर उन्होंने बताया कि श्री साईबाबा तो यवन हैं। इसलिये मेघा ने सोचा कि शिरडी में एक यवन को प्रणाम करना पड़े, यह अच्छी बात नहीं है। भोला-भाला आदमी तो वह था ही, इसलिये उसके मन में असमंजस पैदा हो गया। तब उसने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि कृपा कर मुझे वहाँ न भेजें। परन्तु साठे साहेब कहाँ मानने वाले थे ? उनके सामने मेघा की एक न चली। उन्होंने उसे किसी प्रकार शिरडी भेज दिया तथा उसके द्वारा अपने ससुर गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर को, जो शिरडी में ही रहते थे, एक पत्र भेजा कि मेघा का परिचय बाबा से करा देना। शिरडी पहुँचने पर जब वह मस्जिद में घुसा तो बाबा अत्यन्त क्रोधित हो गए और उसे उन्होंने मस्जिद में आना मना कर दिया। वे गर्जन कर कहने लगे कि, "इसे बाहर निकाल दो।" फिर मेघा की ओर देखकर कहने लगे कि, "तुम तो एक उच्च कुलीन ब्राह्मण हो और मैं निम्न जाति का एक यवन। तुम्हारी जाति भ्रष्ट हो जाएगी। इसलिए यहाँ से बाहर निकल जाओं।" ये शब्द सुनकर मेघा काँप उठा। उसे बड़ा विस्मय हुआ कि जो कुठ उसके मन में विचार उठ रहे थे, उन्हें बाबा ने कैसे जान लिया ? किसी प्रकार वह कुछ दिन वहाँ ठहरा और अपनी इच्छानुसार सेवा भी करता रहा, परन्तु उसकी इच्छा तृप्त नहीं हुई। फिर वह घर लौट आया और वहाँ से त्रिंबक (नासिक जिला) को चला गया। वर्ष भर के पश्चात् पुनः शिरडी आया और इस बार दादा केलकर के कहने से उसे मस्जिद में रहने का अवसर प्राप्त हो गया। साईबाबा मौखिक उपदेश द्वारा मेघा की उन्नति करने के बदले उसका आंतरिक सुधार कर रहे थे। उसकी स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हो कर यथेष्ट प्रगति हो चुकी थी और अब तो वह श्री साईबाबा को शिवजी का ही साक्षात्

अवतार समझने लगा था। शिवपूजन में बिल्व पत्रों की आपश्यकता होती है। इसलिए अपने शिवजी (बाबा) का पूजन करने हेतु बिल्वपत्रों की खोज में वह मीलों दूर निकल जाया करता था। प्रतिदिन उसने ऐसा नियम बना लिया था कि गाँव मे जितने भी देवालय थे, प्रथम वहाँ जाकर वह उनका पूजन करता और इसके पश्चात् ही चरणामृतपान करता था। एक बार ऐसा हुआ कि खंडोबा के मंदिर का द्वार बन्द था। इस कारण वह बिना पूजन किये ही वहाँ से लौट आया और जब वह मस्जिद में आया तो बाबा ने उसकी सेवा स्वीकार न की तथा उसे पुनः वहाँ जाकर पूजन कर आने को कहा और उसे बतलाया कि अब मंदिर के द्वार खुल गए हैं। मेघा ने जाकर देखा कि सचमुच मंदिर के द्वार खुले थे। जब उसने लौटकर यथाविधि पूजा की, तब कहीं बाबा ने उसे अपना पूजन करने की अनुमति दी।

गंगास्नान

एक बार मकर संक्रन्ति के अवसर पर मेघा ने विचार किया कि बाबा को चन्दन का लेप करूँ तथा गंगाजल से उन्हें स्नान कराऊँ। बाबा ने पहले तो इसके लिए अपनी स्वीकृति न दी, परन्तु उसकी लगातार प्रार्थना के उपरांत उन्होंने किसी प्रकार स्वीकार कर लिया। गोदावरी नदी का पवित्र जल नाने के लिए मेघा को आठ कोस[१] का चक्कर लगाना पड़ा। वह जल लेकर लौट आया और दोपहर तक पूर्ण व्यवस्था कर ली। तब उसने बाबा को तैयार होने की सूचना दी। बाबा ने पुनः मेघा से अनुरोध किया कि, ''मुझे इस झंझट से दूर ही रहने दो। मैं तो एक फकीर हूँ, मुझे गंगाजल से क्या प्रयोजन ?'' परन्तु मेघा कुछ सुनता ही न था। मेघा की तो यह दृढ़ धारणा थी कि शिवजी गंगाजल से अधिक प्रसन्न होते हैं। इसलिए ऐसे शुभ पर्व पर अपने शिवजी को स्नान कराना हमारा परम कर्तव्य है। अब तो बाबा को सहमत होना ही पड़ा और नीचे उतार कर वे एक लकड़ी के तख्त पर बैठ गए तथा अपना

---

१. १ कोस = २ मील = १३ किमी.

मस्तक आगे करते हुए कहने लगे कि, ''अरे मेघा! कम से कम इतनी कृपा तो करना कि केवल मेरे सिर पर ही पानी डालना । सिर शरीर का प्रधान अंग है और उस पर पानी डालना ही पूरे शरीर पर पानी डालने के सदृश है ।'' मेघा ने 'अच्छा अच्छा' कहते हुए बर्तन उठाकर सिर पर पानी डालना प्रारम्भ किया । ऐसा करने से उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने उच्च स्वर में 'हर हर गंगे' कहते हुए समचे बर्तन का पानी बाबा के सम्पूर्ण शरीर पर उँडेल दिया और फिर पानी का बर्तन एक ओर रखकर वह बाबा की ओर निहारने लगा । उसने देखा कि बाबा का तो केवल सिर ही भीगा है और शेष भाग ज्यों का त्यों बिल्कुल सूखा ही है । यह देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ।

त्रिशुल और पिंडी

मेघा बाबा को दो स्थानों पर पूजा करता था । पहले वह मस्जिद में फिर वाड़े में नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा प्राप्त उनके बड़े चित्र को । इस प्रकार यह क्रम १२ मास तक चलता रहा ।

बाबा ने उसकी भक्ति तथा विश्वास दृढ़ करने के लिए उसे दर्शन दिये । एक दिन प्रातःकाल मेघा जब अर्द्ध निद्रावस्था में अपनी शैया पर पड़ा हुआ था, तभी उसे उनके दर्शन हुए। बाबा ने उसे जागृत जानकर अक्षत फेंके और कहा कि ''मेघा! त्रिशुल लगाओ।'' इतना कहकर वे अदृश्य हो गए । उनके शब्द सुनकर उसने उत्सुकता से अपनी आँखे खोली, परन्तु देखा कि कोई नहीं है, केवल अक्षत ही यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं । तब वह उठकर बाबा के पास गया और उन्हें अपना स्वप्न सुनाने के पश्चात् उसने उन्हें त्रिशुल लगाने की आज्ञा माँगी । बाबा ने कहा कि, ''क्या तुम ने मेरे शब्द नहीं सुने कि त्रिशुल लगाओ । वह कोई स्वप्न नहीं वरन् मेरी प्रत्यक्ष आज्ञा थी । **मेरे शब्द सदैव अर्थपूर्ण होते हैं, थोथे-पोचे नहीं ।**'' मेघा कहने लगा कि आपने दया कर मुझे निद्रा से तो जागृत कर दिया है, परन्तु सभी द्वार पूववत् ही बन्द देखकर मैं मूढ़मति भ्रमित हो उठा हूँ कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा था ।'' बाबा ने आगे कहा कि, ''**मुझे प्रवेश करने के लिए किसी द्वार की आवश्यकता नहीं है । न मेरा कोई रूप ही**

हैं और न ही कोई अंत । मैं सदैव सर्वभूतों में व्याप्त हूँ । जो मुझ पर विश्वास रखकर सतत् मेरा ही चिन्तन करता है, उसके सब कार्य मैं स्वयं ही करता हूँ और अन्त में उसे श्रेष्ठ गति देता हूँ ।'' मेघा वाड़े को लौट आया और बाबा के चित्र के समीप ही दीवार पर एक लाल त्रिशूल खींच दिया । दूसरे दिन एक रामदासी भक्त पूने से आया । उसने बाबा को प्रणाम कर शंकर की एक पिंडी भेंट की । उसी समय मेघा भी वहाँ पहुँचे । तब बाबा उनसे कहने लगे कि देखो, शंकर भोले आ गए है । अब उन्हें सँभालो । मेघा ने पिंडी को देखा तो उसे महान् विस्मय हुआ । वह वाड़े मे आया । इस समय काकासाहेब दीक्षित स्नान के पश्चात् सिर पर तौलिया डाले 'साई' नाम का जाप कर रहे थे । तभी उन्होंने ध्यान में एक पिंडी देखी, जिससे उन्हें कौतूहल-सा हो गया था । उन्होंने सामने से मेघा को आते देखा । मेघा ने बाबा द्वारा प्रदत्त वह पिंडी काकासाहेब दीक्षित को दिखाई । पिंडी ठीक वैसी ही थी, जैसी कि उन्होंने कुछ घड़ी पूर्व ध्यान में देखी थी । कुछ दिनों में जब त्रिशूल का खींचना पूर्ण हो गया तो बाबा ने बड़े चित्र के पास (जिसका मेघा नित्य पूजना करता था) ही उस पिंडी की स्थापना कर दी । मेघा को शिव-पूजन से बड़ा प्रेम था । त्रिपुंड खींचने का अवसर देकर तथा पिंडी की स्थापना कर बाबा ने उसका विश्वास दृढ़ कर दिया ।

इस प्रकार कई वर्षों तक लगातार दोपहर और सन्ध्या को नियमित आरती तथा पूजा कर सन् १९१२ में मेघा परलोकवासी हो गया । बाबा ने उसके मृत शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा कि, ''यह मेरा सच्चा भक्त था ।'' फिर बाबा ने अपने ही खर्च से उसका मृत्यु-भोज ब्राह्मणों को दिये जाने की आज्ञा दी, जिसका पालन काकासाहेब दीक्षित ने किया ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायण : चतुर्थ विश्राम

अध्याय-२९
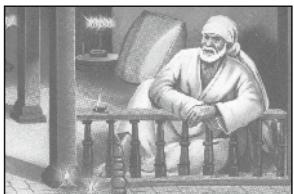
(१) मद्रसी भजनी मेला
(२) तेंडुलकर (पिता व पुत्र)
(३) डॉक्टर कैप्टन हाटे और
(४) वामन नार्वेकर आदि की कथाएँ।

(१) मद्रासी भजनी मेला

लगभग सन् १९१६ में एक मद्रासी भजन मंडली पवित्र काशी की तीर्थयात्रा पर निकली। उस मंडली में एक पुरुष, उनकी स्त्री, पुत्री और साली थी । अभाग्यवश, उनके नाम यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं । मार्ग में कहीं उनको सुनने में आया कि अहमदनगर के कोपरगाँव तालुका के शिरडी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक महान् सन्त रहते हैं, जो बहुत दयालु और पहुँचे हुए हैं । वे उदार हृदय और अहेतुक कृपासिन्धु हैं । वे प्रतिदिन अपने भक्तों को रुपया बाँटा करते हैं । यदि कोई कलाकार वहाँ जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करता है तो उसे भी पुरस्कार मिलता है । प्रतिदिन दक्षिणा में बाबा के पास बहुत रुपये इकट्ठे हो जाया करते थे । इन रुपयों में से वे नित्य एक रुपया भक्त कोण्डाजी की तीन वर्षीय कन्या अमनी को, किसी को दो रुपये से पाँच रुपये तक, छः रुपये अमनी की माँ जमली को और दस से बीस रुपये तक और कभी-कभी पचास रुपये भी अपनी इच्छानुसार अन्य भक्तों को दिया करते थे । यह सुनकर मंडली शिरडी आकर रुकी । मंडली बहुत सुन्दर भजन और गायन किया करती थी, परन्तु उनका भीतरी ध्येय तो द्रव्योपार्जन ही था । मंडली में तीन व्यक्ति तो बड़े ही लालची थे । केवल प्रधान स्त्री का ही स्वभाव इन लोगों से सर्वथा भिन्न था । उसके हृदय में बाबा के प्रति श्रद्धा और विश्वास देखकर बाबा प्रसन्न हो गए । फिर क्या था ? बाबा ने उसे उसके इष्ट के रूप में दर्शन दिये और केवल उसे ही बाबा सीतानाथ के रूप में दिखलाई दिये, जब कि अन्य उपस्थित लोगों को सामान्य ही । अपने प्रिय इष्ट का दर्शन पाकर

वह द्रवित हो गई तथा उसका कंठ रुँध गया और आँखो से अश्रुधारा बहने लगी। तभी प्रेमोन्मत्त हो वह ताली बजाने लगी। उसको इस प्रकार आनन्दित देख लोगों को कौतुहल तो होन लगा, परन्तु कारण किसी को भी ज्ञात न हो रहा था। दोपहर के पश्चात् उसने वह भेद अपने पति से प्रगट किया। बाबा के श्रीरामस्वरूप में उसे कैसे दर्शन हुए इत्यादि उसने सब बताया। पति ने सोचा कि मेरी स्त्री बहुत भोली और भावुक है, अतः इसे राम का दर्शना होना एक मानसिक विकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसने ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा कर दी कि कहीं यह भी संभव हो सकता है कि केवल तुम्हें ही बाबा के रूप में दिखें और अन्य लोगों को सदैव की भाँति ही। स्त्री ने कोई प्रतिवाद न किया, क्योकि उसे राम के दर्शन जिस प्रकार उस समय हुए थे, वैसे ही अब भी हो रहे थे। उसका मन शान्त, स्थिर और संतृप्त हो चुका था।

आश्चर्यजनक दर्शन

इसी प्रकार दिन बीत गए। एक दिन रात्रि में उसके पति को एक विचित्र स्वप्न आया। उसने देखा कि एक बड़े शहर में पुलिस ने गिरफ्तार कर रस्सी से बाँधकर उसे कारावास में डाल दिया है। तत्पश्चात् ही उसने देखा कि बाबा शान्त मुद्रा में सींकचों के बाहर उसके समीप खड़े है। उन्हें अपने समीप खड़े देखकर वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि, ''आपकी कीर्ति सुनकर ही मैं आपके श्रीचरणों में आया हूँ। फिर आपके इतने निकट होते हुए भी मेरे ऊपर यह विपदा क्यों आई ?''

तब वे बोले, ''तुम्हें अपने बुरे कर्मों का फल अवश्य भुगतना चाहिए।'' वह पुनः बोला कि, ''इस जीवन में मुझे अपने ऐसे कर्म की स्मृति नहीं, जिसके कारण मुझे ये दुर्दिन देखने को मिला।'' बाबा ने का कि, ''यदि इस जन्म में नहीं तो गत जन्म में अवश्य कोई बुरा कर्म किया होगा।'' तब वह कहने लगा कि, ''मुझे अपने गत जन्म की कोई स्मृति नहीं, परन्तु यदि एक बार मान भी लूँ कि कोई बुरा कर्म हो भी गया होगा तो आपके यहाँ होते हुए तो उसे भस्म हो जाना चाहिए, जिस प्रकार सूखी घास अग्नि द्वारा शीघ्र भस्म हो जाती है।''

बाबा ने पूछा, ''क्या तुम्हारा सचमुच ऐसा दृढ़ विश्वास है ?'' उसने कहा, - ''हाँ ।''

बाबा ने उससे अपनी आँखे बन्द करने को कहा और जब उसने आँखे बन्द कीं, उसे किसी भारी वस्तु के गिरने की आहट सुनाई दी । आँखे खोलने पर उसने अपने को कारावास से मुक्त पाया । पुलिसवाला नीचे गिरा पड़ा है तथा उसके शरीर से खून प्रवाहित हो रहा है, यह देखकर वह अत्यन्त भयभीत दृष्टि से बाबा की ओर देखने लगा । तब बाबा बोले कि, ''अब तुम्हारी अच्छी तरह खबर ली जाएगी । पुलिस अधिकारी अभी आएँगे और तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे ।'' तब वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि, ''आपके अतिरिक्त मेरी रक्षा और कौन कर सकता है ? भगवान् मुझे किसी प्रकार बचा लीजिये ।''

तब बाबा ने फिर उससे आँखे बन्द करने को कहा। आँखे खोलने पर उसने देखा कि वह पूर्णतः मुक्त होकर सींकचों के बाहर खड़ा है और बाबा भी उसके समीप ही खड़े हैं । तब वह बाबा के श्रीचरणों पर गिर पड़ा ।

बाबा ने पूछा कि, ''मुझे बताओ तो, तुम्हारे इस नमस्कार और पिछले नमस्कारों में किसी प्रकार भिन्नता है या नहीं ? इसका उत्तर अच्छी तरह सोच कर दो ।''

वह बोला कि, ''आकाश और पाताल में जो अंतर है, वही अंतर मेरे पहले और इस नमस्कार में है । मेरे पूर्व नमस्कार तो केवल धन-प्राप्ति की आशा से ही थे, परन्तु यह नमस्कार मैंने आपको ईश्वर जानकर ही किया है । पहले मेरी धारणा ऐसी थी कि यवन होने के नाते आप हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं ।''

बाबा ने पूछा कि, ''क्या तुम्हारा यवन पीरों में विश्वास नहीं ?'' प्रत्युत्तर में उसने कहा - ''जी नहीं ।'' तब वे फिर पूछने लगे कि, ''क्या तुम्हारे घर में एक पंजा नहीं ? क्या तुम ताबूत की पूजा नहीं करते ? तुम्हारे घर में अभी भी एक काडबीबी नामक देवी हैं, जिसके सामने तुम विवाह तथा

अन्य धार्मिक अवसरों पर कृपा की भीख माँगा करते हो।''

अन्त में जब उसने स्वीकार कर लिया तो वे बोले कि, ''इससे अधिक अब तुम्हें क्या प्रमाण चाहिए ?'' तब उनके मन में अपने गुरु श्रीरामदास के दर्शन की इच्छा हुई । बाबा ने ज्यों ही उससे पीछे घूमने को कहा तो उसने देखा कि श्रीरामदास स्वामी उसके सामने खड़े हैं ।

तब वह बाबा से कहने लगा कि, ''आप तो वृद्ध प्रतीत होते हैं । क्या आपको अपनी आयु विदित है ?''

बाबा ने पूछा कि, ''तुम क्या कहते हो कि मैं बूढ़ा हूँ ? थोड़ी दूर मेरे साथ दौड़कर तो देखो ।'' ऐसा कहकर बाबा दौड़ने लगे और वह भी उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा । दौड़ने से पैरों द्वारा जो धूल उडी, उसमे बाबा लुप्त हो गए और तभी उसकी नींद भी खुल गई ।

जागृत होते ही वह गम्भीरतापूर्वक इस स्वप्न पर विचार करने लगा । उसकी मानसिक प्रवृत्ति में पूर्ण परिवर्तन हो गया । अब उसे बाबा की महानता विदित हो चुकी थी । उसकी लोभी तथा आशंक वृत्ति लुप्त हो गयी और हृदय में बाबा के चरणों के प्रति सच्ची भक्ति उमड़ पड़ी । वह तो एक स्वप्न मात्र ही, परन्तु उसमें जो प्रश्नोत्तर थे, वे अधिक महत्वपूर्ण थे । दूसरे दिन जब सब लोग मस्जिद में आरती के निमित्त एकत्रित हुए, तब बाबा ने उसे प्रसाद में लगभग दो रुपये की मिठाई और दो रुपये नगद अपने पास से देकर आशीर्वाद दिया । उसे कुछ दिन और रोककर उन्होंने आशीष देते हुए कहा कि, ''अल्ला तुम्हें बहुत देगा और अब सब अच्छा ही करेगा ।'' बाबा से उसे अधिक द्रव्य की प्राप्ति तो न हुई, परंतु उनकी कृपा उसे अवश्य प्राप्त हो गई, जिससे उसका बहुत ही कल्याण हुआ। मार्ग में उनको यथेष्ट द्रव्य प्राप्त हुआ और उनकी यात्रा बहुत ही सफल रही । उन्हें यात्रा में कोई कष्ट या असुविधा न हुई और वे अपने घर सकुशल पहुँच गए । उन्हें बाबा के श्री वचनों तथा आशीर्वाद और उनकी कृपा से प्राप्त उस आनन्द की सदैव स्मृति बनी रही ।

इस कथा से विदित होता है कि बाबा किस प्रकार अपने भक्तों के समीप

आकर उन्हें श्रेयस्कर मार्ग पर ले जाते थे और आज भी ले जाते हैं।

तेंडुलकर कुटुम्ब

बम्बई के पास बान्द्रा में एक तेंडुलकर कुटुम्ब रहता था, जो बाबा का परम भक्त था। श्रीयुत् रघुनाथराव तेंडुलकर ने मराठी भाषा में ''श्री साईनाथ भजनमाला'' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लगभग आठ सौ अभंग और पदों का समावेश तथा बाबा की लीलाओं का मधुर वर्णन है। यह बाबा के भक्तों के पढ़ने योग्य पुस्तक है। उनका ज्येष्ठ पुत्र बाबू डॉक्टरी परीक्षा में बैठने के लिये अनवरत अभ्यास कर रहा था। उसने कई ज्योतिषियों को अपनी जन्म-कुंडली दिखाई, परन्तु सभी ने बतलाया कि इस वर्ष उसके ग्रह उत्तम नहीं हैं किन्तु अगले वर्ष परीक्षा में बैठने से उसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। इससे उसे बड़ी निराशा हुई और वह अशान्त हो गया। थोड़े दिनों के साथ उसने अपने पुत्र की निराशा तथा अशान्ति की बात भी बाबा से कही। उनके पुत्र को कुछ दिनों के पश्चात् ही परीक्षा में बैठना था। बाबा कहने लगे कि, ''अपने पुत्र से कहो कि मुझ पर विश्वास रखे। सब भविष्यकथन तथा ज्योतिषियों द्वारा बनाई कुंडलियों को एक कोने में फेंक दे और अपना अभ्यास-क्रम चालू रख शान्तचित्त से परीक्षा में बैठे। वह अवश्य ही इस वर्ष उत्तीर्ण हो जाएगा। उससे कहना कि निराश होने की कोई बात नहीं है।'' माँ ने घर आकर बाबा का सन्देश पुत्र को सुना दिया। उसने घोर परिश्रम किया और परीक्षा में बैठ गया। सब परचों के जवाब बहुत अच्छे लिखे थे परन्तु फिर भी संशयग्रस्त होकर उसने सोचा कि सम्भव है कि उत्तीर्ण होने योग्य अंक मुझे प्राप्त न हो सकें। इसलिए उसने मौखिक परीक्षा में बैठने का विचार त्याग दिया। परिक्षक तो उसके पीछे ही लगा था। उसने एक विद्यार्थी द्वारा सूचना भेजी कि उसे लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने लायक अंक प्राप्त हैं। अब उसे मौखिक परीक्षा में अवश्य ही बैठना चाहिए। इस प्रकार प्रोत्साहन पाकर वह उसमें भी बैठ गया तथा दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गया। उस वर्ष उसकी ग्रह-दशा विपरीत होते हुए भी बाबा की कृपा से उसने सफलता पायी। यहाँ केवल इतनी

ही बात ध्यान देने योग्य है कि **कष्ट और संशय की उत्पत्ति अन्त में दृढ़ विश्वास में परिणत हो जाती है । जैसी भी हो, परीक्षा तो होती ही है, परन्तु यदि हम बाबा पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखकर प्रयत्न करते रहें तो हमें सफलता अवश्य ही मिलेगी ।**

इसी बालक के पिता रघुनाथराव बम्बई की एक विदेशी व्यवसायी फर्म में नौकरी करते थे । वे बहुत वृद्ध हो चुके थे और अपना कार्य सुचारुरूप से नहीं कर सकते थे । इसलिये वे अब छुट्टी लेकर विश्राम करना चाहते थे । छुट्टी लेने पर भी उनके शारीरिक स्वास्थ्य में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ । अब यह आवश्यक था के सेवानिवृत्ति की पूर्वकालिक छुट्टी ली जाए । एक वृद्ध और विश्वासपात्र नौकर होने के नाते प्रधान मैनेजर ने उन्हें पेन्शन देकर सेवा-निवृत्त करने का निर्णय किया । पेन्शन कितनी दी जाए, यह प्रश्न विचाराधीन था । उन्हें १५० रुपये मासिक वेतन मिलता था । इस हिसाब से पेन्शन हुई ७५ रुपये, जो कि उनके कुटुम्ब के निर्वाह हेतु अपर्याप्त थी । इसलिये वे बड़े चिन्तित थे । निर्णय होने के पन्द्रह दिन पूर्व बाबा ने श्रीमती तेंडुलकर को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि, ''मेरी इच्छा है कि पेन्शन १०० रुपये दी जाए । क्या तुम्हें सन्तोष होगा ?''

श्रीमती तेंडुलकर ने कहा कि ''बाबा मुझ दासी से आप क्या पूछते हैं ? हमें तो आपके श्री-चरणों में पूर्ण विश्वास है ।''

यद्यपि बाबा ने १०० रुपये कहे थे, परन्तु उसे विशेष प्रकरण समझकर १० रुपये अधिक अर्थात् ११० रुपये पेन्शन निश्चित हुई । बाबा अपने भक्तों के लिये कितना अपरिमित स्नेह और कितनी चिन्ता रखते थे ।

कैप्टन हाटे

बीकानेर के निवासी कैप्टन हाटे बाबा के परम भक्त थे । एक बार स्वप्न में बाबा ने उनसे पूछा कि, ''क्या तुम्हें मेरी विस्मृति हो गई ?'' श्री हाटे ने उनके श्री चरणों से लिपट कर कहा कि, ''यदि बालक अपनी माँ को भूल जाए तो क्या वह जीवित रह सकता है ?''

इतना कहकर श्री हाटे शीघ्र बगीचे में जाकर कुछ वलपपड़ी (सेम) तोड़ लाये और एक थाली में सीधा (सूखी भिक्षा) तथा दक्षिणा रखकर बाबा को भेंट करने आए। उसी समय उनकी आँखे खुल गईं और उन्हें ऐसा भान हुआ कि यह तो एक स्वप्न था। फिर वे सब वस्तुएँ, जो उन्होंने स्वप्न में देखी थीं, बाबा के पास शिरडी भेजने का निश्चय कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् वे ग्वालियर आए और वहाँ से अपने एक मित्र को बारह रूपयों का मनीऑर्डर भेजकर पत्र में लिख भेजा कि दो रुपयों में सीधा की सामग्री और वालपापड़ी (सेम) आदि मोल लेकर तथा दस रुपये दक्षिणास्वरूप रखकर मेरी ओर से बाबा को भेंट देना। उनके मित्र ने शिरडी आकर सब वस्तुएँ तो संग्रह कर लीं, परन्तु वालपापड़ी प्राप्त करने में उन्हें अत्यन्त कठिनाई हुई। थोड़ी देर के पश्चात् ही उन्होंने एक स्त्री को सिर पर टोकरी रखे सामने से आते देखा। उन्हें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उस टोकरी मे वालपापड़ी के अतिरिक्त कुछ न भी न था। तब उन्होंने वालपापड़ी खरीद कर सब एकत्रित वस्तुएँ लेकर मस्जिद में जाकर श्री हाटे की ओर से बाबा को भेंट कर दी। दूसरे दिन श्री निमोणकर ने उसका नैवेद्य (चावल और वालपापड़ी की सब्जी) तैयार कर बाबा को भोजन कराया। सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा ने भोजन मे केवल वालपापड़ी ही खाई और अन्य वस्तुओं को स्पर्श तक न किया। उनके मित्र द्वारा जब इस समाचार का पता कैप्टन हाटे को चला तो वे गद्गद् हो उठे और उनके हर्ष का परावार न रहा।

पवित्र रुपया

एक अन्य अवसर पर कैप्टन हाटे ने विचार किया कि बाबा के पवित्र करकमलों द्वारा स्पर्शित एक रुपया लाकर अपने घर में अवश्य ही रखना चाहिए। अचानक ही उनकी भेंट अपने एक मित्र से हो गई, जो शिरडी जा रहे थे। उनके हाथ ही श्री हाटे ने एक रुपया भेज दिया। शिरडी पहुँचने पर बाबा को यथायोग्य प्रणाम करने के पश्चात् उसने दक्षिणा भेंट की, जिसे उन्होंने तुरन्त ही अपने जेब में रख लिया। तत्पश्चात् उसने कैप्टन हाटे का रुपया भी

अर्पण किया, जिसे वे हाथ में लेकर गौर से निहारने लगे । उन्होंने उसका अंकित चित्र ऊपर की ओर कर अँगुठे पर रख खनखनाया और अपने हाथ में लेकर देखने लगे । फिर वे उनके मित्र से कहने लगे की उदी सहित यह रुपया अपने मित्र को लौटा देना । मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिए। उनसे कहना कि वे आनन्दपूर्वक रहें । मित्र ने ग्वालियर आकर वह रुपया हाटे को देकर वहाँ जो कुछ हुआ था, वह सब उन्हें सुनाया, जिसे सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अनुभव किया कि बाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहित करते हैं । उनकी मनोकामना बाबा ने पूर्ण कर दी ।

(४) श्री वामन नार्वेकर

पाठकगण अब एक भिन्न कथा श्रवण करें । एक महाशय, जिनका नाम वामन नार्वेकर था, उनकी साई-चरणों में प्रगाढ़ प्रीति थी । एक बार वे एक ऐसी मुद्रा लाये, जिसके एक ओर राम, लक्ष्मण और सीता तथा दूसरी ओर करबद्ध मुद्रा में मारुति का चित्र अंकित था । उन्होंने यह मुद्रा बाबा को इस अभिप्राय से भेंट की कि वे इसे अपने करस्पर्श से पवित्र कर उदी सहित लौटा दें । परन्तु उन्होंने उसे तुरन्त अपनी जेब में रख लिया । शामा ने वामनराव की इच्छा बताकर उनसे मुद्रा वापस करने का अनुरोध किया । तब वे वामनराव के सामने ही कहने लगे कि, ''यह भला उनको क्यों लौटाई जाए ? इसे तो हमें अपने पास ही रखना चाहिए । यदि वे इसके बदले में पच्चीस रुपया देना स्वीकार करें तो मैं इसे लौटा दूँगा ।'' वह मुद्रा वापस पाने के हेतु श्री वामनराव ने पच्चीस रुपये एकत्रित कर उन्हें भेंट किये । तब बाबा कहने लगे कि ''इस मुद्रा का मूल्य तो पच्चीस रूपयों से कहीं अधिक है । शामा ! तुम इसे अपने भंडार में जमा करके अपने देवालय में प्रतिष्ठित कर इसका नित्य पूजन करो ।'' किसी का साहस न था कि वे यह पूछ लें कि उन्होंने ऐसी नीति क्यों अपनाई ? यह तो केवल बाबा ही जानें कि किसके लिये कब और क्या उपयुक्त है ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३०

शिरडी को खींचे गए भक्त :

(१) वणी के काका वैद्य

(२)खुशालचन्द

(३) बम्बई के रामलाल पंजाबी ।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि तीन अन्य भक्त किस प्रकार शिरडी की ओर खींचे गए ।

प्राक्कथन

जो बिना किसी कारण भक्तों पर स्नेह करने वाले दया के सागर हैं तथा निर्गुण होकर भी भक्तों के प्रेमवश ही जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण किया, जो ऐसे भक्त-वत्सल हैं कि जिनके दर्शन मात्र से ही भवसागर के भय और समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं, ऐसे श्री साईनाथ महाराज को हम नमन करें । भक्तों को आत्मदर्शन कराना ही सन्तों का प्रधान कार्य है। श्री साई, जो सन्त शिरोमणि हैं, उनका तो मुख्य ध्येय ही यही है । जो उनके श्री-चरणों की शरण में जाते है, उनके समस्त पाप नष्ट होकर निश्चित ही दिन-प्रतिदिन प्रगति करते हैं । उनके श्री-चरणों का स्मरण कर पवित्र स्थानों से भक्तगण शिरडी आते और उनके समीप बैठकर श्लोक पढ़कर गायत्री-मंत्र का जाप किया करते थे । परन्तु जो निर्बल तथा सर्व प्रकार से दीन-हीन हैं और जो यह भी नहीं जानते कि भक्ति किसे कहते हैं, उनका तो केवल इतना ही विश्वास हैं कि अन्य सब लोग उन्हें असहाय छोड़कर उपेक्षा भले ही कर दें, परन्तु अनाथों के नाथ और प्रभु श्री साई मेरा कभी परित्याग न करेंगे । जिन पर वे कृपा करें, उन्हें प्रचण्ड शक्ति, नित्य-अनित्य में विवेक तथा ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है ।

वे अपने भक्तों की इच्छाएँ जानकर उन्हें पूर्ण किया करते है, इसलिये भक्तों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाया करती है और वे सदा कृतज्ञ बने

रहते हैं । हम उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर हमें समस्त कष्टों से बचा लें । जो विपत्ति-ग्रस्त प्राणी इस प्रकार श्री साई से प्रार्थना करता है, उनकी कृपा से उसे पूर्ण शान्ति तथा सुख-समृद्धि प्राप्त होती है ।

श्री हेमाडपंत कहते है कि, ‘‘हे मेरे साई ! तुम तो दया के सागर हो ।’’ यह तो तुम्हारी ही दया का फल है, जो आज यह ‘‘साई सच्चरित्र’’ भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है, अन्यथा मुझमें इतनी योग्यता कहाँ, जो ऐसा कठिन कार्य करने का दुस्साहस भी कर सकता? जब पूर्ण उत्तरदायित्व साई ने अपने ऊपर ही ले लिया तो हेमाडपंत को तिलमात्र भी भार प्रतीत न हुआ और न ही इसकी उन्हें चिन्ता ही हुई । श्री साई ने इस ग्रन्थ के रूप में उनकी सेवा स्वीकार कर ली । यह केवल उनके पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों के कारण ही सम्भव हुआ, जिसके लिए वे अपने को भाग्यशाली और कृतार्थ समझते हैं ।

नीचे लिखी कथा कपोलकल्पित नहीं, वरन् विशुद्ध अमृततुल्य है । इसे जो हृदयंगम करेगा, उसे श्री साई की महानता और सर्वव्यापकता विदित हो जाएगी, परन्तु जो वादविवाद और आलोचना करना चाहते हैं, उन्हें इन कथाओं की ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं है। यहाँ तर्क ही नहीं, वरन् प्रगाढ़ प्रेम और भक्ति की अत्यन्त अपेक्षा हैं । विद्वान् भक्त तथा श्रद्धालु जन अथवा जो अपने को साई-पद-सेवक समझते हैं, उन्हें ही ये कथाएँ रुचिकर तथा शिक्षाप्रद प्रतीत होंगी, अन्य लोगों के लिए तो वे निरी कपोल-कल्पनाएँ ही हैं । श्रीसाई के अंतरंग भक्तों को श्री साईलीलाएँ कल्पतरू के सदृश हैं । श्री साई-लीलारूपी अमृतपान करने से अज्ञानी जीवों को ज्ञान, गृहस्थाश्रमियों को सन्तोष तथा मुमुक्षुओं को एक उच्च साधन प्राप्त होता है । अब हम इस अध्याय की मूल कथा पर आते हैं ।

काका जी वैद्य

नासिक जिले के वणी ग्राम में काका जी वैद्य नाम के एक व्यक्ति रहते थे । वे श्री सप्तश्रृंगी देवी के पुजारी थे । एक बार वे विपत्तियों मे कुछ इस प्रकार ग्रसित हुए कि उनके चित्त की शांति भंग हो गई और वे बिल्कुल निराश हो उठे

। एक दिन अति व्यथित होकर देवी के मन्दिर में जाकर अन्तःकरण से वे प्रार्थना करने लगे कि ''हे देवी ! हे दयामयी ! मुझे कष्टों से शीघ्र मुक्त करो ।'' उनकी प्रार्थना से देवी प्रसन्न हो गई और उसी रात्रि को उन्हें स्वप्न में बोलीं कि, ''तु बाबा के पास जा, वहाँ तेरा मन शान्त और स्थिर हो जाएगा।'' बाबा का परिचय जानने को काका जी बड़े उत्सुक थे, परन्तु देवी से प्रश्न करने के पूर्व ही उनकी निद्रा भंग हो गई । वे सोचने लगे कि ऐसे ये कौन से बाबा हैं, जिनकी ओर देवी ने मुझे संकेत किया है । कुछ देर सोचने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्भव है कि वे त्र्यंबकेश्वर बाबा (शिव) ही हों । इसलिये वे पवित्र तीर्थ त्र्यंबक (नासिक) गए और वहाँ दस दिन व्यतीत किये । वे प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, रुद्र मंत्र का जाप कर, साथ ही साथ अभिषेक व अन्य धार्मिक कृत्य भी करने लगे । परन्तु उनका मन पूर्ववत् ही अशान्त बना रहा । तब फिर अपने घर लौटकर वे अति करूण स्वर में देवी की प्रार्थना करने लगे । उसी रात्रि में देवी ने उन्हें पुनः स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि, ''तू व्यर्थ ही त्र्यंबकेश्वर क्यों गया ? बाबा से तो मेरा अभिप्राय था शिरडी के श्री साई समर्थ।'' अब काका जी के समक्ष मुख्य प्रश्न यह उपस्थित हो गया कि वे कैसे और कब शिरडी जाकर बाबा के श्री दर्शन का लाभ उठायें । **यथार्थ में यदि कोई व्यक्ति, किसी सन्त के दर्शन को आतुर हो तो केवल सन्त ही नहीं, भगवान भी उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं । वस्तुतः यदि पूछा जाए तो सन्त और अनन्त एक ही हैं और उनमें कोई भिन्नता नहीं ।** यदि कोई कहे कि मैं स्वतः ही अमुक सन्त के दर्शन को जाऊँगा तो इसे निरे दम्भ के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? **सन्त की इच्छा के विरुद्ध उनके समीप जाकर कौन दर्शन ले सकता है ?** उनकी सत्ता के बिना वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता । **जितनी तीव्र उत्कंठा संत-दर्शन की होगी, तदनुसार ही उसकी भक्ति और विश्वास में वृद्धि होती जाएगी और उतनी ही शीघ्रता से उनकी मनोकामना भी पूर्ण होगी ।** जो निमंत्रण देता है, वह आदर आतिथ्य का प्रबन्ध भी करता है । काका जी के सम्बन्ध में सचमुच यही हुआ ।

शामा की मान्यता

जब काकाजी शिरडी यात्रा करने का विचार कर रहे थे, उसी समय उनके यहाँ एक अतिथि आया (जो कि शामा के अतिरिक्त और कोई न था) । शामा बाबा के अन्तरंग भक्तों में से थे । वे ठीक इसी समय वणी में क्यों और कैसे आ पहुँचे, अब हम इस पर दृष्टि डालें । बाल्यावस्था में वे एक बार बहुत बीमार पड़ गए थे । उनकी माता ने अपनी कुलदेवी सप्तश्रृंगी से प्रार्थना की कि यदि मेरा पुत्र नीरोग हो जाए तो मैं उसे तुम्हारें चरणों पर लाकर डालूँगी । कुछ वर्षों के पश्चात् ही उनकी माता के स्तन में दाद हो गई । तब उन्होंने पुनः देवी से प्रार्थना की कि यदि मैं रोगमुक्त हो जाऊँ तो मैं तुम्हें चाँदी के दो स्तन चढ़ाऊँगी । पर ये दोनो वचन अधूरे ही रहे। परन्तु जब वे मृत्युशैय्या पर पड़ी थीं तो उन्होंने अपने पुत्र शामा को समीप बुलाकर उन दोनों वचनों की स्मृति दिलाई तथा उन्हें पूर्ण करने का आश्वासन पाकर प्राण त्याग दिये । कुछ दिनों के पश्चात् वे अपनी यह प्रतिज्ञा भूल गए और इसे भूले पूरे तीस वर्ष व्यतीत हो गए । तभी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी शिरडी आए और वहाँ लगभग एक मास ठहरे । श्रीमान् बूटीसाहेब और अन्य लोगों को बतलायी उनकी सभी भविष्यवाणी प्रायः सही निकली, जिनसे सब को पूर्ण सन्तोष था। शामा के लघुभ्राता बापाजी ने भी उनसे कुछ प्रश्न पूछे । तब ज्योतिषी ने उन्हें बताया कि तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता ने अपनी माता को मृत्युशैय्या पर जो वचन दिये थे, उनके अब तक पूर्ण न किये जाने के कारण देवी असन्तुष्ट होकर उन्हें कष्ट पहुँचा रही हैं । ज्योतिषी की बात सुनकर शामा उन अपूर्ण वचनों की स्मृति हो आई । अब और विलम्ब करना खतरनाक समझकर उन्होंने सुनार को बुलाकर शीघ्र चाँदी के दो स्तन तैयार कराये और उन्हें मस्जिद में ले जाकर बाबा के समक्ष रख दिया तथा प्रणाम कर उन्हें स्वीकार कर वचनमुक्त करने की प्रार्थना की । शामा ने कहा कि, मेरे लिये तो सप्तश्रृंगी देवी आप ही है; परन्तु बाबा ने साग्रह कहा कि तुम इन्हें स्वयं ले जाकर देवी के चरणों मे अर्पित करो । बाबा की आज्ञा व उदी लेकर उन्होंने वणी को प्रस्थान कर दिया । पुजारी का घर पूछते-पूछते वे काका जी के पास जा पहुँचे । काका जी इस समय बाबा के दर्शनों को बड़े उत्सुक थे और ठीक ऐसे ही मौके पर शामा भी

वहाँ पहुँच गए । वह संयोग भी कैसा विचित्र था ? काकाजी ने आगन्तुक से उनका परिचय प्राप्त कर पूछा कि आप कहाँ से पधार रहे हैं ? जब उन्होंने सुना कि वे शिरडी से ही आ रहे हैं तो वे एकदम प्रेमोन्मत्त हो शामा से लिपट गए और फिर दोनों का श्री साईलीलाओं पर वार्तालाप आरम्भ हो गया । अपने वचन संबंधी कृत्यों को पूर्ण कर वे काकाजी के साथ शिरडी लौट आए । काका मस्जिद पहुँचकर बाबा के श्रीचरणों से जा लिपटे । उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी और उनका चित्त स्थिर हो गया । देवी के दृष्टांतानुसार जैसे ही उन्होंने बाबा के दर्शन किये, उनके मन की अशांति तुरन्त नष्ट हो गई और वे परम शांति का अनुभव करने लगे । वे विचार करने लगे कि कैसी अद्‌भुत शक्ति है कि बिना कोई सम्भाषण या प्रश्नोत्तर किये अथवा आशीष पाये, दर्शन मात्र से ही अपार प्रसन्नता हो रही है ! सचमुच में दर्शन का महत्व तो इसे ही कहते हैं । उनके तृषित नेत्र साई-चरणों पर स्थिर हो गए और वे अपनी जिह्वा से एक शब्द भी न बोल सके । बाबा की अन्य लीलाएँ सुनकर उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे पूर्णतः बाबा के शरणागत हो गए । सब चिन्ताओं और कष्टों को भूलकर वे परम आनन्दित हुए । उन्होंने वहाँ सुखपूर्वक बारह दिन व्यतीत किये और फिर बाबा की आज्ञा, आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर अपने घर लौट गए ।

खुशालचन्द (राहातानिवासी)

ऐसा कहते हैं कि प्रातः बेला में जो स्वप्न आता है, वह बहुधा जागृतावस्था में सत्य निकलता है । ठीक है, ऐसा ही होता होगा । परन्तु बाबा के सम्बन्ध में समय का ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था । ऐसा ही एक उदाहरण प्रस्तुत है - बाबा ने एक दिन तृतीय प्रहर काकासाहेब को ताँगा लेकर राहाता से खुशालचन्द को लाने के लिये भेजा, क्योंकि खुशालचन्द से उनकी कई दिनों से भेंट न हुई थी । राहाता पहुँच कर काकासाहेब ने यह सन्देश उन्हें सुना दिया । यह सन्देश सुनकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि दोपहर को भोजन के उपरान्त थोड़ी देर मुझे झपकी आ गई थी, तभी बाबा स्वप्न में आए और मुझे शीघ्र ही शिरडी आने को कहा । परन्तु घोड़े का उचित

प्रबन्ध न हो सकने के कारण मैंने अपने पुत्र को यह सूचना देने के लिये ही उनके पास भेजा था। जब वह गाँव की सीमा तक ही पहुँचा था, तभी आप सामने से ताँगे में आते दिखे।

वे दोनों ताँगे में बैठकर शिरडी पहुँचे तथा बाबा से भेंटकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा की यह लीला देख खुशालचन्द गद्गद् हो गए।

बम्बई के रामलाल पंजाबी

बम्बई के एक पंजाबी ब्राह्मण श्री रामलाल को बाबा ने स्वप्न में एक महन्त के वेश में दर्शन देकर शिरडी आने को कहा। उन्हें नाम ग्राम कुछ भी पता न चल रहा था। उनको श्री-दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा तो थी, परन्तु पता-ठिकाना-ज्ञात न होने के कारण बड़े असमंजस में पड़े हुये थे। जो आमंत्रण देता है, वही आने का प्रबन्ध भी करता है और अन्त में हुआ भी वैसा ही। उसी दिन सन्ध्या समय जब वे सड़क पर टहल रहे थे तो उन्होंने एक दुकान पर बाबा का चित्र टँगा देखा। स्वप्न में उन्हें जिस आकृति वाले महन्त के दर्शन हुए थे, वे इस चित्र के ही सदृश थे। पूछताछ करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह चित्र शिरडी के श्री साई समर्थ का है और तब उन्होंने शीघ्र ही शिरडी प्रस्थान कर दिया तथा जीवनपर्यन्त शिरडी में ही निवास किया।

इस प्रकार बाबा ने अपने भक्तों को अपने दर्शन के लिये शिरडी में बुलाया और उनकी लौकिक तथा पारलौकिक समस्त इच्छाएँ पूर्ण कीं।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३१

मुक्ति-दान ः

(१) संन्यासी विजयानंद (२) बालाराम मानकर (३) नूलकर (४) मेघा (५) बाघ की मुक्ति ।

इस अध्याय में हेमाडपंत बाबा के सामने कुछ भक्तों की मृत्यु तथा बाघ के प्राण-त्याग की कथा का वर्णन करते हैं ।

प्रारम्भ

मृत्यु के समय जो अंतिम इच्छा या भावना होती है, वही भवितव्यता का निर्माण करती है। श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय ८) में कहा हैं कि जो अपने जीवन के अंतिम क्षण में मुझे स्मरण करता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है तथा उस समय वह जो कुछ भी दृश्य देखता है, उसी को अन्त में पाता है । यह कोई भी निश्चयात्मक रुप से नहीं कह सकता कि उस क्षण हम केवल उत्तम विचार ही कर सकेंगे । जहाँ तक अनुभव में आया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अनेक कारणों से भयभीत होने की संभावना रहती है । इसके अनेक कारण हैं । इसलिये मन को इच्छानुसार किसी उत्तम विचार के चिंतन में ही लगाने के लिए नित्याभ्यास अत्यन्त आवश्यक है । इस कारण सभी संतों ने हरिस्मरण और जाप को ही श्रैष्ठ बताया है, ताकि मृत्यु के समय हम किसी घरेलु उलझन में न पड़ जाएँ । अतः ऐसे अवसर पर भक्तगण पूर्णतः सन्तों के शरणागत हो जाते हैं, ताकि संत, जो कि सर्वज्ञ हैं, उचित पथप्रदर्शन कर हमारी यथेष्ट सहायता करें । इसी प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

(१) विजयानन्द

एक मद्रासी संन्यासी विजयानंद मानसरोवर की यात्रा करने निकले । मार्ग में वे बाबा की कीर्ति सुनकर शिरडी आए, जहाँ उनकी भेंट हरिद्वार के सोमदेव जी स्वामी से हुई और इनसे उन्होंने मानसरोवर की यात्रा के सम्बन्ध

में पूछताछ की । स्वामीजी ने उन्हें बताया कि मानसरोवर गंगोत्री से ५०० मील उत्तर की ओर है तथा मार्ग में जो कष्ट होते हैं, उनका भी उल्लेख किया, जैसे कि बर्फ की अधिकता, ५० कोस तक भाषा में भिन्नता तथा भूटानवासियों के संशयी स्वभाव, जो यात्रियों को अधिक कष्ट पहुँचाया करते हैं । ये सब सुनकर संन्यासी का चित्त उदास हो गया और उसने यात्रा करने का विचार त्यागकर मस्जिद में जाकर बाबा के श्री चरणों का स्पर्श किया । बाबा क्रोधित होकर कहने लगे – ''इस निकम्मे संन्यासी को निकालो यहाँ से । इसका संग करना व्यर्थ है।'' संन्यासी बाबा के स्वभाव से पूर्ण अपरिचित था । उसे बड़ी निराशा हुई, परंतु वहाँ जो कुछ भी गतिविधियाँ चल रही थीं, उन्हें वह बैठे-बैठे ही देखता रहा । प्रातःकाल का दरबार लोगों से ठसाठस भरा हुआ था और बाबा को यथाविधि अभिषेक कराया जा रहा था । कोई पाद-प्रक्षालन कर रहा था तो कोई चरणों को छूकर तथा कोई तीर्थस्पर्श से अपने नेत्र तृप्त कर रहा था । कुछ लोग उन्हें चंदन का लेप लगा रहे थे तो कोई उनके शरीर में इत्र ही मल रहा था । जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर सब भक्त यह कार्य कर रहे थे । यद्यपि बाबा उसपर क्रोधित हो गए थे तो भी संन्यासी के हृदय में उनके प्रति बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया था । उसे यह स्थान छोड़ने की इच्छा ही न होती थी । दो दिन के पश्चात् ही मद्रास से पत्र आया कि उसकी माँ की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है, जिसे पढ़कर उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपनी माँ के दर्शन की इच्छा करने लगा, परन्तु बाबा की आज्ञा के बिना वह शिरडी से जा ही कैसे सकता था ? इसलिये वह हाथ में पत्र लेकर उनके समीप गया और उनसे घर लौटने की अनुमति माँगी । त्रिकालदर्शी बाबा को तो सबका भविष्य विदित ही था । उन्होंने कहा कि ''जब तुम्हें अपनी माँ से इतना मोह था तो फिर संन्यास धारण करने का कष्ट ही क्यों उठाया ? ममता या मोह भगुवा वस्त्रधारियों को क्या शोभा देता है ? जाओ, चुपचाप अपने स्थान पर रहकर कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताओ । परन्तु सावधान ! वाड़े में चोर अधिक हैं । इसलिए द्वार बंद कर सावधानी से रहना, नहीं तो चोर सब कुछ चुराकर ले जाएँगे । 'लक्ष्मी' यानी संपत्ति चंचला है और यह शरीर भी नाशवान् है, ऐसा ही समझ कर इहलौकिक व पारलौकिक समस्त पदार्थों का मोह त्याग कर

अपना कर्तव्य करो । जो इस प्रकार का आचरण कर श्रीहरि के शरणागत हो जाता है, उसका सब कष्टों से शीघ्र छुटकारा हो उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है । **जो परमात्मा का ध्यान व चिंतन प्रेम और भक्तिपूर्वक करता है, परमात्मा भी उसकी अविलम्ब सहायता करते है ।** पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारो के फलस्वरूप ही तुम यहाँ पहुँचे हो और अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन के अंतिम ध्येय पर विचार करो । इच्छारहित होकर कल से भागवत का तीन सप्ताह तक पठन-पाठन प्रारम्भ करो । तब भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारे सब दुःख दूर कर देंगे । माया का आवरण दूर होकर तुम्हें शांति प्राप्त होगी ।'' बाबा ने उसका अंतकाल समीप देखकर उसे यह उपचार बता दिया और साथ ही 'रामविजय' पढ़ने की भी आज्ञा दी, जिससे यमराज अधिक प्रसन्न होते हैं । दूसरे दिन स्नानादि तथा अन्य शुद्धि के कृत्य कर उसने लेंडी बाग के एकांत मे बैठकर भागवत का पाठ प्रारम्भ कर दिया । दूसरी बार पठन समाप्त होने पर वह बहुत थक गया और वाड़े में आकर दो दिन ठहरा, तीसरे दिन बड़े बाबा की गोद में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। बाबा ने दर्शनों के निमित्त एक दिन के लिए उसका शरीर सँभाल कर रखने के लिये कहा । तत्पश्चात् पुलिस आई और यथोचित जाँच-पड़ताल करने के उपरांत मृत शरीर को उठाने की आज्ञा दे दी । धार्मिक कृत्यों के साथ उसकी उपयुक्त स्थान पर समाधि बना दी गई । बाबा ने इस प्रकार संन्यासी की सहायता कर उसे सद्गति प्रदान की ।

(२) बालाराम मानकर

बालाराम मानकर नामक एक गृहस्थ बाबा के परम भक्त थे । जब उनकी पत्नी का देहांत हुआ तो वे बड़े निराश हो गए और सब घरबार अपने लड़के को सौंप वे शिरडी में आकर बाबा के पास रहने लगे । उनकी भक्ति देखकर बाबा उनके जीवन की गति परिवर्तित कर देना चाहते थे । इसलिये उन्होंने उन्हें बारह रुपये देकर मच्छिंद्रगढ़ (जिला सातारा) में जाकर रहने को कहा । मानकर की इच्छा उनका सान्निध्य छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की न थी, परन्तु बाबा ने उन्हें समझाया कि, ''तुम्हारे कल्याणार्थ ही मैं यह उत्तम

उपाय तुम्हें बतला रहा हूँ। इसलिये वहाँ जाकर दिन में तीन बार प्रभु का ध्यान करो।'' बाबा के शब्दों में विश्वास कर वह मच्छिंद्रगढ़ चला गया ओर वहाँ के मनोहर दृश्यों, शीतल जल तथा उत्तम पवन ओर समीपस्थ दृश्यों को देखकर उसके चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा द्वारा बतलाई विधि से उसने प्रभु का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ दिनों के पश्चात् ही उसे दर्शन प्राप्त हो गया। बहुधा भक्तों को समाधि या तुरियावस्था में ही दर्शन होते हैं, परन्तु मानकर जब तुरीयावस्था से प्राकृतावस्था में आया, तभी उसे दर्शन हुए। दर्शन होने के पश्चात् मानकर ने बाबा से अपने को वहाँ भेजने का कारण पूछा। बाबा ने कहा कि, ''शिरडी में तुम्हारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। इसी कारण मैंने तुम्हें यहाँ भेजा कि तुम्हारे चंचल मन को शांति प्राप्त हो। तुम्हारी धारणा थी कि मैं शिरडी में ही विद्यमान हूँ और साढ़ेतीन हाथ के इस पंचतत्व के पुतले के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, परन्तु अब तुम मुझे देखकर यह धारणा बना लो कि जो तुम्हारे सामने शिरडी मे उपस्थित है और जिसके तुमने दर्शन किये, वह दोनों अभिन्न हैं या नहीं। मानकर वह स्थान छोड़कर अपने निवास स्थान बाँद्रा को रवाना हो गया। वह पूना से दादर रेल द्वारा जाना चाहता था। परन्तु जब वह टिकट-घर पहुँचा तो वहाँ अधिक भीड़ के कारण वह टिकट खरीद न सका। इतने में ही एक देहाती, जिसके कंधे पर एक कम्बल पड़ा था तथा शरीर पर केवल एक लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न था, वहाँ आया और मानकर से पूछने लगा कि, ''आप कहाँ जा रहे हैं ?'' मानकर ने उत्तर दिया कि, ''मैं दादर जा रहा हूँ।'' तब वह कहने लगा कि, ''मेरा यह दादर का टिकट आप ले लिजिये, क्योंकि मुझे यहाँ एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मेरा जाना आज न हो सकेगा।'' मानकर को टिकट पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपनी जेब से वे पैसे निकालने लगे। इतने में टिकट देने वाला आदमी भीड़ में कहीं अदृश्य हो गया। मानकर ने भीड़ में पर्याप्त छानबीन की, परन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। जब तक गाड़ी नहीं छूटी, मानकर उसके लौटने की ही प्रतिक्षा करता रहा, परंतु वह अन्त तक न लौटा। इस प्रकार मानकर को इस विचित्र रूप में द्वितीय बार दर्शन हुए। कुछ दिन

अपने घर ठहरकर मानकर फिर शिरडी लौट आया और श्रीचरणों में ही अपने दिन व्यतीत करने लगा । अब वह सदैव बाबा के वचनों और आज्ञा का पालन करने लगा । अन्ततः उस भाग्यशाली ने बाबा के सम्मुख उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राण त्यागे ।

(३) तात्यासाहेब नूलकर

हेमाडपंत ने तात्यासाहेब नूलकर के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं लिखा है । केवल इतना हि लिखा है कि उनका देहांत शिरडी में हुआ था । ''साईलीला'' पत्रिका में संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था – सन् १९०९ में जिस समय तात्यासाहेब पंढरपुर में उपन्यायाधीश थे, उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर भी वहाँ के मामलतदार थे । ये दोनों आपस में बहुधा मिला करते और प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया करते थे । तात्यासाहेब सन्तों में अविश्वास करते थे, जबकि नानासाहेब की सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा थी । नानासाहेब ने उन्हें साईबाबा की लीलाएँ सुनाई और एक बार शिरडी जाकर बाबा का दर्शन-लाभ उठाने का आग्रह भी किया । वे दो शर्तों पर चलने को तैयार हुएः-

(१) उन्हें ब्राह्मण रसोईयाँ मिलना चाहिए (२) भेंट के लिए नागपुर से उत्तम संतरे होने चाहिए । शीघ्र ही ये दोनो शर्तें पूर्ण हो गईं । नानासाहेब के पास एक ब्राह्मण नौकरी के लिये आया, जिसपर भेजनेवाले को कोई पता न लिखा था । उनकी दोनों शर्ते पूरी हो गई थी । इसलिए अब उन्हें शिरडी जाना ही पड़ा । पहले तो बाबा उनपर क्रोधित हुए, परन्तु जब धीरे-धीरे तात्यासाहेब को विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही ईश्वरावतार हैं तो वे बाबा से प्रभावित हो गए और फिर जीवनपर्यन्त वहीं रहे । जब उनका अन्तकाल समीप आया तो उन्हें बाबा का पादतीर्थ भी दिया गया । उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाबा बोल उठे – ''अरे ! तात्या तो आगे चला गया । अब उसका पुनः जन्म नहीं होगा ।''

(४) मेघा

२८ वें अध्याय में मेघा की कथा का वर्णन किया जा चुका है। जब मेघा का देहांत हुआ तो सब ग्रामवासी उनकी अर्थी के साथ चले और बाबा भी उनके साथ सम्मिलित हुए तथा उन्होंने उसके मृत शरीर पर फूल बरसाये। दाह-संस्कार होने के पश्चात् बाबा की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक साधारण मनुष्य के समान उनका भी हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। उसके शरीर को फूलों से ढँककर एक निकट सम्बन्धी के सदृश रोते-पीटते वे मस्जिद को लौटे। सद्गति प्रदान करते हुए अनेक संत देखने में आए हैं, परन्तु बाबा की महानता अद्वितीय ही है। वहाँ तक कि बाघ सरीखा एक हिंसक पशु भी अपनी रक्षा के लिए बाबा की शरण में आया, जिसका वृत्तान्त निम्नलिखित है -

(५) बाघ की मुक्ति

बाबा के समाधिस्थ होने के सात दिन पूर्व शिरडी में एक विचित्र घटना घटी। मस्जिद के सामने एक बैलगाड़ी आकर रुकी, जिस पर एक बाघ जंजीरों से बँधा हुआ था। उसका भयानक मुख गाड़ी के पीछे की ओर था। वह किसी अज्ञात पीड़ा या दर्द से दुःखी था। उसके पालक तीन दरवेश थे, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर उसका नित्य प्रदर्शन करते और इस प्रकार यथेष्ट द्रव्य संचय करते थे, और यही उनकी जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन था। उन्होंने उसकी चिकित्सा के सभी प्रयत्न किये, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ। कहीं से बाबा की कीर्ति उनके कानों मे पड़ गई और वे बाघ को लेकर साई दरबार में आए। हाथों से जंजीरें पकड़कर उन्होंने बाघ को मस्जिद के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह स्वभावतः ही भयानक था, पर रुग्ण होने के कारण वह बैचेन था। लोग भय और आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगे। दरवेश अन्दर आए और बाबा को सब होल बताकर उनकी आज्ञा लेकर वे बाघ को उनके सामने लाये। जैसे ही वह सीढ़ियों के समीप पहुँचा, वैसे ही

बाबा के तेज पुंज स्वरूप का दर्शन कर एक बार पीछे हट गया और अपनी गर्दन नीचे झुका दी। जब दोनों की दृष्टि आपस में एक हुई तो बाघ सीढ़ी पर चढ़ गया और प्रेमपूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर निहारने लगा। उसने अपनी पूँछ हिलाकर तीन बार जमीन पर पटकी और फिर तत्क्षण ही अपने प्राण त्याग दिये। उसे मृत देखकर दरवेशी बड़े निराश और दुःखी हुए। तत्पश्चात् जब उन्हें बोध हुआ तो उन्होंने सोचा कि प्राणी रोगग्रस्त था ही और उसकी मृत्यु भी सन्निकट ही थी। चलो, उसके लिए अच्छा ही हुआ कि बाबा सरीखें महान् संत के चरणों में उसे सद्गति प्राप्त हो गई। वह दरवेशियों का ऋणी था और जब वह ऋण चुक गया तो वह स्वतंत्र हो गया और जीवन के अन्त में उसे साई चरणों में सद्गति प्राप्त हुई। **जब कोई प्राणी संतों के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्राण त्याग दे तो उसकी मुक्ति हो जाती है।** पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के अभाव में ऐसा सुखद अंत होना कैसे संभव है ?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय-३२

गुरु और ईश्वर की खोज, उपवास अमान्य, बाबा के सरकार।

इस अध्याय में हेमाडपंत ने दो विषयों का वर्णन किया है।

(१) किस प्रकार बाबा की अपने गुरु से भेंट हुई और उनके द्वारा ईश्वरदर्शन की प्राप्ति कैसे हुई। (२) श्रीमती गोखले, जो तीन दिन से उपवास कर रही थीं, को पूरनपोली का भोजन कैसे कराया।

प्रस्तावना

श्री हेमाडपंत वटवृक्ष का उदाहरण देकर इस गोचर संसार के स्वरूप का वर्णन करते हैं। गीता के अनुसार वटवृक्ष की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे को चारों ओर फैली हुई हैं। ''उर्ध्वमूलमधःशाखम्'' (गीता पंद्रहवाँ अध्याय, श्लोक १)। इस वृक्ष के गुण, पोषक और अंकुर, इंद्रियों के भोग्य पदार्थ हैं। जड़ें जिनका कारणीभूत कर्म हैं, वे सृष्टि के मानवों की ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की रचना बड़ी ही विचित्र हैं। न तो इसके आकार, उद्‌गम और अन्त का ही भान होता है और नही इसके आधार का। इस कठोर जड़ वाले संसार रूपी वृक्ष को, नष्ट करने के हेतु किसी बाह्य मार्ग का अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इस असार-संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो। इस पथ पर अग्रसर होने के लिए किसी योग्य दिग्दर्शक (गुरु) की नितांत आवश्यकता है। **चाहे कोई कितना ही विद्वान अथवा वेद और वेदांत में पारंगत क्यों न हो, वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि उसकी सहायतार्थ कोई योग्य पथप्रदर्शक न मिल जाए, जिसके पदचिन्हों का अनुसरण करने से ही मार्ग में मिलने वाले गह्वरों, खंदकों तथा हिंसक प्राणियों के भय से मुक्त हुआ जा सकता है,** और इस विधि से ही

संसार-यात्रा सुगम तथा कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सकती है। इस विषय में बाबा का अनुभव, जो उन्होंने स्वयं बतलाया, वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम उसका ध्यानपूर्वक अनुसरण करें तो हमें निश्चय ही श्रद्धा, भक्ति और मुक्ति प्राप्त होगी।

अन्वेषण

''एक समय हम चार सहयोगी मिलकर धार्मिक एवं अन्य पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर हम लोग ब्रह्म के मूलस्वरूप पर विचार करने लगे। एक ने कहा कि, हमें स्वयं की ही जागृति करनी चाहिए, दूसरों पर निर्भर रहना हमें उचित नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा, जिसने मनोनिग्रह कर लिया है, वह धन्य है, हमें अपने संकीर्ण विचारों व भावनाओं से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में हमारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तीसरे ने कहा कि, यह संसार सदैव परिवर्तनशील है। केवल निराकार ही शाश्वत है। अतः हमें सत्य और असत्य में विवेक करना चाहिए। तब चौथ (स्वयं बाबा) ने कहा कि **केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हमें तो अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।** दृढ़ विश्वास और पूर्ण निष्ठापूर्वक हमें अपना तन, मन, धन और पंचप्राणादि सर्वव्यापक गुरुदेव को अर्पण कर देने चाहिए। गुरु भगवान् है, सबका पालनहार है।''

इस प्रकार वादविवाद के उपरांत हम चारों सहयोगी वन में, ईश्वर की खोज पर निकले। हम चार विद्वान् बिना किसी से सहायता लिए केवल अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही ईश्वर की खोज करना चाहते थे। मार्ग में हमें एक बंजारा मिला, जिसने हम लोगों से पूछा कि, ''हे सज्जनों ! इतनी धूप में आप लोंग किस ओर प्रस्थान कर रहे हैं ?'' प्रत्युत्तर में हम लोगों ने कहा कि, ''वन की ओर !'' उसने पुनः पूछा, ''कृपया यह तो बतलाइये कि वन की ओर जाने का उद्देश्य क्या है?'' हम लोगों ने उसे टालमटोल वाला उत्तर दे दिया। हम लोगों को निरुद्देश्य सघन भयानक जंगलों में भटकते देखकर उसे दया आ गई। तब

उसने अति विनम्र होकर हम लोगों से निवेदन किया कि, ''आप अपनी गुप्त खोज का हेतु चाहे मुझे न बतलायें, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि मध्यान्हके प्रचण्ड मार्तण्ड की तीव्र किरणों की उष्णता से आपल लोग अधिक कष्ट पा रहे हैं। कृपया यहाँ पर कुछ क्षण विश्राम कर जलपान कर लीजिए। आप लोगों को सह्रदय तथा नम्र होना चाहिए। बिना पथ-प्रदर्शक के इस अपरिचित भयानक वन में भटकते फिरने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप लोगों की तीव्र इच्छा ऐसी ही है तो कृपया किसी योग्य पथ-प्रदर्शक को साथ ले लें।'' उसकी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग आगे बढ़े। हम लोगों ने विचार किया कि हम स्वयं ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हैं, तब फिर हमें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। जंगल बहुत विशाल और पथहीन था। वृक्ष इतने ऊँचे और घने थे कि सूर्य की किरणों का भी वहाँ पहुँच सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ कि हम मार्ग भूल गए और बहुत समय तक यहाँ-वहाँ भटकते रहे। भाग्यवश हम लोग उसी स्थान पर पुनः जा पहुँचे जहाँ से पहले प्रस्थान किया था। तब वही बंजारा हमें पुनः मिला और कहने लगा कि, ''अपने चातुर्य पर विश्वास कर आप लोगों को पथ की विस्मृति हो गई है। प्रत्येक कार्य में चाहे वह बड़ा हो या छोटा, मार्ग-दर्शक आवश्यक है। ईश्वर-प्रेरणा के अभाव में सत्पुरुषों से भेट होना संभव नहीं। **भूखे रहकर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई आग्रहपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार न करो। भोजन तो भगवान का प्रसाद है, उसे ठुकराना उचित नहीं। यदि कोई भोजन के लिए आग्रह करे तो उसे अपनी सफलता का प्रतीक जानो।**'' इतना कहकर उसने भोजन करने का पुनः अनुरोध किया। फिर भी हम लोगों ने उसके अनुरोध की उपेक्षा कर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। उसके सरल और गूढ़ उपदेशों की ओर ध्यान दिए बिना ही मेरे तीन साथियों ने आगे प्रस्थान कर दिया। अब पाठक ही अनुमान करें कि वे लोग कितने अहंकारी थे। मैं क्षुधा और तृषा से अत्यंत व्याकुल था ही, बंजारे के अपूर्व प्रेम ने भी मुझे आकर्षित कर लिया। यद्यपि हम लोग अपने को अत्यंत विद्वान समझते थे, परन्तु दया एवं कृपा किसे कहते

हैं, उससे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे। बंजारा था तो एक शुद्र, अनपढ़ और गँवार, परन्तु उसके हृदय में महान् दया थी, जिसने बार-बार भोजन के लिए आग्रह किया। **जो दूसरों पर निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, सचमुच में वे ही महान् है।** मैंने सोचा कि इसका आग्रह स्वीकार कर लेना ज्ञान-प्राप्ति के हेतु शुभ आवाहन हैं, और मैंने इसी कारण उसके दिये हुए रूखे-सूखे भोजन को आदर व प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

क्षुधा-निवारण होते ही क्या देखता हूँ कि गुरुदेव तुरंत ही समक्ष प्रगट हो गए और प्रश्न करने लगे कि, ''ये सब क्या हो रहा था ?'' घटित घटना मैंने तुरंत ही उन्हें सुना दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि, ''**मै तुम्हारे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा, परंतु जिसका विश्वास मुझ पर होगा, सफलता केवल उसी को प्राप्त होगी।** मेरे तीनों सहयोगी तो उनके वचनों पर अविश्वास कर वहाँ से चले गए। तब मैंने उन्हें आदरसहित प्रणाम किया और उनकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे मुझे एक कुएँ के समीप ले गए और रस्सी से मेरे पैर बाँधकर मुझे कुएँ में उलटा लटका दिया। मेरा सिर नीचे और पैर ऊपर थे। मेरा सिर जल से लगभग तीन फुट की ऊँचाई पर था, न मैं हाथों के द्वारा जल ही छू सकता था और न मूँह में ही उसके जा सकने की कोई सम्भावना थी। मुझे इस प्रकार उलटा लटका कर वे न जाने कहाँ चले गए। लगभग चार-पाँच घंटो के उपरांत वे लौटे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही कुएँ से बाहर निकाला। फिर वे मुझसे पूछने लगे कि तुम्हें वहाँ कैसा अनुभव हो रहा था ? मैंने कहा कि, ''मैं परम आनन्द का अनुभव कर रहा था। मेरे समान मूर्ख प्राणी भला ऐसे आनंद का वर्णन कैसे कर सकता है।'' मेरा उत्तर सुन कर मेरे गुरुदेव अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगाकर मेरी सराहना की और मुझे अपने संग ले लिया। एक चिड़िया अपने बच्चों की जितनी सावधानी से लालन पालन करती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरा भी पालन किया। उन्होंने मुझे अपनी शाला में स्थान दिया। कितनी सुन्दर थी वह शाला ! वहाँ मुझे अपने माता-पिता की भी विस्मृति हो गई। मेरे समस्त अन्य आकर्षण दूर हो गए और मैंने सरलतापूर्वक बन्धनों से

मुक्ति पाई। मुझे सदा ऐसा ही लगता था कि उनके हृदय से ही चिपके रहकर उनकी ओर निहारा करूँ। यदि उनकी भव्य मूर्त्ति मेरी दृष्टि में न समाती तो मैं अपने को नेत्रहीन होना ही अधिक श्रेयस्कर समझता ! ऐसी प्रिय थी वह शाला कि वहाँ पहुँचकर कोई भी कभी खाली हाथ नहीं लौटा। मेरी समस्त निधि, घर, सम्पत्ति, माता, पिता या क्या कहूँ, वे ही मेरे सर्वस्व थे। मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मों को छोड़कर मेरे नेत्रों में केन्द्रित हो गईं और मेरे नेत्र उन पर। मेरे लिये तो गुरु ऐसे हो चुके थे कि दिन-रात मैं उनके ही ध्यान में निमग्न रहता था। मुझे किसी भी बात की सुध न थी। इस प्रकार ध्यान और चिंतन करते हुये मेरा मन और बुद्धि स्थिर हो गई। मैं स्तब्ध हो गया और उन्हें मानसिक प्रणाम करने लगा। अन्य और भी आध्यात्मिक केन्द्र है, जहाँ एक भिन्न ही दृश्य देखने में आता है। साधक वहाँ ज्ञान प्राप्त करने को जाता है तथा द्रव्य और समय का अपव्यय करता है। कठोर परिश्रम भी करता है, परन्तु अन्त में उसे पश्चाताप ही हाथ लगता है। वहाँ गुरु अपने गुप्त ज्ञान-भंडार का अभिमान प्रदर्शित करते है और अपने को निष्कलंक बतलाते हैं। वे अपनी पवित्रता और शुद्धता का अभिनय तो करते हैं, परन्तु उनके अन्तःकरण में दया लेशमात्र भी नहीं होती है। वे उपदेश अधिक देते हैं और अपनी कीर्ति का स्वयं ही गुणगान करते हैं, परन्तु उनके शब्द हृदयवेधी नहीं होते, इसलिए साधकों को संतोष प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक आत्म-दर्शन का प्रश्न हैं, वे उससे कोसों दूर होते हैं। इस प्रकार के केंद्र साधकों को उपयोगी कैसे सिद्ध हो सकते हैं और उनसे किसी उन्नति की आशा कोई कहाँ तक कर सकता है? जिन गुरु के श्री चरणों का मैंने अभी वर्णन किया है, वे भिन्न प्रकार के ही थे। केवल उनकी कृपा-दृष्टि से मुझे स्वतः ही अनुभूति प्राप्त हो गई तथा मुझे न कोई प्रयास और न ही कोई विशेष अध्ययन करना पड़ा। मुझे किसी भी वस्तु के खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वरन् प्रत्येक वस्तु मुझे दिन के प्रकाश के समान उज्ज्वल दिखाई देने लगी। केवल मेरे वे गुरु ही जानते हैं कि किस प्रकार उनके द्वारा कुएँ में मुझे उलटा लटकाना मेरे लिए परमानंद का कारण सिद्ध हुआ।

उन चार सहयोगियों में से एक महान् कर्मकांडी था। किस प्रकार कर्म करना और उससे अलिप्त रहना, यह उसे भली भाँति ज्ञात था। दूसरा ज्ञानी था, जो सदैव ज्ञान के अहंकार में चूर रहता था। तीसरा ईश्वर-भक्त था जो कि अनन्य भाव से भगवान् के शरणागत हो चुका था तथा उसे ज्ञात था कि ईश्वर ही कर्ता है। जब वे इस प्रकार विचार-विनिमय कर रहे थे, तभी ईश्वर संबंधी प्रश्न उठ पड़ा तथा वे बिना किसी से सहायता प्राप्त किए, अपने स्वतंत्र ज्ञान पर निर्भर रहकर ईश्वर की खोज में निकल पड़े। श्री साई, जो विवेक और वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थे, उन चारो लोगों में सम्मिलित थे। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि जब साई स्वयं ही ब्रह्म के अवतार थे, तब वे उन लोगों के साथ क्यों सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने ऐसा आचरण किया। स्वयं अवतार होते हुए भी और यह दृढ़ धारणा कर कि अन्न ही ब्रह्म है, उन्होंने एक क्षुद्र बंजारे के भोजन को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा बंजारे के भोजन के आग्रह की उपेक्षा करने और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करले वालों की क्या दशा होती है, इसका उनके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रुति (तैत्तिरीय उपनिषद्) का कथन है कि हमें माता, पिता तथा गुरु का आदरसहित पूजन कर धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। ये चित्त-शुद्धि के मार्ग हैं और **जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है।** आत्मा इंद्रियों, मन और बुद्धि के परे है। इस विषय में ज्ञान और तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल गुरु की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है। धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से हो सकती है, परन्तु **मोक्ष की प्राप्ति तो केवल गुरुकृपा से ही सम्भव है।** श्री साई के दरबार में तरह-तरह के लोगों का दर्शन होता था। देखो, ज्योतिषी लोग आ रहे हैं और भविष्य का बखान कर रहें हैं। दूसरी ओर राजकुमार, श्रीमान्, सम्पन्न और निर्धन, संन्यासी, योगी और गवैये दर्शनार्थ चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि एक अतिशुद्र भी दरबार में आता है और प्रणाम करने के पश्चात् कहता है कि, ''साई ही मेरे माँ या बाप हैं, और वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मेरा छुटकारा कर

देंगे ।'' और भी अनेकों – तमाशा करने वाले, कीर्तन करने वाले, अंधे, पंगु, नाथपन्थी, नर्तक व अन्य मनोरंजन करनेवाले दरबार में आते थे, जहाँ उनका उचित मान किया जाता था और इसी प्रकार उपयुक्त समय पर, वह बंजारा भी प्रकट हुआ और जो अभिनय उसे सौंपा गया था, उसने उसको पूर्ण किया ।

हमारे विचार से कुएँ में ४-५ घंटे उलटे लटके रहना – इसे सामान्य घटना नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई बिरला ही होगा, जो इस प्रकार इनते अधिक समय तक, रस्सी से लटकाये जाने पर कष्ट का अनुभव न कर परमानंद का अनुभव करे । इसके विपरीत उसे पीड़ा होने की ही संभावना अधिक है । ऐसा प्रतीत होता है कि समाधि-अवस्था का ही यहाँ चित्रण किया गया है । आनंद दो प्रकार के होते हैं – प्रथम ऐन्द्रिक और द्वितीय आध्यात्मिक । ईश्वर ने हमारी इंद्रियों व तन मन की प्रवृत्तियों की रचना बाह्यमुखी की है और जब वे (इंद्रियाँ और मन) अपने विषयपदार्थों में संलग्न होती हैं, तब हमें इन्द्रिय-चैतन्यता प्राप्त होती है, न कि परमानंद का । जब इन्द्रियों और मन को उनके विषय पदार्थों से हटाकर अंतर्मुख कर आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब हमें आध्यात्मिक बोध होता है और उस समय के आनंद का मुख से वर्णन नहीं किया जा सका । ''मैं परमानंद में था तथा उस समय का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ?'' इन शब्दों से ध्वनित होता है कि गुरु ने उन्हें समाधि अवस्था में रखकर चंचल इन्द्रियों और मनरूपी जल से दूर रखा ।

उपवास और श्रीमती गोखले

बाबा ने स्वयं कभी उपवास नहीं किया, न ही उन्होंने दूसरों को करने दिया । उपवास करने वालों का मन कभी शांत नहीं रहता, तब उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे संभव है ? प्रथम आत्मा की तृप्ति होना आवश्यक है । **भूखे रहकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती ।** यदि शरीर में कुछ अन्न की ऊर्जा न हो तो हम कौन सी आँख से ईश्वर को देखेंगे, किस जिह्वा से उनकी महानता का वर्णन करेंगे और किन कानों से उसका श्रवण करेंगे । सारांश यह कि जब

समस्त इंद्रियों को यथेष्ट खुराक व शांति मिलती है, तथा जब वे बलिष्ट रहती है, तब ही हम भक्ति और ईश्वर-प्राप्ति की अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, इसलिए **न तो हमें उपवास करना चाहिए और न ही अधिक भोजन। भोजन में संयम रखना शरीर और मन दोनों के लिए उत्तम है।**

श्रीमती काशीबाई कानिटकर (श्री साईबाबा की एक भक्त) से परिचयपत्र लेकर श्रीमती गोखले, दादा केलकर के पास शिरडी आयीं। वे यह दृढ़ निश्चय कर के आयी थीं कि बाबा के श्री चरणों में बैठकर तीन दिन उपवास करूँगी। उनके शिरडी पहुँचने के एक दिन पूर्व ही बाबा ने दादा केलकर से कहा कि, ''मै शिमगा (होली) के दिनों में अपने बच्चों को भूखा नहीं देख सकता हूँ। यदि उन्हें भूखे रहना पड़ा तो मेरे यहाँ होने का लाभ ही क्या है ?'' दूसरे दिन जब वह महिला दादा केलकर के साथ मस्जिद में जाकर बाबा के चरण-कमलों के समीप बैठी तो तुरंत बाबा ने कहा, ''**उपवास की आवश्यकता ही क्या हैं ?** दादा भट्ट के घर जाकर पूरनपोली तैयार करो। अपने बच्चों को खिलाओ और स्वयं खाओ।'' वे होली के दिन थे और इस समय श्रीमती केलकर मासिक धर्म से थीं। दादा भट्ट के घर में रसोई बनाने के लिए कोई न था और इसलिए बाबा की युक्ति बड़ी सामयिक थी। श्रीमती गोखले ने दादा भट्ट के घर जाकर भोजन तैयार किया और दूसरों को भोजन कराकर स्वयं भी खाया। कितनी सुंदर कथा है और कितनी सुंदर उसकी शिक्षा।

बाबा के सरकार

बाबा ने अपने बचपन की एक कहानी का इस प्रकार वर्णन किया -

जब मैं छोटा था, तब जीविका उपार्जनार्थ मैं बीडगाँव आया। वहाँ मुझे ज़री का काम मिल गया और मैं पूर्ण लगन व उम्मीद से अपना काम करने लगा। मेरा काम देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे साथ तीन लड़के और भी काम करते थे। पहले का काम ५० रुपये का, दूसरे का १०० रुपये का और तिसरे का १५० रुपये का हुआ। मेरा काम उन तीनों से दुगुना हो गया।

मेरी निपुणता देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ । वह मुझे अधिक चाहता था और मेरी प्रशंसा भी करता रहता था । उसने मुझे एक पूरी पोशाक प्रदान की, जिसमें सिर के लिए एक पगड़ी और शरीर के लिए एक शेला भी था । मेरे पास वह पोशाक वैसी ही रखी रही । मैंने सोचा कि जो कुछ मनुष्य-निर्मित है, वह नाशवान् और अपूर्ण है, परन्तु जो कुछ मेरे सरकार द्वारा प्राप्तत होगा, वही अन्त तक रहेगा । किसी भी मनुष्य के उपहार की उससे समानता संभव नहीं है । मेरे सरकार कहते हैं ''ले जाओ''। लोग मेरे पास आकर कहते हैं, ''मुझे दो, मुझे दो।'' परन्तु जो कुछ मै कहता हूँ, उसके अर्थ पर कोई ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करता । मेरे सरकार का खजाना (आध्यात्मिक भंडार) भरपूर है और वह बह रहा है । मै तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भरकर ले जाओ । जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिए । मेरे फकीर की कला, मेरे भगवान् की लीला और मेरे सरकार का बर्ताव सर्वथा अद्वितीय है । मेरा क्या, यह शरीर मिट्टी में मिलकर सारे भूमंडल में व्याप्त हो जाएगा तथा फिर यह अवसर कभी प्राप्त न होगा। मैं चाहे कहीं जाता हूँ या कहीं बैठता हूँ, परन्तु माया फिर भी मुझे कष्ट पहुँचाती है । इतना होने पर भी मैं अपने भक्तों के कल्याणार्थ सदैव उत्सुक ही रहता हूँ । **जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को याद रखेगा, उसे मौलिक आनन्द की प्राप्ति होगी ।**

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३३

उदी की महिमा (भाग १)

बिच्छू का डंक, प्लेग की गाँठ, जामनेर का चमत्कार, नारायण राव, बाला बुवा सुतार, अप्पा साहेब कुलकर्णी, हरिभाऊ कर्णिक।

पूर्व अध्याय में गुरु की महानता का दिग्दर्शन कराया गया है। अब इस अध्याय में उदी के माहात्म्य का वर्णन किया जाएगा।

प्रस्तावना

आओ, पहले हम सन्तों के चरणों में प्रणाम करें, जिनकी कृपादृष्टि मात्र से ही समस्त पापसमूह भस्म होकर हमारे आचरण के दोष नष्ट हो जाएँगे। उनसे वार्तालाप करना हमारे लिये शिक्षाप्रद और अति आनंददायक है। वे अपने मन में "**यह मेरा और वह तुम्हारा**" ऐसा कोई भेद नहीं रखते। इस प्रकार के भेदभाव की कल्पना उनके हृदय में कभी भी उत्पन्न नहीं होती। उनका ऋण इस जन्म में तो क्या, अनेक जन्मों में भी न चुकाया जा सकेगा।

उदी (विभूति)

यह सर्वविदित है कि बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे तथा उस धन राशि में से दान करने के पश्चात् जो कुछ भी शेष बचता, उससे वे ईंधन मोल लेकर सदैव धूनी प्रज्ज्वलित रखते थे। इसी धूनी की भस्म 'उदी' कहलाती है। भक्तों के शिरडी से प्रस्थान करते समय यह भस्म मुक्तहस्त से उन सभी को वितरित कर दी जाती थी।

इस उदी से बाबा हमें क्या शिक्षा देते हैं ? उदी वितरण कर बाबा हमें शिक्षा देते हैं कि इस अंगारे के समान गोचर होने वाले ब्रह्मांड का प्रतिबिम्ब भस्म के ही समान है। हमारा तन भी ईंधन सदृश ही है, अर्थात् पंचभूतादि से निर्मित है, जो कि सांसारिक भोगादि के उपरांत विनाश को प्राप्त होकर भस्म

के रूप में परिणत हो जाएगा ।

भक्तों को इस बात की स्मृति दिलाने के हेतु ही कि अन्त में यह देह भस्म सदृश होने वाली है, बाबा उदी वितरण किया करते थे । बाबा इस उदी के द्वारा एक और भी शिक्षा प्रदान करते हैं कि इस संसार में ब्रह्म ही सत्य और जगत् मिथ्या है । इस संसार में वस्तुतः कोई किसी का पिता, पुत्र अथवा स्त्री नहीं है । हम जगत् में अकेले ही आए हैं और अकेले ही जाएँगे । पूर्व में यह देखने में आ चुका है और अभी भी अनुभव किया जा रहा है कि इस उदी ने अनेक शारीरिक और मानिसक रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया हैं । यथार्थ में बाबा तो भक्तों को दक्षिणा और उदी द्वारा सत्य और असत्य में विवेक तथा असत्य के त्याग का सिद्धांत समझाना चाहते थे । इस उदी से वैराग्य और दक्षिणा से त्याग की शिक्षा मिलती है । इन दोनों के अभाव में इस मायारूपी भवसागर को पार करना कठिन है, इसलिए बाबा दूसरे के भोग स्वयं भोग कर दक्षिणा स्वीकार कर लिया करते थे । जब भक्तगण विदा लेते, तब वे प्रसाद के रूप में उदी देकर और कुछ उनके मस्तक पर लगाकर अपना वरद्-हस्त उनके मस्तक पर रखते थे । जब बाबा प्रसन्न चित्त होते, तब वे प्रेमपूर्वक गीत गाया करते थे । ऐसा ही एक भजन उदी के सम्बन्ध में भी है । भजन के बोल हैं ''रमते राम आओ जी आओ जी, उदिया की गोनियाँ लाओजी।'' बाबा यह शुद्ध और मधुर स्वर में गाते थे ।

यह सब तो उदी के आध्यात्मिक प्रभाव के सम्बन्ध में हुआ, परन्तु उसमें भौतिक प्रभाव भी था, जिससे भक्तों को स्वास्थ्य, समृद्धि, चिंतामुक्ति एवं अनेक सांसारिक लाभ प्राप्त हुए । इसलिए उदी हमें आध्यात्मिक और सांसारिक लाभ पहुँचाती है । अब हम उदी की कथाएँ प्रारम्भ करते हैं ।

बिच्छू का डंक

नासिक के श्री नारायण मोतीराम जानी बाबा के परम भक्त थे । बाबा के अन्य भक्त रामचंद्र वामन मोडक के अधीन काम करते थे । एक बार वे अपनी माता के साथ शिरडी गए तथा बाबा के दर्शन का लाभ उठाया । तब बाबा ने उनके माँ से कहा कि, ''अब तुम्हारे पुत्र को नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय करना चाहिए ।'' कुछ दिनों में बाबा के वचन सत्य निकले । नारायण

जानी ने नौकरी छोड़कर एक उपाहारगृह ''आनंदाश्रम'' चलाना प्रारम्भ कर दिया, जो अच्छी तरह चलने लगा। एक बार नारायण राव के एक मित्र को बिच्छू ने काट लिया, जिससे उसे असहनीय पीड़ा होने लगी। ऐसे प्रसंगों में उदी तो रामबाण प्रसिद्ध ही है, काटने के स्थान पर केवल उसे लगा ही तो देना है। नारायण ने उदी खोजी, परन्तु कहीं न मिल सकी। उन्होंने बाबा के चित्र के समक्ष खड़े होकर उनसे सहायता की प्रार्थना की और उनका नाम लेते हुए, उनके चित्र के सम्मुख जलती हुई अगरबत्ती में से एक चुटकी भस्म बाबा की उदी मानकर बिच्छू के डंक मारने के स्थान पर लेप कर दिया। वहाँ से उनके हाथ हटाते ही पीड़ा तुरंत मिट गई और दोनों अति प्रसन्न होकर चले गए।

प्लेग की गाँठ

एक समय एक भक्त बाँद्रा में था। उसे वहाँ पता चला कि उसकी लड़की, जो दूसरे स्थान पर है, प्लेगग्रस्त है और उसे गिल्टी निकल आई है। उनके पास उस समय उदी नहीं थी, इसलिए उन्होंने नाना चाँदोरकर के पास उदी भेजने के लिये सूचना भेजी। नानासाहेब ठाणे रेलवे स्टेशन के समीप रास्ते में ही थे। जब उनके पास यह सूचना भेजी। नानासाहेब ठाणे रेलवे स्टेशन के समीप रास्ते में ही थे। जब उनके पास यह सूचना पहुँची, वे अपनी पत्नीसहित कल्याण जा रहे थे। उनके पास भी उस समय उदी नहीं थी। इसलिए उन्होंने सड़क पर से कुछ धूल उठाई और श्री साईबाबा का ध्यान कर उनसे सहायता की प्रार्थना की तथा उस धूल को अपनी पत्नी के मस्तक पर लगा दिया। वह भक्त खड़े-खड़े यह सब नाटक देख रहा था। जब वह घर लौटा तो उसे जानकर अति हर्ष हुआ कि जिस समय से नानासाहेब ने ठाणे रेलवे स्टेशन के पास बाबा से सहायता करने की प्रार्थना की, तभी से उनकी लड़की की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो चला था, जो गत तीन दिनों से पीड़ित थी।

जामनेर का विलक्षण चमत्कार

सन् १९०४-०५ में नानासाहेब चाँदोरकर खानदेश जिले के जामनेर में मामलतदार थे। जामनेर शिरडी लगभग २५०-३०० मील दूर है। उनकी

पुत्री मैनाताई गर्भावस्था में थी और प्रसव काल समीप ही था। उसकी स्थिति अति गम्भीर थी। २-३ दिनों से उसे प्रसव-वेदना हो रही थी। नानासाहेब ने सभी संभव प्रयत्न किये, परन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुए। तब उन्होंने बाबा का ध्यान किया और उनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय शिरडी में एक रामगीर बुवा, जिन्हें बाबा बापूगीर बुवा के नाम से पुकारते थे, अपने घर खानदेश को लौट रहे थे। बाबा ने उन्हें अपने समीप बुलाकर कहा कि तुम घर लौटते समय थोड़ी देर के लिए जामनेर में उतरकर यह उदी और आरती श्री नानासाहेब को दे देना। रामगीर बुवा बोले कि, ''मेरे पास केवल दो ही रुपये हैं, जो कठिनाई से जलगाँव तक के किराये को ही पर्याप्त होंगे। फिर ऐसी स्थिति में जलगाँव से ३५ मील दूर और आगे जाना मेरे लिए कैसे संभव होगा ?'' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''चिंता की कोई बात नहीं। तुम्हारी सब व्यवस्था हो जाएगी।'' तब बाबा ने शामा से माधव अडकर द्वारा रचित प्रसिद्ध आरती की प्रतिलिपि कराई और उदी के साथ नानासाहेब के पास भेज दी। बाबा के वचनों पर विश्वास कर रामगीर बुवा ने शिरडी से प्रस्थान कर दिया और पौने तीन बजे रात्रि को जलगाँव पहुँचे। इस समय उनके पास केवल दो आने ही शेष थे, जिससे वे बड़ी दुविधा में थे। इतने में ही एक आवाज़ उनके कानों मे पड़ी कि, ''शिरडी से आए हुए बापूगीर बुवा कौन हैं ?'' उन्होंने आगे बढ़कर बतलाया कि, ''मैं शिरडी से आ रहा हूँ और मेरा ही नाम बापूगीर बुवा है।'' उस चपरासी ने, जो कि अपने आपको नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा भेजा हुआ बतला रहा था, उन्हें बाहर लाकर एक शानदार ताँगे में बिठाया, जिसमें दो सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। अब वे दोनों रवाना हो गए। ताँगा रोककर घोड़ों को पानी पिलाया। इसी बीच चपरासी ने रामगीर बुवा से थोड़ा सा नाश्ता करने को कहा। उसकी दाढ़ी-मूछें तथा अन्य वेशभूषा से उसे मुसलमान समझकर उन्होंने जलपान करना अस्वीकार कर दिया। तब उस चपरासी ने कहा कि मै गढ़वाल का क्षत्रिय वंशी हिन्दू हूँ। यह सब नाश्ता नानासाहेब ने आपके लिए ही भेजा है तथा उसमें आपको कोई आपति और संदेह नहीं करना चाहिए। तब वे दोनों जलपान कर पुनः रवाना हुए और सूर्योदय काल में जामनेर पहुँच गए।

रामगीर बुवा लघुशंका को गए और थोड़ी देर में जब वे लौट कर आए तो क्या देखते हैं कि वहाँ न तो ताँगा था, न ताँगेवाला और न ही ताँगे के घोड़े । उनके मुख से एक शब्द भी न निकल रहा था । वे समीप ही कचहरी में पूछताछ करने गए और वहाँ उन्हें पता चला कि इस समय मामलतदार घर पर ही हैं । वे नानासाहेब के घर गए और उन्हें बतलाया कि, ''मै शिरडी से बाबा की आरती और उदी लेकर आ रहा हूँ ।'' उस समय मैनाताई की स्थिति बहुत ही गंभीर थी और सभी को उसके लिए बड़ी चिंता थी । नानासाहेब ने अपनी पत्नी को बुलाकर उदी को जल में मिलाकर अपनी लड़की को पिला देने और आरती करने को कहा। उन्होंने सोचा कि बाबा की सहायता बड़ी सामायिक है । थोड़ी देर में ही समाचार प्राप्त हुआ कि प्रसव कुशलतापूर्वक होकर समस्त पीड़ा दूर हो गई है । जब रामगीर बुवा ने नानासाहेब को चपरासी, ताँगा तथा जलपान आदि रेलवे स्टेशन पर भेजने के लिए धन्यवाद दिया तो नानासाहेब को यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि मैंने तो कोई ताँगा, न चपरासी ही भेजा था और न ही मुझे शिरडी से आपके पधारने की कोई पूर्वसूचना ही थी !

ठाणे के सेवानिवृत्त श्री. बी. व्ही. देव ने नानासाहेब चाँदोरकर के पुत्र बापूसाहेब चाँदोरकर और शिरडी के रामगीर बुवा से इस सम्बन्ध में बड़ी पूछताछ की और फिर संतुष्ट होकर श्री साईलीला पत्रिका, भाग १३ (नं. ११,१२,१३) में गद्य और पद्य में एक सुन्दर रचना प्रकाशित की । श्री बी. व्ही. नरसिंह स्वामी ने भी (१) मैनाताई (भाग ५, पृष्ठ १४), (२) बापूसाहेब चाँदोरकर (भाग २०, पृष्ठ ५०) और (३) रामगीर बुवा (भाग २७, पृष्ठ ८३) के कथन लिए हैं, जो कि क्रमशः १ जून १९३६, १६ सितम्बर १९३६ और १ दिसम्बर १९३६ को छपे हैं, और ये सब उन्होंने अपनी पुस्तक ''भक्तों के अनुभव'' भाग ३ में प्रकाशित किये है । निम्नलिखित प्रसंग रामगीर बुवा के कथनानुसार उद्धृत है ।

''एक दिन मुझे बाबा ने अपने समीप बुलाकर एक उदी की पुड़िया और एक आरती की प्रतिलिपि देकर आज्ञा दी कि जामनेर जाओ और यह आरती

तथा उदी नानासाहेब को दे दो । मैंने बाबा को बताया कि मेरे पास केवल दो रुपये ही हैं, जो कि कोपरगाँव से जलगाँव जाने और फिर वहाँ से बैलगाड़ी द्वारा जामनेर जाने के लिए अपर्याप्त हैं । बाबा ने कहा 'अल्ला देगा ।' शुक्रवार का दिन था । मैं शीघ्र ही रवाना हो गया । मैं मनमाड ६-३० बजे सायंकाल और जलगाँव रात्रि को २ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचा। उस समय प्लेग निवारक आदेश जारी थे, जिससे मुझे असुविधा हुई और मैं सोच रहा था कि कैसे जामनेर पहुँचूं । रात्रि को ३ बजे एक चपरासी आया, जो पैर में बूट पहने था, सिर पर पगड़ी बाँधे व अन्य पोशाक भी पहने था । उसने मुझे ताँगे मे बैठा लिया और ताँगा चल पड़ा । मै उस समय भयभीत-सा हो रहा था । मार्ग में पहुर के समीप मैंने जलपान किया । जब प्रातःकाल जामनेर पहुँचा, तब उसी समय मुझे लघुशंका करने की इच्छा हुई । जब मैं लौटकर आया, तब देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है । ताँगा और ताँगेवाला अदृश्य हैं ।''

नारायणराव

भक्त नारायणराव को बाबा के दर्शनों का तीन बार सौभाग्य प्राप्त हुआ । सन् १९१८ में बाबा के महासमाधि लेने के तीन वर्ष पश्चात् वे शिरडी जाना चाहते थे, परन्तु किसी कारणवश उनका जाना न हो सका । बाबा के समाधिस्थ होने के एक वर्ष के भीतर बाबा का ध्यान करना प्रारंभ कर दिया । एक रात को उन्हें स्वप्न हुआ । बाबा एक गुफा में से आते हुए दिखाई पड़े और सांत्वना देकर कहने लगे कि, ''घबराओ नहीं तुम्हें कल से आराम हो जाएगा और एक सप्ताह में ही चलने-फिरने लगोगे ।'' ठीक उतने ही समय में नारायणराव स्वस्थ हो गए । अब यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या बाबा देहधारी होने से जीवित कहलाते थे और क्या उन्होंने देह त्याग दी, इसलिए मृत हो गए ? नहीं । बाबा अमर हैं, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु से परे हैं । **एक बार भी अनन्य भाव से जो उनकी शरण में जाता है, वह कहीं भी हो, उसे वे सहायता पहुँचाते हैं । वे तो सदा हमारे साथ ही खड़े हैं, और चाहे जैसा रूप**

लेकर भक्त के समक्ष प्रकट होकर उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं ।

अप्पासाहेब कुलकर्णी

सन् १९९७ में अप्पासाहेब कुलकर्णी के शुभ दिन आए । उनका ठाणे को स्थानांतरण हो गया । उन्होंने बालासाहेब भाटे द्वारा प्राप्त बाबा के चित्र का पूजन करना आरम्भ कर दिया । उन्होंने सच्चे हृदय से पूजा की । वे हर दिन फूल, चन्दन और नैवेद्य बाबा को अर्पित करते और उनके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा रखते थे । इस सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि भावपूर्वक बाबा के चित्र को देखना ही बाबा के प्रत्यक्ष दर्शन के सदृश है । नीचे लिखी कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

बालाबुवा सुतार

बम्बई में एक बालाबुवा नाम के संत थे, जो कि अपनी भक्ति, भजन और आचरण के कारण 'आधुनिक तुकाराम' के नाम से विख्यात थे । सन् १९१७ में वे शिरडी आए । जब उन्होंने बाबा को प्रणाम किया तो बाबा कहने लगे कि, मैं तो इन्हें चार वर्षों से जानता हूँ । बालाबुवा को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि मैं तो प्रथम बार ही शिरडी आया हूँ, फिर यह कैसे संभव हो सकता है ? गहन चिन्तन करने पर उन्हें बाबा के शब्दों की यथार्थता का बोध हो गया और वे मन ही मन कहने लगे कि संत कितने सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी होते हैं तथा अपने भक्तों के प्रति उनके हृदय में कितनी दया होती है । मैंने तो केवल उनके चित्र को ही नमस्कार किया था तो भी यह घटना उनको ज्ञात हो गई । इसलिये उन्होंने मुझे इस बात का अनुभव कराया है कि **उनके चित्र को देखना ही उनके दर्शन करने के सदृश है ।**

अब हम अप्पासाहेब की कथा पर आते हैं । जब वे ठाणे में थे तो उन्हें भिवंडी दौरे पर जाना पड़ा, जहाँ से उन्हें एक सप्ताह में लौटना संभव न था । उनकी अनुपस्थिति में तीसरे दिन उनके घर में निम्नलिखित विचित्र घटना हुई । दोपहर के समय अप्पासाहेब के घर पर एक फकीर आया, जिसकी आकृति

बाबा के चित्र से ही मिलती–जुलती थी । श्रीमती कुलकर्णी तथा उनके बच्चों ने उनसे पूछा कि आप शिरडी के श्री साईबाबा तो नहीं है ? इस पर उत्तर मिला कि वे तो साईबाबा के आज्ञाकारी सेवक हैं और उनकी आज्ञा से ही आप लोगों की कुशल–क्षेम पूछने यहाँ आए हैं । फकिर ने दक्षिणा माँगी तो श्रीमती कुलकर्णी ने उन्हें एक रुपया भेंट किया । तब फकीर उन्हें उदी की एक पुड़िया देते हुए कहा कि इसे अपने पूजन में चित्र के साथ रखो । इतना कहकर वह वहाँ से चला गया । अब बाबा की अद्‌भुत लीला सुनिये ।

भिवंडी में अप्पासाहेब का घोड़ा बीमार हो गया, जिससे वे दौरे पर आगे न जा सके । तब उसी शाम वे घर लौट आए । घर आने पर उन्हें पत्नी के द्वारा फकीर के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ । उन्हें मन में थोड़ी अशांति–सी हुई कि मैं फकीर के दर्शनों से वंचित रह गया तथा पत्नी द्वारा केवल एक रुपया दक्षिणा देना उन्हे अच्छा न लगा । वे कहने लगे कि यदि मैं उपस्थित होता तो १० रुपये से कम कभी न देता । तब वे भूखे ही फकीर की खोज में निकल पड़े। उन्होंने मस्जिद एवं अन्य कई स्थानों पर खोज की, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ ही सिद्ध हुई । पाठक अध्याय ३२ में कहे गए बाबा के वचनों का स्मरण करें कि **भूखे पेट ईश्वर की खोज नहीं करनी चाहिए ।** अप्पासाहेब को शिक्षा मिल गई । भोजन के उपरांत वे जब अपने मित्र श्री चित्रे के साथ घूमने को निकले, तब थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें सामने से एक फकीर द्रुत गति से आता हुआ दिखलाई पड़ा । अप्पासाहेब ने सोचा कि यह तो वही फकीर प्रतीत होता है, जो मेरे घर पर आया था तथा उसकी छवि भी बाबा के चित्र के अनुरूप ही है । फकीर ने तुरन्त ही बढ़ाकर दक्षिणा माँगी । आप्पासाहेब ने उन्हें एक रूपया दे दिया, तब वह और माँगने लगा । अब अप्पासाहेब न दो रुपये दिये । तब भी उसे संतोष न हुआ । उन्होंने अपने मित्र चित्रे से ३ रुपये उधार लेकर दिय, फिर भी वह माँगता ही रहा । तब अप्पासाहेब न उसे घर चलने को कहा । सब लोग घर आए और अप्पासाहेब ने उन्हें ३ रुपये और दिये अर्थात् कुल ९

रुपये; फिर भी वह असन्तुष्ट प्रतीत होता था और माँगे ही जा रहा था। तब अप्पासाहेब ने कहा कि मेरे पास तो १० रुपये का नोट है। तब फकीर ने नोट ले लिया और ९ रुपये लौटाकर चला गया। अप्पासाहेब ने १० रुपये देने को कहा था, इसलिए उनसे १० रुपये ले लिए और बाबा द्वारा स्पर्शित ९ रुपये उन्हें वापस मिल गए। अंक ९ रुपये अर्थपूर्ण है तथा नवविधा भक्ति की ओर इंगित करते हैं (देखो अध्याय २१)। यहाँ ध्यान दें कि लक्ष्मीबाई को भी उन्होंने अंत समय में ९ रुपये ही दिये थे।

उदी की पुड़िया खोलने पर अप्पासाहेब ने देखा कि उसमें फूल के पत्ते और अक्षत हैं। जब वे कालान्तर में शिरडी गए तो उन्हें बाबा ने अपना एक केश भी दिया। उन्होंने उदी और केश को एक ताबीज में रखा और उसे वे सदैव हाथ पर बाँधते थे। अब अप्पासाहेब को उदी की शक्ति विदित हो चुकी थी। वे कुशाग्र बुद्धि के थे। प्रथम उन्हें ४० रुपये मासिक मिलते थे, परंतु बाबा की उदी और चित्र प्राप्त होने के पश्चात् उनका वेतन कई गुना हो गया तथा उन्हें मान और यश भी मिला। इन अस्थायी आकर्षणों के अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक प्रगति भी शीघ्रता से होने लगी। इसलिए **सौभाग्यवश जिनके पास उदी है, उन्हें स्नान करने के पश्चात् मस्तक पर धारण करना चाहिए और कुछ जल में मिलाकर तीर्थ की तरह ग्रहण करना चाहिए।**

हरीभाऊ कर्णिक

सन् १९१७ में गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन डहाणू, जिला ठाणे के हरीभाऊ कर्णिक शिरडी आए तथा उन्होंने बाबा का यथाविधि पूजन किया। उन्होंने वस्तुएँ और दक्षिणा आदि भेंट कर शामा के द्वारा बाबा से लौटने की आज्ञा प्राप्त की। वे मस्जिद की सीढ़ियों से उतरे ही थे कि उन्हें विचार आया कि बाबा को एक रुपया और अर्पण करना चाहिए। वे शामा को संकेत से यह सूचना देना चाहते थे कि बाबा से जाने की आज्ञा प्राप्त नहीं हो चुकी है, इसलिए मैं वापस लौटना नहीं चाहता हूँ। परंतु शामा का ध्यान उनकी ओर नहीं गया,

इसलिए वे घर को चल पड़े । मार्ग में वे नासिक में श्री कालाराम के मंदिर में दर्शन को गए । संत नरसिंह महाराज, जो कि मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर बैठा करते थे, भक्तों को वहीं छोड़ कर हरिभाऊ के पास आए और उनका हाथ पकड़कर कहने लगे कि, ''मुझे मेरा रुपया दे दो ।'' कर्णिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सहर्ष रुपया दे दिया । उन्हें विचार आया कि मैंने बाबा को रुपया देने का मन में संकल्प किया था और बाबा ने यह रुपया नासिक के नरसिंह महाराज के द्वारा ले लिया । इस कथा से सिद्ध होता है कि **सब संत अभिन्न है तथा वे किसी न किसी रूप में एक साथ ही कार्य किया करते हैं।**

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३४
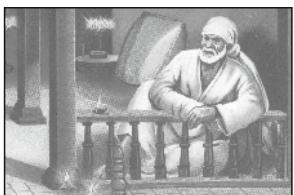
उदी की महिमा (भाग २)

(१) डॉक्टर का भतीजा (२) डॉक्टर पिल्ले (३) शामा की भाभी (४) ईरानी कन्या (५) हरदा के महानुभाव (६) बम्बई की महिला की प्रसव पीड़ा।

इस अध्याय में भी उदी की ही महत्ता क्रमबद्ध है तथा उन घटनाओं का भी उल्लेख किया है, जिनमें उसका उपयोग बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

डॉक्टर का भतीजा

नासिक जिले के मालेगाँव में एक डॉक्टर रहते थे। उनका भतीजा एक असाध्य रोग (एक प्रकार का तपेदिक) से पीड़ित था। उन्होंने तथा उनके सभी डॉक्टर मित्रों ने समस्त उपचार किये। यहाँ तक कि उसकी शल्य-चिकित्सा भी कराई, फिर भी बालक को कोई भी लाभ न हुआ। उसके कष्टों पारावार न था। मित्र और सम्बन्धियों ने बालक के माता-पिता को दैविक उपचार करने का परामर्श देकर श्री साईबाबा की शरण में जाने को कहा. जो अपनी दृष्टि मात्र से असाध्य रोग साध्य करने के लिये प्रसिद्ध हैं। अतः माता-पिता बालक को साथ लेकर शिरडी आए। उन्होंने बाबा को साष्टांग प्रणाम कर श्री-चरणों मे बालक को डाल दिया और बड़ी नम्रता तथा आदरपूर्वक विनती की कि, ''प्रभु, हम लोगों पर दया करो। आपका 'संकट-मोचन' नाम सुनकर ही हम लोग यहाँ आए है। दया कर इस बालक की रक्षा किजिए। प्रभु ! हमें तो केवल आपका ही भरोसा है।'' प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई और उन्होंने सान्त्वना देकर कहा कि, **''जो इस मस्जिद की सीढ़ी चढ़ता है, उसे जीवनपर्यन्त कोई दुःख नहीं होता। चिंतां न करो; यह उदी ले उस रोग ग्रसित स्थान पर लगाओ। ईश्वर पर विश्वास रखो, वह सप्ताह के अंत में पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा। यह मस्जिद नहीं, यह तो**

द्वारकावती है और जो इसकी सीढ़ी चढ़ेगा, उसे स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति होगी तथा उसके कष्टों का अंत हो जाएगा ।'' बालक को बाबा के सामने बिठाया गया । वे उस रोगग्रस्त स्थान पर अपना हाथ फेरते हुये दयापूर्ण दृष्टि से बालक की ओर निहारने लगे । रोगी अब प्रसन्न रहने लगा और उदी के लेप से बालक थोड़े समय में ही स्वस्थ हो गया । माता-पिता अपने को बाबा का ऋणी और कृतज्ञ मानकर बालक को लेकर शिरडी से चले गए ।

यह लीला देखकर बालक के काका को, जो डॉक्टर थे, महान् आश्चर्य हुआ तथा उन्हें भी बाबा के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हुई । इसी समय जब वे कार्यवश बम्बई जा रहे थे, तभी मालेगाँव और मनमाड के निकट किसी ने बाबा के विरुद्ध उनके कान भर दिये, इस कारण वे शिरडी जाने का विचार त्याग कर सीधे बम्बई चले गए । वे अपनी शेष छुट्टियाँ अलीबाग में व्यतीत करना चाहते थे, परंतु बम्बई में उन्हे लगातार तीन रात्रियों तक एक ही ध्वनि सुनाई पड़ी कि, ''क्या अब भी तुम मुझपर अविश्वास कर रहे हो ?'' तब डॉक्टर ने अपना विचार बदल कर शिरडी को प्रस्थान करने का निश्चय किया । बम्बई में उनके एक रोगी को सांसर्गिक ज्वर आ रहा था, जिसका तापक्रम कम होने हो कोई लक्षण दिखाई न देने के कारण उन्हें ऐसा लग रहा था कि कहीं शिरडी की यात्रा स्थगित न करनी पड़े । उन्होंने अपने मन ही मन एक परीक्षा करने का विचार किया कि यदि रोगी आज अच्छा हो जाए तो कल ही मैं शिरडी के लिये प्रस्थान कर दूँगा । आश्चर्य है कि जिस समय उन्होंने यह निश्चय किया, ठीक उसी समय से ज्वर में उतार होने लगा, और ताप क्रमशः सामान्य स्थिति पर पहुँच गया । तब वे अपने निश्चयानुसार शिरडी पहुँचे, और बाबा का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया । बाबा ने उन्हें कुछ ऐसे अनुभव दिये कि वे सदा के लिये उनके भक्त हो गए । डॉक्टर वहाँ चार दिन ठहरे और उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर घर वापस आ गए । एक पखवारे में ही पदोन्नति पाकर उनका स्थानान्तरण वीजापुर को हो गया । भतीजे की रोग-मुक्तता ने उन्हें बाबा के दर्शनो का सौभाग्य दिया तथा शिरडी की यात्रा ने उनकी श्रीसाई के चरणों में प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न कर दी ।

डॉक्टर पिल्ले

डॉक्टर पिल्ले बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे । इसी कारण बाबा उन पर अधिक स्नेह रखते थे और उन्हें सदा 'भाऊ' कहकर पुकारते तथा हर समय उनसे वार्तालाप करके प्रत्येक विषय में परामर्श भी लिया करते थे । उनकी सदैव यही इच्छा रहती कि वे बाबा के समीप ही बने रहें । एक बार डॉक्टर पिल्ले को नासूर हो गया । वे काकासाहेब दीक्षित से बोले कि मुझे असह्य पीड़ा हो रही है और मैं अब इस जीवन से मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ । मुझे ज्ञात है कि इसका मुख्य कारण मेरे पूर्व जन्मों के कर्म ही हैं । जाकर बाबा से कहो कि वे मेरी यह पीड़ा अब दूर करें । मैं अपने पिछले जन्म के कर्मों को अगले दस जन्मों में भोगने को तैयार हूँ । तब काका दीक्षित ने बाबा के पास जाकर उनकी प्रार्थना सुनाई । साई तो दया के अवतार ही हैं । वे अपने भक्तों के कष्ट कैसे देख सकते थे ? उनकी प्रार्थना सुनकर उन्हें भी दया आ गई और उन्होंने दीक्षित से कहा कि, ''पिल्ले से जाकर कहो कि घबराने की ऐसी कोई बात नहीं । कर्मों का फल दस जन्मों में क्यों भुगतना पड़ेगा ? केवल दस दिनों में ही गत जन्मों के कर्मफल समाप्त हो जाएँगे। मैं तो यहाँ तुम्हें धार्मिक और आध्यात्मिक कल्याण देने के लिये बैठा हूँ । **प्राण त्यागने की इच्छा कदापि न करनी चाहिए ।** जाओ, पीठ पर लादकर उन्हें यहाँ ले आओ, मैं सदा के लिये उनका कष्टों से छुटकारा कर दूँगा ।

तब उसी स्थिति में पिल्ले को वहाँ लाया गया । बाबा ने अपनी दाहिनी ओर उनके सिरहाने अपनी गादी देकर सुख से लिटाकर कहा कि, इसकी मुख्य औषधि तो यह है कि पिछले जन्मों के कर्मफल को अवश्य ही भोग लेना चाहिए, ताकि उनसे सदैव के लिये छुटकारा हो जाए। हमारे कर्म ही सुख दुःख के कारण होते हैं, इसलिये जैसी भी परिस्थिति आए, उसी में सन्तोष करना चाहिए । अल्ला ही सब को फल देने वाला है और वही सबका रक्षण करता है । ऐसा विचार कर सदैव उनका ही स्मरण करो । वे ही तुम्हारी चिन्ता दूर करेंगे । तन-मन-धन और वचन द्वारा उनकी अनन्य शरण में जाओ, फिर देखो कि वे

क्या करते हैं । डॉक्टर पिल्ले ने कहा कि नानासाहेब ने मेरे पैर में एक पट्टी बाँधी है, परन्तु मुझे उससे कोई लाभ नहीं पहुँचा । ''नाना तो मूर्ख है'' बाबा ने कहा, ''वह पट्टी हटाओ, नहीं तो मर जाओगे । थोड़ी देर में ही एक कौआ आएगा और वह अपनी चोंच इसमें मारेगा । तब तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे ।''

जब यह वार्तालाप हो ही रहा था कि उसी समय अब्दुल, जो मस्जिद में झाड़ू लगाने तथा दिया-बत्ती आदि स्वच्छ करने का कार्य करता था, वहाँ आया । जब वह दिया-बत्ती स्वच्छ कर रहा था तो अचानक ही उसका पैर डॉक्टर पिल्ले के नासूर वाले पैर पर जा पड़ा । पैर तो सूजा हुआ था ही और फिर अब्दूल के पैर से दबा तो उसमें से नासूर के सात कीड़े बाहर निकल पड़े । कष्ट असहनीय हो गया और डॉक्टर पिल्ले उच्च स्वर में चिल्ला पड़े । किन्तु कुछ समय के बाद वे शांत हो कर गीत गाने लगे । तब बाबा ने कहा, ''देखा, भाऊ अब अच्छा हो गया है और गाना गा रहा है ।'' गाने के बोल थे -

करम कर मेरे हाल पर तू करीम । (मेरी स्थिति पर तू दया कर हे अल्ला।)
तेरा नाम रहमान है और रहीम । (तुम ही दयाघन और दयाशील हो ।)
तू ही दोनों आलम का सुल्तान है । (तुम ही दोनो दुनीयाके सम्राट हो ।)
जहाँ में नुमायाँ तेरी शान है ।(इस दुनीयामें तुम्हारा बड़प्पन स्पष्ट नेर आता है।)
फ़ना होने वाला है सब कारोबार । (यह सब कारोबार खत्म होनेवाला है।)
रहे नूर तेरा सदा आशकार । (मात्र तुम्हारी झाँकी सदा रहनेवाली है ।)
तू आशिक का हरदम मद्‌दगार है । (भक्तोंकी तू हमेशा मद्‌द करनेवाला है ।)

फिर डॉक्टर पिल्ले ने पूछा कि, ''वह कौआ कब आएगा और चोंच मारेगा ?'' बाबा ने कहा, ''अरे, क्या तुमने कौए को नहीं देखा ? अब वह नहीं आएगा । अब्दुल, जिसने तुम्हारा पैर दबाया, वही कौआ था । उसने चोंच मारकर नासूर को हटा दिया । वह अब फिर से क्यों आएगा? अब जाकर वाड़े मे विश्राम करो । तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे ।''

उदी लगाने और पानी के साथ पीने से, बिना किसी औषधि या चिकित्सा के वे दस दिनों में ही निरोग हो गए, जैसा कि बाबा ने उनसे

कहा था।

शामा के छोटे भाई की पत्नी (भाभी)

सावली विहीर के समीप शामा के छोटे भाई बापाजी रहते थे। एक बार उनकी पत्नी को गिल्टियों वाला प्लेग हो गया। उसे ज्वर हो आया और उसकी जाँघ में प्लेग की दो गिल्टियाँ निकल आयी। बापाजी दौड़कर शामा के पास आए और सहायता के लिये चलने को कहा। शामा भयभीत हो उठे। उन्होंने सदैव के भाँति बाबा के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और सहायता के लिये उनसे प्रार्थना की तथा भाई के घर जाने की अनुमति माँगी। बाबा ने कहा कि इतनी रात्रि व्यतीत हो चुकी है। अब इस समय तुम कहाँ जाओगे ? केवल उदी ही भेज दो। ज्वर और गिल्टी की चिन्ता क्यों करते हो ? भगवान् तो अपने पिता और स्वामी हैं। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएगी। अभी मत जाओ। प्रातःकाल जाना और शीघ्र ही लौट आना।

शामा को तो उस मृत-संजीवनी 'उदी' पर पूर्ण विश्वास था। उसे ले जाकर उसके भाई ने थोड़ी-सी उदी गिल्टी और माथे पर लगाई, और कुछ जल में घोलकर रोगी को पिला दी। जैसे ही उसका सेवन किया गया, वैसे ही पसीना प्रवाहित होने लगा, ज्वर मन्द पड़ गया और रोगी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया। दूसरे दिन बापाजी ने अपनी पत्नी को स्वस्थ देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि न तो ज्वर है और न गिल्टी का कोई चिह्न ही। दूसरे दिन जब शामा बाबा की आज्ञा प्राप्त कर वहाँ पहुँचे तो अपने भाई की स्त्री को चाय बनाते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने भाई से पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि बाबा की उदी ने एक रात्रि में ही रोग को समूल नष्ट कर दिया है। तब शामा को बाबा के शब्दों का मर्म समझ में आया कि, "प्रातःकाल जाओ और शीघ्र लौटकर आओ।"

चाय पीकर शामा लौट आया और बाबा को प्रणाम करने के पश्चात् कहने लगा कि, "देवा ! यह क्या नाटक है ? पहले बवंडर उठा कर हमें अशांत कर देते हो, फिर हमारी शीघ्र सहायता कर सब ठीकठाक कर देते हो।" बाबा

ने उत्तर दिया कि, ''तुम्हे ज्ञात होगा कि कर्म पथ अति रहस्यपूर्ण है। यद्यपि मैं कुछ भी नहीं करता, फिर भी लोग मुझे ही कर्मों के लिये दोषी ठहराते हैं। मैं तो एक दर्शक मात्र ही हूँ। **केवल ईश्वर ही एक सत्ताधारी और प्रेरणा देने वाले हैं। वे ही परम दयालु हैं। मैं न तो ईश्वर हूँ और न मालिक, केवल उनका एक आज्ञाकारी सेवक ही हूँ और सदैव उनका स्मरण किया करता हूँ। जो निरभिमान होकर अपने को कृतज्ञ समझ कर उन पर पूर्ण विश्वास करेगा, उसके कष्ट दूर हो जाएँगे और उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी।**''

ईरानी कन्या

अब एक ईरानी भद्र पुरुष का अनुभव पढ़िये। उनकी छोटी कन्या घंटे-घंटे पर मूर्च्छित हो जाया करती थी। उसके दाँत कस जाते थे। उसके हाथ-पैर ऐंठ जाते और वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ती थी। जब नाना प्रकार के उपचारों से भी उसे कोई लाभ न हुआ, तब कुछ लोगों ने उस ईरानी से बाबा की उदी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि वह विलेपार्ला (बम्बई) में काकासाहेब दीक्षित के पास से ही प्राप्त हो सकती है। तब ईरानी महाशय ने वहाँ से उदी लाकर जल में घोलकर अपनी बेटी को पिलायी। प्रारम्भ में जो दौरे एक घंटे के अन्तर से आया करते थे, बाद में वे सात घंटे के अन्तर से आए और कुछ दिनों के पश्चात् तो वह पूर्ण स्वस्थ हो गई।

हरदा के महानुभाव

हरदा के एक महानुभाव पथरी रोग से ग्रस्थ थे। यह पथरी केवल शल्यचिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती थी। लोगों ने भी उन्हें ऐसा ही करने का परामर्श दिया। वे बहुत ही वृद्ध तथा दुर्बल थे, और अपनी दुर्बलता देखकर उन्हें शल्यचिकित्सा कराने का साहस न हो रहा था। इस हालत में उनकी व्याधि को और इलाज ही क्या था ? इसी समय नगर के इनामदार भी वहाँ आए हुए थे, जो बाबा के परम भक्त थे तथा उनके पास उदी भी थी। कुछ मित्रों के परामर्श देने पर उनके पुत्र ने उनसे कुछ उदी प्राप्त कर अपने वृद्ध पिता

को जल में मिलाकर पीने को दी । केवल पाँच मिनट में ही उदी कें पेट में जाते ही पथरी मूत्रेन्द्रिय के द्वार से बाहर निकल गई और वह वृद्ध शीघ्र ही स्वस्थ हो गया ।

बम्बई की महिला की प्रसव-पीड़ा

बम्बई की कायस्थ प्रभु जाति की एक महिला को प्रसव-काल में असहनीय वेदना हुआ करती थी । जब वह गर्भवती हो जाती तो बहुत घबराती और किंकर्तव्यमूढ़ हो जाया करती थी। इसके उपचारार्थ संत श्रीराम मारुति ने उसके पति को सुझाव दिया कि यदि इस पीड़ा से मुक्ति चाहते हो तो अपनी पत्नी को शिरडी ले जाओ ।

पुनः जब उनकी स्त्री गर्भवती हुई तो वे दोनों पति-पत्नी शिरडी आए और वहाँ कुछ मास ठहरे । वे बाबा की नित्य सेवा करने लगे । उन्हें बाबा के सत्संग का भी बहुत लाभ हुआ । कुछ दिनों के पश्चात् जब प्रसव-काल समीप आया, तब सदैव की भाँति गर्भाशय के द्वार में रुकावट के साथ अधिक वेदना होने लगी । उनकी समझ में नहीं आता था कि अब क्या करना चाहिए ? थोड़ी ही देर में एक पड़ोसिन आयी और उसने मन ही मन बाबा से सहायता की प्रार्थना कर जल में उदी मिला उसे पीने को दी । तब केवल पाँच मिनट में ही बिना किसी कष्ट के प्रसव हो गया । बालक तो अपने भाग्यानुसार ही उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी माँ की पीड़ा और कष्ट सदा के लिये दूर हो गए । वे अपने बाबा का बड़ा कृतज्ञ समझने लगे और जीवनपर्यंत उनके आभारी बने रहे ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३५

काका महाजनी के मित्र और सेठ, निर्बीज अंगुर, बान्द्रा के एक गृहस्थ की अनिद्रा, बालाजी पाटील नेवासकर, बाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना।

इस अध्याय में भी उदी का महात्म्य ही वर्णित है। इसमें ऐसी दो घटनाओं का उल्लेख है कि परीक्षा करने पर देखा गया कि बाबा ने दक्षिणा अस्वीकार कर दी। पहले इन घटनाओं का वर्णन किया जाएगा।

आध्यात्मिक विषयों में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति उन्नति के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा है। निराकारवादियों से कहते सुना जाता है कि ईश्वर की सगुण उपासना केवल एक भ्रम ही है और संतगण भी अपने सदृश ही सामान्य पुरुष हैं। इस कारण उनकी चरण वन्दना कर उन्हें दक्षिणा क्यों देनी चाहिए ? अन्य पन्थों के अनुयायियों का भी ऐसा ही मत है कि अपने सद्गुरु के अतिरिक्त अन्य सन्तों को नमन तथा उनकी भक्ति न करनी चाहिए। इसी प्रकार की अनेक आलोचनाएँ साईबाबा के सम्बन्ध में पहले सुनने मे आया करती थीं तथा अभी भी आ रही हैं। किसी का कथन था कि जब हम शिरडी गए तो बाबा ने हमसे दक्षिणा माँगी। क्या इस भाँति दक्षिणा ऐंठना एक सन्त के लिये शोभनीय था ? जब वे इस प्रकार आचरण करते हैं तो फिर उनका साधु-धर्म कहाँ रहा ? परन्तु ऐसी भी कई घटनाएँ अनुभव में आई हैं कि जिन लोगों ने शिरडी जाकर अविश्वास से बाबा के दर्शन किये, उन्होंने ही सर्वप्रथम बाबा को प्रणाम कर प्रार्थना भी की। ऐसे ही कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

काका महाजनी के मित्र

काका महाजनी के मित्र निराकारावादी तथा मूर्ति-पूजा के सर्वथा विरुद्ध थे। कौतुहलवश वे काका महाजनी के साथ दो शर्तों पर शिरडी चलने को

सहमत हो गए कि (१) बाबा को नमस्कार न करेंगे और (२) न ही उन्हें कोई दक्षिणा देंगे। जब काका ने स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया, तब फिर शनिवार की रात्रि को उन दोनों ने बम्बई से प्रस्थान कर दिया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल शिरडी पहुँच गए। जैसे ही उन्होंने मस्जिद में पैर रखा, उसी समय बाबा ने उनके मित्र की ओर थोड़ी देर देखकर उनसे कहा कि, ''अरे आइये, श्रीमान् पधारिए। आपका स्वागत है।'' इन शब्दों का स्वर कुछ विचित्र-सा था और उनका स्वर प्रायः उन मित्र के पिता के बिल्कुल अनुरूप ही था। तब उन्हें अपने कैलासवासी पिता की स्मृति हो आयी और वे आनन्द विभोर हो गए। क्या मोहिनी थी उस स्वर में ? आश्चर्ययुक्त स्वर में उनके मित्र के मुख से निकल पड़ा कि निस्सन्देह यह स्वर मेरे पिताजी का ही है। तब वे शीघ्र दौड़कर गए और अपनी सब प्रतिज्ञाएँ भूलकर उन्होंने बाबा के श्री चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। बाबा ने काका से तो दोपहर में तथा विदा लेते समय दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मित्र से एक शब्द भी न कहा। उनके मित्र ने फुसफुसाते हुए कहा कि, ''भाई ! देखो, बाबा ने तुमसे तो दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ, फिर वे मेरी इस प्रकार उपेक्षा क्यों करते हैं ?'' काका ने उत्तर दिया कि, ''बेहतर तो यह होगा कि तुम स्वयं ही बाबा से पूछ लो।'' बाबा ने पूछा कि, ''क्या कानाफूसी हो रही है ?'' तब उनके मित्र ने कहा कि, ''क्या मैं भी आपको दक्षिणा दूँ।'' बाबा ने कहा कि, ''तुम्हारी अनिच्छा देखकर मैंने तुमसे दक्षिणा नही माँगी, परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है तो तुम दक्षिणा दे सकते हो।'' तब उन्होंने सत्रह रुपये भेंट किये, जितने काका ने दिये थे। तब बाबा ने उन्हें उपदेश दिया कि, **''अपने बीच जो तेली की दीवार (भेदभाव) है, उसे नष्ट कर दो, जिससे हम परस्पर देखकर अपने मिलन का पथ सुगम बना सकें।''** बाबा ने उन्हें लौटने अनुमति देते हुए कहा कि, ''तुम्हारी यात्रा सफल रहेगी।'' यद्यपि आकाश में बादल छाये हुए थे और वायु वेग से चल रही थी तो भी दोनों सकुशल बम्बई पहुँच गए। घर पहुँचकर जब उन्होंने द्वार तथा खिड़कियाँ खोलीं तो वहाँ दो मृत चिड़ियाँ पड़ी देखी। एक तीसरा उनके सामने ही फुर्र करके खिड़की से

उड़ गयी । उन्हें विचार आया कि यदि मैंने खिड़की खुली छोड़ी होती तो इन जीवों के प्राण अवश्य बच गए होते, परन्तु फिर उन्हें विचार आया कि यह उनके भाग्यानुसार ही हुआ है और बाबा ने तीसरे की प्राण-रक्षा के हेतु हमें शीघ्र ही वहाँ से वापस भेज दिया ।

काका महाजनी के सेठ

बम्बईं में ठक्कर धरमसी जेठाभाई सॉलिसिटर (कानूनी सलाहाकार) की एक फर्म थी । काका इस फर्म के व्यवस्थापक थे । सेठ और व्यवस्थापक के सम्बन्ध परस्पर अच्छे थे । श्रीमान् ठक्कर को ज्ञात था कि काका बहुधा शिरडी जाया करते हैं और वहाँ कुछ दिन ठहरकर बाबा की अनुमति से ही वापस लौटते हैं । कौतुहलवश बाबा की परीक्षा करने के विचार से उन्होंने भी होलिकोत्सव के अवसर पर काका के साथ ही शिरडी जाने का निश्चय किया । काका का शिरडी से लौटना सदैव अनिश्चित सा ही रहता था, इसलिये अपने साथ एक मित्र को लेकर वे तीनों रवाना हो गए। मार्ग में काका ने बाबा को अर्पित करने हेतु दो सेर अंगुर मोल लिए । ठीक समय पर शिरडी पहुँच कर वे उनके दर्शनार्थ मस्जिद में गए । बाबासाहेब तर्खड भी तब वहीं पर थे । श्री ठक्कर ने उनसे आने का हेतु पूछा । तर्खड ने उत्तर दिया कि मैं तो दर्शन के लिये ही आया हूँ । मुझे चमत्कारों से कोई प्रयोजन नहीं । यहाँ तो भक्तों की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति होती है । काका ने बाबा को नमस्कार कर उन्हें अंगुर अर्पित किये । तब बाबा ने उन्हें वितरित करने की आज्ञा दे दी । श्रीमान् ठक्कर को भी कुछ अंगुर मिले । एक तो उन्हें अंगुर रुचिकर न लगता था, दूसरे इस प्रकार अस्वच्छ खाने की डॉक्टर ने मनाही करी थी । इसलिये वे कुछ निश्चय न कर सके और न चाहते हुए भी उन्हें ग्रहण करना पड़ा और फिर दिखावे मात्र के लिये ही उन्होंने मुँह मे डाल लिया । अब समझ में न आता था कि उनके बीजों का क्या करें । मस्जिद की फर्श पर तो थूका नहीं जा सकता था, इसलिये उन्होंने वे बीज अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने खीसे में डाल लिये और सोचने लगे कि जब बाबा सन्त हैं तो यह बात उन्हें कैसे अविदित रह सकती है कि

मुझे बीजवाले अंगुर नापसंद है ? फिर क्या वे मुझे इसके लिये लाचार कर सकते हैं ? जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, बाबा ने उन्हें कुछ और अंगुर दिये, पर उन्होंने खाया नहीं और अपने हाथ में ले लिया । तब बाबा ने उन्हें खा लेने को कहा । उन्होंने आज्ञा का पालन किया और चबाने पर देखा कि वे सब निर्बीज हैं । वे चमत्कार की इच्छा रखते थे, इसलिये उन्हें देखने को मिल गया । उन्होंने सोचा कि बाबा समस्त विचारों को तुरन्त जान लेते हैं और मेरी इच्छानुसार ही उन्होंने उन्हें बीजरहित बना दिया है । क्या अद्‌भुत शक्ति है उनमें ? फिर शंका निवारणार्थ उन्होंने तर्खड से, जो समीप ही बैठे हुये थे और जिन्हें भी थोड़े अंगुर मिले थे, पूछा कि किस किस्म के अंगुर तुम्हें मिले ? उत्तर मिला ''अच्छे बीजों वाले ।'' श्रीमान् ठक्कर को तब और भी आश्चर्य किया कि यदि बाबा वास्तव में सन्त हैं तो अब सर्वप्रथम अंगुर काका को ही दिये जाने चाहिए । इस विचार को जानकर बाबा ने कहा कि अब पुनः वितरण काका से ही आरम्भ होना चाहिए । यह सब प्रमाण श्री ठक्कर के लिये पर्याप्त थे।

फिर शामा ने बाबा से परिचय कराया कि आप ही काका के सेठ हैं । बाबा कहने लगे कि ये उनके सेठ कैसे हो सकते हैं ? इनके सेठ तो बड़े विचित्र हैं । काका इस उत्तर से सहमत हो गए। अपना हठ छोड़कर ठक्कर ने बाबा को प्रणाम किया और वाड़े को लौट आए । मध्याह्न की आरती समाप्त होने के उपरान्त वे बाबा से प्रस्थान करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मस्जिद में आए । शामा ने उनकी कुछ सिफारिश की, तब बाबा इस प्रकार बोले :-

''एक सनकी मस्तिष्क वाला सभ्य पुरुष था, जो स्वस्थ और धनी भी था । शारीरिक तथा मानसिक व्यथाओं से मुक्त होने पर भी वह स्वतः ही अनावश्यक चिंताओं में डूबा रहता और व्यर्थ ही यहाँ-वहाँ भटक कर अशान्त बना रहता था । कभी वह स्थिर और कभी चिन्तित रहता था । उसकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे दया आ गई और मैंने उससे कहा कि कृपया अब **आप अपना विश्वास एक इच्छित स्थान पर स्थिर कर लें । इस प्रकार व्यर्थ भटकने से कोई लाभ नहीं ।**''

''शीघ्र ही एक निर्दिष्ट स्थान चुन लो'' – इन शब्दों से ठक्कर की समझ में तुरन्त आ गया कि यह सर्वथा मेरी ही कहानी है। उनकी इच्छा थी कि काका भी हमारे साथ ही लौटें। बाबा ने उनका ऐसा विचार जानकर काका को सेठ के साथ ही लौटने की अनुमति दे दी। किसी को विश्वास न था कि काका इतने शीघ्र शिरडी से प्रस्थान कर सकेंगे। इस प्रकार ठक्कर को बाबा द्वारा विचार जानने का एक और प्रमाण मिल गया।

तब बाबा ने काका से १५ रुपये दक्षिणा माँगी और कहने लगे कि, ''यदि मैं किसी से एक रुपया दक्षिणा लेता हूँ तो उसे दसगुना लौटाया करता हूँ। मैं किसी की कोई वस्तु बिना मूल्य नहीं लेता और न तो प्रत्येक से माँगता ही हूँ। जिसकी ओर फकीर (ईश्वर) उंगली दिखाते हैं, उससे ही मैं माँगता हूँ और जो गत जन्म का ऋणी होता है, उसकी ही दक्षिणा स्वीकार हो जाती है। **दानी देता है और भविष्य में सुन्दर उपज का बीजारोपण करता है।** धन का उपयोग धर्मोपार्जन के निमित्त ही होना चाहिए। यदि धन व्यक्तिगत आवश्यकताओं में व्यय किया गया तो यह उसका दुरुपयोग है। यदि तुमने पूर्व जन्मों में दान नहीं दिया है तो इस जन्म में पाने की आशा कैसे कर सकते हो ? इसलिये **यदि प्राप्ति की आशा रखते हो तो अभी दान करो।** दक्षिणा देने से वैराग्य की वृद्धि होती है, और वैराग्य प्राप्ति से भक्ति और ज्ञान बढ़ जाते है। **एक दो और दस गुना लो।**''

इन शब्दों को सुनकर श्री ठक्कर ने भी अपना संकल्प भूलकर बाबा को पन्द्रह रुपये भेंट किये। उन्होंने सोचा कि अच्छा ही हुआ, जो मै शिरडी आ गया। यहाँ मेरी सब शंकाएँ नष्ट हो गईं और मुझे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त हो गई।

ऐसे विषयों में बाबा की कुशलता बड़ी अद्बितीय थी। यद्यपि वे सब कुछ करते थे, फिर भी वे इन सबसे अलिप्त रहते थे। नमस्कार करने या न करने वाले, दोनों ही उनके लिए एक समान थे। उन्होंने कभी किसी का अनादर नहीं किया। यदि भक्त उनका पूजन करते तो इससे उन्हें न कोई प्रसन्नता होती और यदि कोई उनकी उपेक्षा करता तो न कोई दुःख ही होता। वे सुख और दुःख

की भावना से परे हो चुके थे।

अनिद्रा

बान्द्रा के एक महाशय कायस्थ प्रभु बहुत दिनों से नींद न आने के कारण अस्वस्थ थे। जैसे ही वे सोने लगते, उनके स्वर्गवासी पिता स्वप्न में आकर उन्हें बुरी तरह गालियाँ देते हुए दिखने लगते थे। इससे निद्रा भंग हो जाती और वे रात्रिभर अशांति महसूस करते थे। हर रात्रि को ऐसा ही होता था, जिससे वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। एक दिन बाबा के एक भक्त से उन्होंने इस विषय में परामर्श किया। उसने कहा कि मैं तो संकटमोचन सर्व-पीड़ा-निवारिणी उदी को ही इसकी रामबाण औषधि मानता हूँ, जो शीघ्र ही लाभदायक सिद्ध होगी। उन्होंने एक उदी की पुड़िया देकर कहा कि इसे शयन के पूर्व माथे पर लगाकर अपने सिरहाने रखो। फिर तो उन्हें निर्विघ्न प्रगाढ़ निद्रा आने लगी। यह देखकर उन्हें महान् आश्चर्य और आनन्द हुआ। यह क्रम चालू रखकर वे अब साईबाबा का ध्यान करने लगे। बाजार से उनका एक चित्र लाकर उन्होंने अपने सिरहाने के पास लगाकर उनका नित्य पूजन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक गुरुवार को वे हार और नैवेद्य अर्पण करने लगे। वे अब पूर्ण स्वस्थ हो गए और पहले के सारे कष्टों को भूल गए।

बालाजी पाटील नेवासकर

ये बाबा के परम भक्त थे। ये उनकी निष्काम सेवा किया करते थे। दिन में जिन रास्तों से बाबा निकलते थे, उन्हें वे प्रातःकाल ही उठकर झाड़ू लगाकर पूर्ण स्वच्छ रखते थे। इनके पश्चात् यह कार्य बाबा की एक परमभक्त महिला राधाकृष्णमाई ने किया और फिर अब्दुल ने। बालाजी जब अपनी फसल काटकर लाते तो वे सब अनाज बाबाको भेंट कर दिया करते थे। उसमें से जो कुछ बाबा उन्हें लौटा देते, उसी से वे अपने कुटुम्ब का भरणपोषण किया करते थे। यह क्रम अनेक वर्षों तक चला और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनके पुत्र ने इसे जारी रखा।

उदी की शक्ति और महत्व

एक बार बालाजी के श्राद्ध दिवस की वार्षिकी (बरसी) के अवसर पर कुछ व्यक्ति आमंत्रित किये गए । जितने लोगों के लिये भोजन तैयार किया गया, उससे तिगुने लोग भोजन के समय एकत्रित हो गए । यह देख श्रीमती नेवासकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गईं। उन्होंने सोचा कि यह भोजन सबके लिये पर्याप्त न होगा और कहीं कम पड़ गया तो कुटुम्ब की भारी अपकीर्ति होगी । तब उनकी सास ने उनसे से उनसे सान्त्वना-पूर्ण शब्दों में कहा कि चिन्ता न करो, यह भोजन-सामग्री हमारी नहीं, ये तो श्री साईबाबा की है । प्रत्येक बर्तन में उदी डालकर उन्हें वस्त्र से ढँक दो और बिना वस्त्र हटाये सबको परोस दो । वे ही हमारी लाज बचायेंगे । परामर्श के अनुसार ऐसा ही किया गया । भोजनार्थियों के तृप्तिपूर्वक भोजन करने के पश्चात् भी भोजन सामग्री यथेष्ट मात्रा में शेष देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य और प्रसन्नता हुई । यथार्थ में देखा जाए तो जैसा जिसका भाव होता है, उसके अनुकूल ही अनुभव प्राप्त होता है । ऐसी ही घटना मुझे प्रथम श्रेणी के उपन्यायाधीश तथा बाबा के परम भक्त श्री बी. ए. चौगुले ने बतलाई । फरवरी, सन् १९४३ में करजत (जिला अहमदनगर) में पूजा का उत्सव हो रहा था, तभी इस अवसर पर एक वृहत् भोज का आयोजन हुआ । भोजन के समय आमंत्रित लोगों से लगभग पाँच गुने अधिक भोजन के लिये आए, फिर भी भोजन सामग्री कम नहीं हुई । बाबा की कृपा से सबको भोजन मिला, यह देख सबको आश्चर्य हुआ ।

साईबाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना

शिरडी के रघु पाटील एक बार नेवासे के बालाजी पाटील के पास गए, जहाँ सन्ध्या को उन्हें ज्ञात हुआ कि एक साँप फुफकारता हुआ गौशाला में घुस गया है । सभी पशु भयभीत होकर भगाने लगे । घर के लोग भी घबरा गए, परन्तु बालाजी ने सोचा कि श्री साई ही इस रूप में यहाँ प्रगट हुए हैं । तब वे एक प्याले में दूध ले आए और निर्भय होकर उस सर्प के सम्मुख रखकर

उनको इस प्रकार सम्बोधित कर कहने लगे कि, ‘‘बाबा ! आप फुफकार कर शोर क्यों कर रहे हैं ? क्या आप मुझे भयभीत करना चाहते हैं ? यह दूध का प्याला लीजिए और शांतिपूर्वक पी लीजिये ।’’ ऐसा कहकर वे बिना किसी भय के उसके समीप ही बैठ गए । अन्य कुटुम्बजन तो बहुत घबरा गए और उनकी समझ में न आ रहा था कि अब वे क्या करें ? थोड़ी देर में ही सर्प अदृश्य हो गया और किसी को भी पता न चला कि वह कहाँ गया । गौशाला में सर्वत्र देखने पर भी वहाँ उसका कोई चिह्न न दिखाई दिया ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायण : पंचम विश्राम

अध्याय-३६

आश्चर्यजनक कथाएँ
(१) गोवा के दो सज्जन
(२) श्रीमती औरंगाबादकर।

इस अध्याय में गोवा के दो महानुभावों और श्रीमती औरंगाबादकर की अद्भुत कथाओं का वर्णन है।

गोवा के दो महानुभाव

एक समय गोवा से दो महानुभाव श्री साईबाबा के दर्शनार्थ शिरडी आए। उन्होंने आकर उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि वे दोनों एक साथ ही आए थे, फिर भी बाबा ने केवल एक ही व्यक्ति से पन्द्रह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्हें आदरसहित दे दी गई। दूसरा व्यक्ति भी उन्हें सहर्ष ३५ रुपये दक्षिणा देने लगा तो उन्होंने उसकी दक्षिणा लेना अस्वीकार कर दिया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय शामा भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि, ''देवा ! ये क्या, ये दोनों एक साथ ही तो आए हैं। इनमें से एक की दक्षिणा तो आप स्वीकार करते हैं और दूसरा जो अपनी इच्छा से भेंट दे रहा है उसे अस्वीकार कर हैं ? यह भेद क्यों ?'' तब बाबा ने उत्तर दिया कि ''शामा ! तुम नादान हो। मैं किसी से कभी कुछ नहीं लेता। यहाँ तो मस्जिदमाई ही अपना ऋण माँगती है और इसलिये देने वाला अपना ऋण चुकता कर मुक्त हो जाता है। क्या मेरे कोई घर, सम्पत्ति या बाल-बच्चे हैं, जिनके लिये मुझे चिन्ता हो ? मुझे तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सदा स्वतंत्र हूँ। ऋण, शत्रुता तथा हत्या इन सबका प्रायश्चित अवश्य करना पड़ता है, और इनसे किसी प्रकार भी छुटकारा संभव नहीं है।''

''अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में ये महाशय निर्धन थे। इन्होंने ईश्वर से

प्रतिज्ञा की कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं एक माह का वेतन तुम्हें अर्पण करुँगा । इन्हें १५ रुपये माहवार की एक नौकरी मिल गई । फिर उत्तरोत्तर उन्नति होते होत ३०, ६०, १००, २०० और अन्त में ७०० रुपये तक मासिक वेतन हो गया । परन्तु समृध्दि पाकर ये अपना वचन भूल गए और उसे पूरा न कर सके । अब अपने शुभ कर्मों के ही प्रभाव से इन्हें यहाँ तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अतः मैंने इनसे केवल पन्द्रह रुपये ही दक्षिणा माँगी, जो इनके पहले माह की पगार थी।''

दूसरी कथा

''समुद्र के किनारे घूमते-घूमते मैं एक भव्य महल के पास पहुँचा और उसके दालान में विश्राम करने लगा । उस महल के ब्राह्मण स्वामी ने मेरा यथोचित स्वागत कर मुझे बढ़िया स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ खाने को दिये । भोजन के उपरान्त उसने मुझे अलमारी के समीप एक स्वच्छ स्थान शयन के लिये बतला दिया और मैं वहीं सो गया । जब मै प्रगाढ़ निद्रा में था तो उस व्यक्ति ने पत्थर खिसकाकर दीवार में सेंध डाली और उसके द्वारा भीतर घुसकर उसने मेरी जेब काँटी । निद्रा से उठने पर मैंने देखा कि मेरे तीस हजार रुपये चुरा लिये गए है । मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया और दुःखित होकर रोता हुआ बैठ गया । केवल नोट ही नोट चुरा लिये थे, इसलिये मैंने सोचा कि यह कार्य उस ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी का नहीं है । मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा न लगा और मैं एक परखवाड़े तक दालान में ही बैठे बैठे चोरी का दुःख मनाता रहा । इस प्रकार पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मुझे दुःख से बिलखते देखकर मेरे रोने का कारण पूछा । तब मैंने सब हाल उससे कह सुनाया । उसने मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे आदेशानुसार आचरण करोगे तो तुम्हारा चुराया धन वापस मिल जाएगा । मैं एक फकीर का पता तुम्हें बताए देता हूँ । तुम उसकी शरण में जाओ और उसकी कृपा से तुम्हें तुम्हारा धन पुनः मिल जायेगा । परन्तु जब तक तुम्हें अपना धन वापस नहीं मिलता, उस समय तक तुम अपना प्रिय भोजन त्याग दो । मैंने उस फकीर का कहना मान लिया और मेरा चुराया धन मिल गया । तब मैं समुद्र तट पर आया, जहाँ एक जहाज खड़ा था, जो यात्रियों से ठसाठस

भर चुका था । भाग्यवश वहाँ एक उदार प्रकृति वाले चपरासी की सहायता से मुझे एक स्थान मिल गया । इस प्रकार मै दूसरे किनारे पर पहुँचा और वहाँ से मै रेलगाड़ी में बैठकर मस्जिद माई आ पहुँचा।'

कथा समाप्त होते ही बाबा ने शामा से इन अतिथियों को अपने साथ ले जाने और भोजन का प्रबन्ध करने को कहा । तब शामा ने उन्हें अपने घर ले गया और उन्हें भोजन कराया । भोजन करते समय शामा ने उनसे कहा कि, ''बाबा की कहानी बड़ी ही रहस्यपूर्ण है, क्योंकि न तो वे कभी समुद्र की ओर गए हैं और न उनके पास तीस हजार रुपये ही थे । उन्होंने न कहीं भी यात्रा की, न उनकी कोई रकम ही चुराई गई और न वापस आई ।'' फिर शामा ने उन लोगों से पूछा कि, ''आप लोगों को कुछ समझ में आया कि इसका अर्थ क्या था ?'' दोनों अतिथियों की घिग्घियाँ बँध गई और उनकी आँखो से आँसुओं की धारा बहने लगी । उन्होंने रोते-रोते कहा कि, ''बाबा तो सर्वव्यापी, अनन्त और परब्रह्म स्वरूप हैं । जो कथा उन्होंने कही है, वह बिल्कुल हमारी ही कहानी है और वह मेरे ऊपर बीत चुकी है । यह महान् आश्चर्य है कि उन्हें यह सब कैसे ज्ञात हो गया ? भोजन के उपरान्त हम इसका पूर्ण विवरण आपको सुनायेंगे ।''

भोजन के पश्चात् पान खाते हुये उन्होंने अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया । उनमें से एक कहने लगा :-

''घाट में एक पहाड़ी स्थान पर हमारा निवास-स्थान है । मैं अपने जीवन-निर्वाह के लिये नौकरी ढूँढ़ने गोवा आया था । तब मैंने भगवान् दत्तात्रेय को वचन दिया था कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं तुम्हें एक माह की पगार भेंट चढ़ाऊँगा । उनकी कृपा से मुझे पन्द्रह रूपये मासिक की नौकरी मिल गई और जैसा कि बाबा ने कहा, उसी प्रकार मेरी उन्नति हुई । मैं अपना वचन बिल्कुल भूल गया था । बाबा ने उसकी स्मृति दिलाई और मुझसे पन्द्रह रुपये वसूल कर लिये । अपा लोग इसे दक्षिणा न समझें । यह तो एक पुराने ऋण का भुगतान है, दीर्घ काल से भूली हुई प्रतिज्ञा आज पूर्ण हुई है ।''

शिक्षा

यथार्थ में बाबा ने कभी किसी से पैसा नहीं माँगा और न ही अपने भक्तों को ही माँगने दिया । वे आध्यात्मिक उन्नति में कंचन को बाधक समझते थे और भक्तों को उसके पाश से सदैव बचाते रहते थे । भगत म्हालसापति इसके उदाहरणस्वरूप हैं । वे बहुत निर्धन थे और बड़ी कठिनाई से ही अपना जीवन बिताते थे । बाबा उन्हें कभी पैसा माँगने नहीं देते थे और नही वे अपने पास की दक्षिणा में से उन्हें कुछ देते थे । एक बार एक दयालु और सहृदय व्यापारी हंसराज ने बाबा की उपस्थिति में ही एक बड़ी रकम म्हालसापति को दी, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार किया ।

अब दूसरा अतिथि अपनी कहानी सुनाने लगा । ''मेरे पास एक ब्राह्मण रसोइया था, जो गत ३५ वर्षों से ईमानदारी से मेरे पास काम करता आया था। एक दिन उसका मन पलट गया और उसने मेरे रुपये चोरी कर लिये । मेरी अलमारी दीवार में लगी थी और जिस समय हम लोग गहरी नींद में थे, उसने पीछे से पत्थर हटा कर मेरे तीस हजार रुपयों के नोट चुरा लिये । मैं नहीं जानता कि बाबा को यह ठीक-ठीक धन-राशि कैसे ज्ञात हो गई ? मैं दिन-रात रोता और दुःखी रहता था । एक दिन जब मैं इसी प्रकार निराश और उदास होकर बरामदे में बैठा था, उसी समय रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मेरी स्थिति जानकर मुझसे इसका कारण पूछा । मैंने उसे सब हाल कह सुनाया । तब उसने बताया कि कोपरगाँव तालुके के शिरडी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक औलिया रहते हैं । उन्हें वचन दो तथा अपना रुचिकर भोज्य पदार्थ त्याग, मन में कहो कि जब तक मैं तुम्हारा दर्शन न कर लूँगा, उस पदार्थ को कदापि न खाऊँगा । तब मैंने अन्न खाना छोड़ दिया और बाबा को वचन दिया, ''बाबा ! जब तक मुझे तुम्हारे दर्शन नहीं होते तथा मेरी चुराई गई धन राशि नहीं मिलती, तब तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगा ।'' इस प्रकार जब पन्द्रह दिन बीत गए, तब वह ब्राह्मण स्वयं ही आया और सब धनराशि लौटाकर क्षमायाचनापूर्वक कहने लगा कि मेरी मति ही भ्रष्ट हो गयी थी, जो मुझसे ऐसा अपराध हुआ है । मैं आपके पैर पड़ता हूँ । मुझे क्षमा करें । इस प्रकार सब ठीक-ठाक हो गया । जिस फकीर से मेरी भेंट हुई थी तथा जिसने मुझे सहायता पहुँचाई थी, वह फकीर मेरे देखने में कभी नहीं आया । मेरे मन में

श्री साईबाबा के दर्शन की, जिनके लिए फकीर ने मुझसे कहा था, बड़ी तीव्र उत्कंठा हुई। मैंने सोचा कि जो फकीर मेरे घर पर आया था, वह साईबाबा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। जिन्होंने मुझे कृपा कर दर्शन दिये और मेरी इस प्रकार सहायता की, उन्हें ३५ रुपये का लालच कैसे हो सकता है ? इसके विपरीत वे अहेतुक कृपा करके आध्यात्मिक उन्नति के पथ ले जाते हैं।''

''जब चोरी गई राशि मुझे पुनः प्राप्त हो गई, तब मेरे हर्ष का पारावार न रहा। मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई और मैं अपना वचन भूल गया। कुलाबा में एक रात्रि को मैंने साईबाबा को स्वप्न में देखा। तभी मुझे अपनी शिरडी यात्रा के वचन की स्मृति हो आई। मैं गोवा पहुँचा और वहाँ से एक स्टीमर द्वारा बम्बई पहुँच कर शिरडी जाना चाहता था। परन्तु जब मैं किनारे पर पहुँचा तो देखा कि स्टीमर खचाखच भर चुका है और उसमे बिल्कुल भी जगह नहीं है। कैप्टन ने तो मुझे चढ़ने न दिया, परन्तु एक अपरिचित चपरासी के कहने पर मुझे स्टीमर में बैठने की अनुमति मिल गई और मैं इस प्रकार बम्बई पहुँचा। फिर रेलगाड़ी में बैठकर यहाँ पहुँच गया। बाबा के सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने में मुझे कोई शंका नहीं है। देखो तो, हम कौन हैं और कहाँ हमारा घर? हमारा भाग्य कितना अच्छा है कि बाबा हमारी चुराई गयी राशि वापस दिलाकर हमें यहाँ खींच कर लाये। आप शिरडीवासी हम लोगों की अपेक्षा सहस्त्रगुना श्रेष्ठ और भाग्यशाली हैं, जो बाबा के साथ हँसते-खेलते, मधुर भाषण करते और कई वर्षों से उनके समीप रहते हो। यह आप लोगों के गत जन्मों के शुभ संस्कारों का ही प्रभाव है, जो कि बाबा को यहाँ खींच लाया है। श्री साई ही हमारे लिये दत्त हैं। उन्होंने ही हमसे प्रतिज्ञा कराई तथा जहाज में स्थान दिलाया और हमें यहाँ लाकर अपनी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता का अनुभव कराया।''

श्रीमती औरंगाबादकर

सोलापूर के सखाराम औरंगाबादकर की पत्नी २७ वर्ष की दीर्घ अवधि के पश्चात् भी निःसन्तान प्राप्ति के निमित्त देवी और देवताओं की बहुत मन्नते

कीं, परन्तु फिर भी उनकी मनोकामना सिद्ध न हुई । तब वे सर्वथा निराश होकर अन्तिम प्रयत्न करने के विचार से अपने सौतेले पुत्र श्री विश्वनाथ को साथ ले शिरडी आईं और वहाँ बाबा की सेवा करते हुए, दो माह रुकी । जब भी वे मस्जिद जातीं तो बाबा को भक्तगणों से घिरे हुए पातीं । उनकी इच्छा बाबा से एकांत में भेंट कर संतान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने की थी, परन्तु कोई योग्य अवसर उनके हाथ न लग सका । अन्त में उन्होंने शामा से कहा कि, ''जब बाबा एकांत में हों तो मेरे लिए प्रार्थना कर देना ।'' शामा ने कहा कि, ''बाबा का तो खुला दरबार है । फिर भी यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा, परन्तु यश देना तो ईश्वर के ही हाथ में है । भोजन के समय तुम आँगन में नारियल और अगरबत्ती लेकर बैठना और जब मैं संकेत करूँ तो खड़ी हो जाना।'' एक दिन भोजन के उपरान्त जब शामा बाबा की गीले हाथ तौलिये से पोंछ रहे थे, तभी बाबा ने उनके गाल पर चिकोटी काट ली तब शामा क्रोधित होकर कहने लगे कि, ''देवा ! यह क्या आपके लिये उचित है कि आप इस प्रकार मेरे गाल पर चिकोटी काटें ? मुझे ऐसे शरारती देव की बिल्कुल आवश्यकता नहीं, जो इस प्रकार का आचरण करे । हम आप पर आश्रित हैं, तब क्या यही हमारी घनिष्ठता का फल है?'' बाबा ने कहा, ''अरे ! तुम तो ७२ जन्मों से मेरे साथ हो। मैंने अब तक तुम्हारे साथ ऐसा कभी नहीं किया । फिर अब तुम मेरे स्पर्श को बुरा क्यों माने हो ?'' शामा बोले कि, ''मुझे तो ऐसा देव चाहिए, जो हमें सदा प्यार करे और नित्य नया-नया मिष्ठान्न खाने को दे । मैं तुमसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखता और न मुझे स्वर्ग आदि ही चाहिए । मेरा तो विश्वास सदैव तुम्हारे चरणों में ही जागृत रहे, यही मेरी अभिलाषा है ।'' तब बाबा बोले कि ''हाँ, सचमुच मैं इसिलिये यहाँ आया हूँ । मैं सदैव तुम्हारा पालन और उदरपोषण करता आया हूँ, इसीलिये मुझे तुमसे अधिक स्नेह हैं ।''

जब बाबा अपनी गादी पर विराजमान हो गए, तभी शामा ने उस स्त्री को संकेत किया । उसने ऊपर आकर बाबा को प्रणाम कर उन्हें नारियल और धूपबत्ती भेंट की । बाबा ने नारियल हिलाकर देखा तो वह पानीं से पूर्ण था और

बजता था। बाबा ने शामा से कहा कि, ''यह बाई प्रार्थना करती है कि ठीक इसी प्रकार इनके पेट में भी बच्चा गुड़गुड़ करे, इसलिये आशीर्वादसहित यह नारियल इन्हें लौटा दो।'' तब फिर बाबा बोले कि, ''क्या नारियल से भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ? लोग कैसे मूर्ख हैं, जो इस प्रकार की बातें गढ़ते हैं।'' शामा ने कहा कि, ''मैं आपके वचनों और आशीष की शक्ति से पूर्ण अवगत हूँ और आपके एक शब्द मात्र से ही इस बाई को बच्चों का ताँता लग जाएगा। आप तो टाल रहे हैं और आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं। इस प्रकार कुछ देर तक वार्तालाप चलता रहा। बाबा बार-बार नारियल फोड़ने को कहते थे, परन्तु शामा बार-बार यही हठ पकड़े हुये थे कि बाबा इसे उस बाई को दे दें। अन्त में बाबा ने कह दिया कि, ''इसको पुत्र की प्राप्ति होगी।'' तब शामा ने पूछा कि, ''कब तक ?'' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''१२ मास में।'' अब नारियल फोड़कर उसके दो टुकड़े किये गए। एक भाग तो उन दोनों ने खाया और दूसरा भाग उस स्त्री को दिया।

तब शामा ने उस बाई से कहा कि, ''प्रिय बहन ! तुम मेरे वचनों की साक्षी हो। यदि १२ मास के भीतर तुमको सन्तान न हुई तो मैं इस देव के सिर पर ही नारियल फोड़कर इसे मस्जिद से निकाल दूँगा और यदि मैं इसमें असफल रहा तो मैं अपने को माधव नहीं कहूँगा। जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, इसकी सार्थकता तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जाएगी।''

एक वर्ष में ही उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और जब बालक पाँच मास का हुआ, उसे लेकर वह अपने पतिसहित बाबा के श्री चरणों में उपस्थित हुई। पति-पत्नी दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और कृतज्ञ पिता (श्रीमान औरंगाबादकर) ने पाँच सौ रुपये भेंट किये, जो बाबा के घोड़े श्यामकर्ण के लिये छत बनाने के काम आए।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय-३७

चावड़ी समारोह
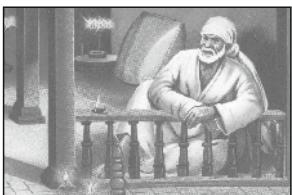
इस अध्याय में हम कुछ वेदान्तिक विषयों पर प्रारम्भिक दृष्टि से समालोचना कर चावड़ी के भव्य समारोह का वर्णन करेंगे।

प्रारम्भ

धन्य हैं श्री साई, जिनका जैसा जीवन था, वैसा ही अवर्णनीय लीला विलास, और अद्‌भुत क्रियाओं से पूर्ण नित्य के कार्यक्रम भी। कभी तो वे समस्त सांसारिक कार्यों से अलिप्त रहकर कर्मकाण्डी से प्रतीत होते और कभी ब्रह्मानंद और आत्मज्ञान में निमग्न रहा करते थे। कभी वे अनेक कार्य करते हुए भी उनसे असंबद्ध रहते थे। यद्यपि कभी-कभी वे पूर्ण निष्क्रिय प्रतीत होते तथापि वे आलसी नहीं थे। प्रशान्त महासागर की तरह सदैव जागरूक रहकर भी वे गंभीर, प्रशान्त और स्थिर दिखाई देते थे। उनकी प्रकृति का वर्णन तो सामर्थ्य से परे है।

यह तो सर्व विदित है कि वे बालब्रह्मचारी थे। वे सदैव पुरुषों को भ्राता तथा स्त्रियों को माता या बहन सदृश ही समझा करते थे। उनकी संगति द्वारा हमें जिस अनुपम ज्ञान की उपलब्धि हुई है, उसकी विस्मृति मृत्युपर्यन्त न होने पाए, ऐसी उनके श्रीचरणों में हमारी विनम्र प्रार्थना है। हम समस्त भूतों में ईश्वर का ही दर्शन करें और नामस्मरण की रसानुभूति करते हुए हम उनके मोहविनाशक चरणों की अनन्य भाव से सेवा करते रहें, यही हमारी आकांक्षा है।

हेमाडपंत ने अपने दृष्टिकोन द्वारा आवश्यकतानुसार वेदान्त का विवरण देकर चावड़ी के समारोह का वर्णन निम्न प्रकार किया है :-

चावड़ी का समारोह

बाबा के शयनागार का वर्णन पहले ही हो चुका है। वे एक दिन मस्जिद

में और दूसरे दिन चावड़ी मे विश्राम किया करते थे, और यह कार्यक्रम उनकी महासमाधि पर्यन्त चालू रहा। भक्तों ने चावड़ी में नियमित रूप से उनका पूजन-अर्चन १० दिसम्बर, सन् १९०९ से आरम्भ कर दिया था।

अब उनके चरणाम्बुजों का ध्यान कर, हम चावड़ी के समारोह का वर्णन करेंगे। इतना मनमोहक दृश्य था कि देखने वाले ठिठक-ठिठक कर रह जाते थे और अपनी सुध-बुध भूल यही आकांक्षा करते थे कि यह दृश्य कभी हमारी आँखो से ओझल न हो। जब चावड़ी में विश्राम करने की उनकी नियमित रात्रि आती तो उस रात्रि को भक्तों का अपार जन-समुदाय मस्जिद के सभा-मंडप में एकत्रित होकर घण्टों तक भजन किया करता था। उस मंडप के एक ओर सुसज्जित रथ रखा रहता था और दूसरी ओर तुलसी वृन्दावन था। सारे रसिक-जन-सभा-मंडप में ताल, चिपलिस, करताल, मृदंग, खंजरी और ढोल आदि नाना प्रकार के वाद्य लेकर भजन आरम्भ कर देते थे। इन सभी भजनानंदी भक्तों को चुम्बक के समान आकर्षित करनेवाले तो श्री साईबाबा ही थे।

मस्जिद के आँगन को देखो तो भक्त-गण बड़ी उमंगों से नाना प्रकार के मंगल-कार्य सम्पन्न करने में संलग्न थे। कोई तोरण बाँधकर दीपक जला रहे थे, तो कोई पालकी और रथ का श्रृंगार कर निशानादि हाथों में लिये हुए थे। कहीं-कहीं श्री साईबाबा की जयजयकार से आकाशमंडल गुंजायमान हो रहा था। दीपों के प्रकाश से जगमगाती मस्जिद ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो आज मंगलदायिनी दीपावली स्वयं शिरडी में आकर विराजित हो गई हो। मस्जिद के बाहर दृष्टिपात किया तो द्वार पर श्री साईबाबा का पूर्ण सुसज्जित घोड़ा श्यामसुंदर खड़ा था। श्री साईबाबा अपनी गादी पर शान्त मुद्रा में विराजित थे कि इसी बीच भक्त-मंडलीसहित तात्या पाटील ने आकर उन्हें तैयार होने की सूचना देते हुए उठने में सहायता की। घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण तात्या पाटील उन्हें ''मामा'' कहकर संबोधित किया करते थे। बाबा सदैव की भाँति अपनी वही कफनी पहनकर बगल में सटका दबाकर चिलम और तम्बाकू साथ लेकर कन्धे पर एक कपड़ा डालकर चलने को तैयार हो गए। तभी तात्या पाटील ने उनके कांधो पर एक सुनहरा ज़री का शेला डाल

दिया । इसके पश्चात् स्वयं बाबा ने धूनी को प्रज्ज्वलित रखने के लिये उसमें कुछ लकड़ियाँ डालकर तथा धूनी के समीप के दीपक को बाँये हाथ से बुझाकर चावड़ी को प्रस्थान कर दिया । अब नाना प्रकार के वाद्य बजने आरम्भ हो गए और उनसे विविध स्वर निकलने लगे । सामने रंग-बिरंगी आतिशबाजी चलने लगी और नर-नारी भाँति-भाँति के वाद्य बजाकर उनकी कीर्ति के भजन गाते हुए आगे-आगे चलने लगे । कोई आनंदविभोर हो नृत्य करने लगा तो कोई अनेक प्रकार के ध्वज और निशान लेकर चलने लगे । जैसे ही बाबा ने मस्जिद की सीढ़ी पर अपने चरण रखे, वैसे ही भालदार ने ललकार कर उनके प्रस्थान की सूचना दी । दोनों ओर से लोग चँवर लेकर खड़े हो गए और उन पर पंखा झलने लगे । फिर पथ पर दूर तक बिछे हुए कपड़ों के ऊपर से समारोह आगे बढ़ने लगा । तात्या पाटील उनका बायाँ तथा म्हालसापति दायाँ हाथ पकड़ कर तथा बापूसाहेब जोग उनके पीछे छत्र लेकर चलने लगे। इनके आगे-आगे पूर्ण सुसज्जित अश्व श्यामसुंदर चल रहा था और उसके पीछे भजन मंडली तथा भक्तों का समूह वाद्यों की ध्वनि के संग हरि और साई नाम की ध्वनि, जिससे आकाश गूँज उठता था, उच्चारित करते हुए चल रहा था । अब समारोह चावड़ी के कोने पर पहुँचा और सारा जनसमुदाय अत्यन्त आनंदित तथा प्रफुल्लित दिखलाई पड़ने लगा । जब कोने पर पहुँचकर बाबा चावड़ी के सामने खड़े हो गए, उस समय उनके मुख-मंडल की दिव्यप्रभा बड़ी अनोखी थी, ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अरूणोदय के समय बाल रवि क्षितिज पर उदित हो रहा हो । उत्तराभिमुख होकर वे एक ऐसी मुद्रा में खड़े हो गए, जैसे कोई किसी के आगमन की प्रतिक्षा कर रहा हो । वाद्य पूर्ववत् ही बजते रहे और वे अपना दाहिना हाथ थोड़ी देर ऊपर-नीचे उठाते रहे । वादक बड़े जोरो से वाद्य बजाने लगे और इसी समय काकासाहेब दीक्षित गुलाल की वर्षा करने लगे । बाबा के मुखमंडल पर रक्तिम आभा जगमगाने लगी और सब लोग तृप्त-हृदय होकर उस रस-माधुरी का आस्वादन करने लगे । इस मनमोहक दृश्य और अवसर का वर्णन शब्दों में करने में लेखनी असमर्थ है । भाव-विभोर होकर भक्त म्हालसापति तो नृत्य करने लगे, परन्तु बाबा की अभंग एकाग्रता देखकर सब भक्तों को महान् आश्चर्य होने लगा । एक हाथ में

लालटेन लिये तात्या पाटील बाबा के बाँई ओर और आभूषण लिये म्हालसापति दाहिनी ओर चले। देखो तो, कैसे सुन्दर समारोह की शोभा तथा भक्ति का दर्शन हो रहा है। इस दृश्य की झाँकी पाने के लिये ही सहस्त्रों नर-नारी, क्या अमीर और क्या फकीर, सभी वहाँ एकत्रित थे। अब बाबा मंद-मंद गति से आगे बढ़ने लगे और चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण दिखाई पड़ने लगा। सम्पूर्ण वायुमंडल भी खुशी से झूम उठा और इस प्रकार समारोह चावड़ी पहुँचा। अब वैसा दृश्य भविष्य में कोई न देख सकेगा। अब तो केवल उसकी याद करके आँखों के सम्मुख उस मनोरम अतीत की कल्पना से ही अपने हृदय की प्यास शान्त करनी पड़ेगी।

चावड़ी की सजावट भी अति उत्तम प्रकार से की गई थी। उत्तम चाँदनी, शीशे और भाँति-भाँति के हाँडी-लालटेन (गैस बत्ती) लगे हुए थे। चावड़ी पहुँचने पर तात्या पाटील आगे बढ़े और आसन बिछाकर तकिये के सहारे उन्होंने बाबा को बैठाया। फिर उनको एक बढ़िया अँगरखा पहनाया और भक्तों ने नाना प्रकार से उनकी पूजा की, उन्हें स्वर्ण-मुकुट धारण कराया, तथा फूलों और जवाहरों की मालाएँ उनके गले में पहनाई। फिर ललाट पर कस्तूरी का वैष्णव तिलक तथा मध्य में बिन्दी लगाकर दीर्घ काल तक उनकी ओर अपलक निहारते रहे। उनके सिर का कपड़ा बदल दिया गया और उसे ऊपर ही उठाये रहे, क्योंकि सभी शंकित थे कि कहीं वे उसे फेंक न दें, परन्तु बाबा तो अन्तर्यामी थे और उन्होंने भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही पूजन करने दिया। इन आभूषणों से सुसज्जित होने के उपरान्त तो उनकी शोभा अवर्णनीय थी।

नानासाहेब निमोणकर ने एक सुन्दर वृत्ताकार छत्र लगाया, जिसके केन्द्र में एक छड़ी लगी हुई थी। बापूसाहेब जोग ने चाँदी की एक सुन्दर थाली में पादप्रक्षालन किया और अर्घ्य देने के पश्चात् उत्तम विधि से उनका पूजन-अर्चन किया और उनके हाथों में चन्दन लगाकर पान का बीड़ा दिया। उन्हें आसन पर बिठलाया गया। फिर तात्या पाटील तथा अन्य सब भक्त-गण उनके श्री-चरणों पर अपने शीश झुकाकर प्रणाम करने लगे। जब वे तकिये

के सहारे बैठ गए, तब भक्तगण दोनों ओर से चँवर और पंखे झलने लगे । शामा ने चिलम तैयार कर तात्या पाटील को दी । उन्होंने एक फूँक लगाकर चिलम प्रज्ज्वलित की और उसे बाबा को पीने को दी । उनके चिलम पी लेने के पश्चात् फिर वह भगत म्हालसापति को तथा बाद में सब भक्तों को दी गई । धन्य है वो निर्जीव चिलम । कितना महान् तप है उसका, जिसने कुम्हार द्वारा पहले चक्र पर घुमाने, धूप में सुखाने, फिर अग्नि में तपाने जैसे अनेक संस्कार पाये । तब कहीं उसे बाबा के कर-स्पर्श तथा चुम्बन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । जब यह सब कार्य समाप्त हो गया, तब भक्तगण ने बाबा को फुलमालाओं से लाद दिया और सुगन्धित फूलों के गुलदस्तें उन्हें भेंट किये । बाबा तो वैराग्य के पूर्ण अवतार थे, वे उन हीरे-जवाहरात व फूलों के हारों तथा इस प्रकार की सज-धज में कब रुचि लेने वाले थे ? परन्तु भक्तों के सच्चे प्रेमवश ही, उनके इच्छानुसार पूजन करने में उन्होंने कोई आपत्ति न की । अन्त में मांगलिक स्वर में वाद्य बजने लगे और बापूसाहेब जोग ने बाबा की यथाविधि आरती की । आरती समाप्त होने पर भक्तों ने बाबा को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर सब एक-एक करके अपने घर लौटने लगे । तब तात्या पाटील ने उन्हें चिलम पिलाकर गुलाब जल, इत्र इत्यादि लगाया और विदा लेते समय गुलाब का एक पुष्प दिया । तभी बाबा प्रेमपूर्वक कहने लगे कि, ''तात्या, मेरी देखभाल भली-भाँति करना । तुम्हें घर जाना है तो जाओ, परन्तु रात्रि में कभी-कभी आकर मुझे देख भी जाना ।'' तब स्वीकारात्मक उत्तर देकर तात्या पाटील चावड़ी से अपने घर चले गए । फिर बाबा ने बहुत-सी चादरें बिछाकर स्वयं अपना बिस्तर लगाकर विश्राम किया ।

अब हम भी विश्राम करं और इस अध्याय को समाप्त करते हुये हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रतिदिन शयन के पूर्व श्री साईबाबा और चावड़ी के समारोह का ध्यान अवश्य कर लिया करें ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-३८

बाबा की हांडी, नानासाहेब द्वारा देव-मूर्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ का प्रसाद ।

गत अध्याय में चावड़ी के समारोह का वर्णन किया गया है । अब इस अध्याय में बाबा की हांडी तथा कुछ अन्य विषयों का वर्णन होगा ।

प्रस्तावना

हे सद्‌गुरु साई ! तुम धन्य हो ! हम तुम्हें नमन करते हैं । तुमने विश्व को सुख पहुँचाया और भक्तों का कल्याण किया । तुम उदार हृदय हो । जो भक्तगण तुम्हारे अभय चरण-कमलों में अपने को समर्पित कर देते हैं, तुम उनकी सदैव रक्षा एवं उद्धार किया करते हो । भक्तों के कल्याण और परित्राण के निमित्त ही तुम अवतार लेते हो । ब्रह्म के साँचे में शुद्ध आत्मारूपी द्रव्य ढाला गया और उसमें से ढलकर जो मूर्ति निकली, वही संतों के संत श्री साईबाबा हैं । साई स्वयं ही ''आत्माराम'' और ''चिरआनन्दधाम'' हैं । इस जीवन के समस्त कार्यों को नश्वर जानकर उन्होंने भक्तों को निष्काम और मुक्त किया ।

बाबा की हांडी

मानव धर्म-शास्त्र में भिन्न-भिन्न युगों के लिये भिन्न-भिन्न साधनाओं का उल्लेख किया गया । **सतयुग मे तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान का विशेष महात्म्य है । सर्व प्रकार के दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है ।** जब मध्याह्न के समय हमें भोजन प्राप्त नहीं होता, तब हम विचलित हो जाते है । ऐसी ही स्थिति अन्य प्राणियों की अनुभव कर जो किसी भिक्षुक या भूखे को भोजन देता है, वही श्रेष्ठ दानी है । तैत्तरीयोपनिषद् में लिखा है कि

''अन्न ही ब्रह्म है और उसी से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है तथा उससे ही वे जीवित रहते हैं और मृत्यु के उपरांत उसी में लय भी हो जाते है ।'' जब कोई अतिथि दोपहर के समय अपने घर आता है तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उसका अभिनंदन कर उसे भोजन कराएँ । अन्य दान जैसे – धन, भूमि और वस्त्र इत्यादि देने में तो पात्रता का विचार करना पड़ता है, परन्तु अन्न के लिये विशेष सोच विचार की आवश्यकता नहीं है । दोपहर के समय कोई भी अपने द्वार पर आए, उसे शीघ्र भोजन कराना हमारा परम कर्तव्य है । प्रथमतः लूले, लंगड़े, अन्धे या रुग्ण भिखारियों को ; फिर उन्हे, जो हाथ पैर से स्वस्थ हैं; और उन सभी के बाद अपने सम्बन्धियों को भोजन कराना चाहिए । अन्य सभी की अपेक्षा पंगुओं को भोजन कराने का महत्व अधिक है । अन्नदान के बिना अन्य सब प्रकार के दान वैसे ही अपूर्ण है, जैसे कि चन्द्रमा बिना तारे, पदक बिना हार, कलश बिना मन्दिर, कमलरहित तालाब, भक्तिरहित भजन, सिन्दूररहित सुहागिन, मधुर स्वरविहीन गायन, नमक बिना भोजन । जिस प्रकार अन्य भोज्य पदार्थों में दाल उत्तम समझी जाती है, उसी प्रकार समस्त दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है । अब देखें कि बाबा किस प्रकार भोजन तैयार कराकर उसका वितरण किया करते थे ।

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि बाबा अल्पाहारी थे और वे थोड़ा बहुत जो कुछ भी खाते थे, वह उन्हें केवल दो गृहों से ही भिक्षा में उपलब्ध हो जाया करता था । परन्तु जब उनके मन में सभी भक्तों को भोजन कराने की इच्छा होती तो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संपूर्ण व्यवस्था वे स्वयं किया करते थे । वे किसी पर निर्भर नहीं रहते थे और न ही किसी को इस संबंध में कष्ट ही दिया करते थे । प्रथमतः वे स्वयं बाजार जाकर सब वस्तुएँ – अनाज, आटा, नमक, मिर्ची, जीरा, खोपरा और अन्य मसाले आदि वस्तुएँ नगद दाम देकर खरीद लाया करते थे । यहाँ तक कि पीसने का कार्य भी वे स्वयं ही किया करते थे । मस्जिद के आँगन में ही एक भट्‌टी बनाकर उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित करके हांडी में ठीक नाप से पानी भर देते थे । हांडी दो प्रकार की थी – एक छोटी और दूसरी बड़ी । एक में सौ और दूसरी में पाँच सौ व्यक्तियों का भोजन

तैयार हो सकता था । कभी वे मीठे चावल बनाते और कभी मांसमिश्रित चावल (पुलाव) बनाते थे । कभी-कभी दाल और मुटकुले भी बना लेते थे । पत्थर की सिल पर महीन मसाला पीस कर हंडी में डाल देते थे । भोजन रुचिकर बने, इसका वे भरसक प्रयत्न किया करते थे । ज्वार के आटे को पानी में उबाल कर उसमें छाँछ मिलाकर अंबिल (आमटी) बनाते और भोजन के साथ सब भक्तों को समान मात्रा मे बाँट देते थे । भोजन ठीक बन रहा है या नहीं, यह जानने के लिये वे अपनी कफनी की बाँहें ऊपर चढ़ाकर निर्भय हो उबलती हांडी में हाथ डाल देते और उसे चारों ओर घुमाया करते थे। ऐसा करने पर भी उनके हाथ पर न कोई जलन का चिह्न और न चेहरे पर कोई पीड़ा की रेखा प्रतीत होती थी । जब भोजन तैयार हो जाता, तब वे मस्जिद से बर्तन मँगाकर मौलवी से फातिहा पढ़ने को कहते थे, फिर वे म्हालसापति तथा तात्या पाटील के प्रसाद का भाग पृथक् रखकर शेष भोजन गरीब और अनाथ लोगों को खिलाकर उन्हें तृप्त करते थे । सचमुच वे लोग धन्य थे । कितने भाग्यशाली थे वे, जिन्हें बाबा के हाथ का बना और परोसा हुआ भोजन खाने को प्राप्त हुआ ।

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि क्या वे शाकाहारी और मांसाहारी भोज्य पदार्थो का प्रसाद सभी को बाँटा करते थे ? इसका उत्तर बिल्कुल सीधा और सरल है । जो लोग मांसाहारी थे, उन्हें हांडी मे से दिया जाता था तथा शाकाहारियों को उसका स्पर्श तक न होने देते थे । न कभी उन्होंने किसी को मांसाहार का प्रोत्साहन ही दिया और न ही उनकी आंतरिक इच्छा थी कि किसी को इसके सेवन की आदत लग जाए । यह एक अति पुरातन अनुभूत नियम है कि **जब गुरुदेव प्रसाद वितरण कर रहे हों, तभी यदि शिष्य उसके ग्रहण करने में शंकित हो जाए तो उसका अधःपतन हो जाता है ।** यह अनुभव करने के लिये कि शिष्यगण इस नियम का किस अंश तक पालन करते हैं, वे कभी-कभी परीक्षा भी ले लिया करते थे । उदाहरणार्थ एक एकादशी के दिन उन्होंने दादा केलकर को कुछ रुपये देकर कुछ मांस खरीद लाने को कहा । दादा केलकर पूरे कर्मकांडी थे और प्रायः सभी नियमों का

जीवन में पालन किया करते थे। उनकी दृढ़ भावना थी कि द्रव्य, अन्न और वस्त्र इत्यादि गुरु को भेंट करना पर्याप्त नहीं है। केवल उनकी आज्ञा ही शीघ्र कार्यान्वित करने से वे प्रसन्न हो जाते है। यही उनकी दक्षिणा है। दादा शीघ्र कपड़े पहिन कर एक थैला लेकर बाजार जाने के लिये उद्यत हो गए। तब बाबा ने उन्हें लौटा दिया और कहा कि तुम न जाओ, अन्य किसी को भेज दो। दादा ने अपने नौकर पाण्डू को इस कार्य के निमित्त भेजा। उसको जाते देखकर बाबा ने उसे भी वापस बुलाने को कहकर यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्होंने दादा से कहा कि, देखो तो नमकीन पुलाव कैसा पका है ? दादा ने यों ही मुँह देखी कह दिया कि - अच्छा है। तब वे कहने लगे कि तुमने न अपनी आँखो से ही देखा और न जिह्वा से स्वाद लिया, फिर तुमने यह कैसे कह दिया कि उत्तम बना है? थोड़ा ढक्कन हटाकर तो देखो। बाबा ने दादा की बाँह पकड़ी और बलपूर्वक बर्तन में डालकर बोले - थोड़ा सा इसमें से निकालो और अपना कट्टरपन छोड़कर चख कर देखो। जब माँ का सच्चा प्रेम बच्चे पर उमड़ आता है, तब माँ उसे चिकोटी भरती है, परन्तु उसका चिल्लाना या रोना देखकर वह उसे अपने हृदय से लगाती है। इसी प्रकार बाबा ने सात्विक मातृप्रेम के वश हो दादा का इस प्रकार हाथ पकड़ा। यथार्थ में कोई भी सन्त या गुरु कभी भी अपने कर्मकांडी शिष्य को वर्जित भोज्य के लिये आग्रह करके अपनी अपकिर्ति कराना पसन्द न करेगा।

इस प्रकार हांडी का कार्यक्रम सन् १९१० तक चला ओर फिर स्थगित हो गया। जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, दासगणु ने अपने कीर्तन द्वारा समस्त बम्बई प्रांत में बाबा की अधिक कीर्ति फैलाई। फलतः इस प्रान्त से लोगों के झुंड के झुंड शिरडी को आने लगे और थोड़े ही दिनों में शिरडी पवित्र तीर्थ-क्षेत्र बन गया। भक्तगण बाबा को नैवेद्य अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ लाते थे, जो इतनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता था कि फकीरों और भिखारियों को सन्तोषपूर्वक भोजन कराने पर भी बच जाता

था । नैवेद्य वितरण करने की विधि का वर्णन करने से पूर्व हम नानासाहेब चाँदोरकर की उस कथा का वर्णन करेंगे, जो स्थानीय देवी-देवताओं और मूर्तियों के प्रति बाबा की सम्मान-भावना की द्योतक है ।

नानासाहेब द्वारा देव-मूर्ति की उपेक्षा

कुछ व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार बाबा को ब्राह्मण तथा कुछ उन्हें यवन समझा करते थे, परन्तु वास्तव में उनकी कोई जाति न थी । उनकी और ईश्वर की केवल एक जाति थी।१ कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं जानता कि वे किस कुल में जन्में और उनके माता-पिता कौन थे । फिर उन्हें हिन्दू या यवन कैसे घोषित किया जा सकता है ? यदि वे यवन होते तो मस्जिद में सदैव धुनी और तुलसी वृन्दावन ही क्यों लगाते और शंख, घण्टे तथा अन्य संगीत वाद्य क्यों बजाने देते ? हिन्दुओं की विविध प्रकार की पूजाओं को क्यों स्वीकार करते ? यदि सचमुच यवन होते तो उनके कान क्यों छिदे होते तथा वे हिन्दू मन्दिरों का स्वयं जीर्णोद्धार क्यों करवाते ? उन्होंने हिन्दुओं की मूर्तियों तथा देवी-देवताओं की जरा सी उपेक्षा भी कभी सहन न की ।

एक बार नानासाहेब चाँदोरकर अपने साढ़ू (साली के पति) श्री बिनीवले के साथ शिरडी आए । जब वे मस्जिद मे पहुँचे, बाबा वार्तालाप करते हुये अनायास ही क्रोधित होकर कहने लगे कि, ‘‘तुम दीर्घकाल से मेरे सान्निध्य में हो, फिर भी ऐसा आचरण क्यों करते हो ?’’ नानासाहेब प्रथमतः इन शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सके । अतः उन्होंने अपना अपराध समझाने की प्रार्थना की । प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि, ‘‘तुम कब कोपरगाँव आए और फिर वहाँ से कैसे शिरडी आ पहुँचे ?’’ तब नानासाहेब को अपनी भूल तुरन्त ही ज्ञात हो गई । उनका यह नियम था कि शिरडी आने से पूर्व वे कोपरगाँव में गोदावरी के तट पर स्थित श्री दत्त का पूजन किया करते थे । परन्तु रिश्तेदार के दत्त-उपासक होने पर भी इस बार विलम्ब होने के भय से

---

१. (क) जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ।।
(ख) जाति पाँति पूछै नहिं कोई । हरि को भजे सो हरि का होई ।। - तुलसी

उन्होंने उनको भी दत्त मंदिर जाने से हतोत्साहित किया और वे दोनों सीधे शिरडी चले आए थे। अपना दोष स्वीकार कर उन्होंने कहा कि, ''गोदावरी में स्नान करते समय पैर में एक बड़ा काँटा चुभ जाने के कारण अधिक कष्ट हो गया था।'' बाबा ने कहा कि ''यह तो बहुत छोटा सा दंड था।'' और उन्हें भविष्य में ऐसे आचरण के लिये सदैव सावधान रहने की चेतावनी दी।

नैवेद्य-वितरण

अब हम नैवेद्य-वितरण का वर्णन करेंगे। आरती समाप्त होने पर बाबा से आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर जब भक्तगण अपने-अपने घर चले जाते, तब बाबा परदे के भीतर प्रवेश कर निम्बर के सहारे पीठ टेककर भोजन के लिये आसन ग्रहण करते थे। भक्तों की दो पंक्तियाँ उनके समीप बैठा करती थी। भक्तगण नाना प्रकार के नैवेद्य, पूरी, पूरनपोली (जो खानदेशमें बनाई जाती है।) पेड़ा, बर्फी, बासुंदी, उपमा (सांजा) अम्बे मोहर (भात इत्यादि) थाली में सजा-सजा कर लाते और जब तक वे नैवेद्य स्वीकार न कर लेते, तब तक भक्तगण बाहर ही प्रतिक्षा किया करते थे। समस्त नैवेद्य एकत्रित कर दिया जाता, तब वे स्वयं भगवान् को नैवेद्य अर्पण कर स्वयं ग्रहण करते थे। उसमें से कुछ भाग बाहर प्रतीक्षा करने वालों को देकर शेष भीतर बैठे हुए भक्त पा लिया करते थे। जब बाबा सबके मध्य में आ विराजते, तब दोनों पंक्तियों में बैठे हुए भक्त तृप्त होकर भोजन किया करते थे। बाबा प्रायः शामा और निमोणकर से भक्तों को अच्छी तरह भोजन कराने और प्रत्येक की आवश्यकता का सावधानीपूर्वक ध्यान रखने को कहते थे। वे दोनो भी इस कार्य को बड़ी लगन और हर्ष से करते थे। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक ग्रास भक्तों को पोषक और सन्तोषदायक होता था। कितना मधुर, पवित्र, प्रेमरसपूर्ण भोजन था वह ? सदा मांगलिक और पवित्र।

छाँछ (मट्ठा) का प्रसाद

इस सत्संग में बैठकर एक दिन जब हेमाडपंत पूर्णतः भोजन कर चुके, तब बाबा ने उन्हें एक प्याला छाँछ पीने को दिया। उसके श्वेत रंग से वे प्रसन्न

तो हुए, परन्तु उदर में जरा सी भी गुंजाइश न होने के कारण उन्होंने केवल एक घूँट ही पिया। उनका यह उपेक्षात्मक व्यवहार देखकर बाबा ने कहा कि, ''सब पी जाओ। ऐसा सुअवसर अब कभी न पाओगे।'' तब उन्होंने पूरी छाँछ पी ली, किन्तु उन्हें बाबा के सांकेतिक वचनों का मर्म शीघ्र ही विदित हो गया, क्योंकि इस घटना के थोड़े दिनों के पश्चात् ही बाबा समाधिस्थ हो गए।

पाठकों ! अब हमें अवश्य ही हेमाडपंत के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने तो छाँछ का प्याला पिया, परन्तु वे हमारे लिए यथेष्ट मात्रा में श्री साई-लीला रूपी अमृत दे गए।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

अध्याय-३९
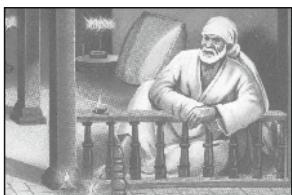
बाबा का संस्कृत ज्ञान : गीता के एक श्लोक की बाबा द्वारा टीका, समाधि मन्दिर का निर्माण ।

इस अध्याय में बाबा ने गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाया है । कुछ लोगों की ऐसी धारणा थी कि बाबा को संस्कृत भाषा का ज्ञान न था और नानासाहेब की भी उनके प्रति ऐसी ही धारणा थी । इसका खंडन हेमाडपंत ने मूल मराठी ग्रंथ के ५० वे अध्याय में किया है । दोनों अध्यायों का विषय एक-सा होने के कारण वे यहाँ सम्मिलित रूप में दिए जाते हैं ।

प्रस्तावना

शिरडी के सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ? श्री द्वारकामाई भी धन्य है, जहाँ श्री साई ने आकर निवास किया और वहीं समाधिस्थ हुए ।

शिरडी के नर-नारी भी धन्य हैं, जिन्हें साई ने पधारकर अनुग्रहीत किया और जिनके प्रेमवश ही वे दूर से चलकर वहाँ आए । शिरडी तो पहले एक छोटा सा ग्राम था, परन्तु श्री साई के सम्पर्क से विशेष महत्व पाकर वह एक तीर्थ-क्षेत्र में परिणत हो गया ।

शिरडी की नारियाँ भी परम भाग्यशालिनी हैं, जिनका उनपर असीम और अडिग विश्वास प्रशंसा के परे है । आठों प्रहर काम काज करते, पीसते, अनाज निकालते, गृहकार्य करते हुये वे उनकी कीर्ति का गुणगान किया करती थीं । उनके प्रेम की उपमा ही क्या हो सकती है ? वे अत्यन्त मधुर गायन करती थीं, जिससे गायकों और श्रोतागण के मन को परम शांति मिलती थी ।

बाबा द्वारा टीका

किसी को स्वप्न में भी ज्ञात न था कि बाबा संस्कृत के भी ज्ञाता हैं । एक

दिन नानासाहेब चाँदोरकर को गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाकर उन्होंने लोगों को विस्मय में डाल दिया। इसका संक्षिप्त वर्णन सेवानिवृत्त मामलतदार श्री. बी. व्ही. देव ने मराठी साईलीला पत्रिका के भाग ४, (स्फुट विषय पृष्ठ ५६३) में छपवाया है। इसका संक्षिप्त विवरण Sai Baba's Charters and Sayings पुस्तक के ६१वें पृष्ठ पर और The Wonderous Saint Sai Baba के पृष्ठ ३६ पर भी छपा है। ये दोनों पुस्तकें श्री. बी. व्ही. नरसिंह स्वामी द्वारा रचित हैं। श्री. बी. व्ही. देव ने अंग्रेजी में तारीख २७-९-१९३६ को एक व्यक्तव्य दिया है, जो कि नरसिंह स्वामी द्वारा रचित पुस्तक के ''भक्तों के अनुभव, भाग-३'' में छापा गया है। श्री देव को इस विषय की प्रथम सूचना नानासाहेब चाँदोरकर से प्राप्त हुई थी। इसलिए उनका कथन नीचे उद्धृत किया जाता है। नानासाहेब चाँदोरकर वेदांत के विद्वान विद्यार्थियो में से एक थे। उन्होंने अनेक टीकाओं के साथ गीता का अध्ययन भी किया था तथा उन्हें अपने इस ज्ञान का अहंकार भी था। उनका मत था कि बाबा संस्कृत भाषा के सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसीलिये बाबा ने उनके इस भ्रम का निवारण करने का विचार किया। यह उस समय की बात है, जब भक्तगण अल्प संख्या में आते थे। बाबा भक्तों से एकान्त में देर तक वार्तालाप किया करते थे। नानासाहेब इस समय बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे और अस्पष्ट शब्दों में कुछ गुनगुना रहे थे।

बाबा - नाना, तुम धीरे-धीरे क्या कर रहे हो ?

नाना - मैं गीता के एक श्लोक का पाठ कर रहा हूँ।

बाबा - कौन-सा श्लोक है वह ?

नाना - यह भगवद्गीता का एक श्लोक है।

बाबा - जरा उसे उच्च स्वर में कहो।

तब नाना भगवद्गीता के चौथे अध्याय का ३४ वाँ श्लोक कहने लगे :-

''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥''

बाबा – नाना, क्या तुम्हें इसका अर्थ विदित है ?

नाना – जी, महाराज।

बाबा – यदि विदित है तो मुझे भी सुनाओ।

नाना – इसका अर्थ है – तत्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों को भली प्रकार दंडवत् कर, सेवा और निष्कपट भाव से किये गए प्रश्न द्वारा ज्ञान को जान। वे ज्ञानी, जिन्हें सद्‌वस्तु (ब्रह्म) की प्राप्ति हो चुकी है, तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे।

बाबा – नाना, मैं इस प्रकार का संकुल भावार्थ नहीं चाहता। मुझे तो प्रत्येक शब्द और उसका भाषांतरित उच्चारण करते हुए व्याकरणसम्मत अर्थ समझाओ। अब नाना एक-एक शब्द का अर्थ समझाने लगे।

बाबा – नाना, क्या केवल साष्टांग नमस्कार करना ही पर्याप्त है ?

नाना – नमस्कार करने के अतिरिक्त मैं ''प्रणिपात'' का कोई दूसरा अर्थ नहीं जानता।

बाबा – ''परिप्रश्न'' का क्या अर्थ है ?

नाना – प्रश्न पूछना।

बाबा – ''प्रश्न'' का क्या अर्थ है ?

नाना – वही (प्रश्न पूछना)

बाबा – यदि ''परिप्रश्न'' और ''प्रश्न'' दोनों का अर्थ एक ही है, तो फिर व्यास ने 'परि' उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया ?

नाना – मुझे तो 'परिप्रश्न' का अन्य अर्थ विदित नहीं है।

बाबा – 'सेवा ?'यहाँ किस प्रकार की सेवा से आशय है ?

नाना – वही जो हम लोग सदा आपकी करते रहते हैं।

बाबा – क्या यह 'सेवा' पर्याप्त है ?

नाना – और इससे अधिक 'सेवा' का कोई विशिष्ट अर्थ मुझे ज्ञात नहीं है।

बाबा – दूसरी पंक्ति के ''उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं'' में क्या तुम 'ज्ञान' शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर इसका अर्थ कह सकते हो ?

नाना – जी हाँ।

बाबा – कौन सा शब्द ?

नाना – अज्ञानम्।

बाबा – 'ज्ञानं' के बजाय उस शब्द को जोड़ कर क्या इस श्लोक का अर्थ निकलता है ?

नाना – जी नहीं, शांकर भाष्य में इस प्रकार की कोई व्याख्या नहीं है।

बाबा – नहीं है, तो क्या हुआ ? यदि 'अज्ञान' शब्द के प्रयोग से कोई उत्तम अर्थ निकल सकता है तो उसमें क्या आपत्ति है ?

नाना – मैं नहीं जानता कि उसमें 'अज्ञान' शब्द का किस प्रकार प्रयोग होगा।

बाबा – कृष्ण ने अर्जुन को क्यों ज्ञानियों या तत्वदर्शियों को नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और सेवा करने का उपदेश किया था ? क्या स्वयं कृष्ण तत्वदर्शी नहीं थे ? वस्तुतः स्वयं ज्ञान स्वरूप ?

नाना – जी हाँ, वे ज्ञानावतार थे। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने अर्जुन से अन्य ज्ञानियों के लिये क्यों कहा ?

बाबा – क्या तुम्हारी समझ में नहीं आया ?

अब नाना हतप्रभ हो गए। उनका घमंड चूर हो चुका था। तब बाबा स्वयं इस प्रकार अर्थ समझाने लगे।

(१) ज्ञानियों को केवल साष्टांग नमस्कार करना पर्याप्त नहीं है। हमें सद्गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना चाहिए।

(२) केवल प्रश्न पूछना पर्याप्त नहीं। किसी कुप्रवृत्ति या पाखंड, या वाक्य-जाल में फँसाने, या कोई त्रुटि निकालने की भावना से प्रेरित होकर प्रश्न नहीं करना चाहिए, वरन् प्रश्न उत्सुकतापूर्वक केवल मोक्ष या आध्यात्मिक पथ पर उन्नति प्राप्त करने की भावना से ही प्रेरित होकर करना चाहिए।

(३) मैं तो सेवा करने या अस्वीकार करने में पूर्ण स्वतंत्र हूँ, जो ऐसी भावना से कार्य करता है, वह सेवा नहीं कही जा सकती। उसे अनुभव करना चाहिए कि मुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। इस शरीर पर तो गुरु का ही अधिकार है और केवल उनकी सेवा के निमित्त ही वह विद्यमान है।

इस प्रकार आचरण करने से तुम्हें सद्‌गुरू द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी, जैसा कि पूर्व श्लोक में बताया गया हैं।

नाना को यह समझ में नही आ सका कि गुरु किस प्रकार 'अज्ञान' की शिक्षा देते हैं।

बाबा - ज्ञान का उपदेश कैसा है ? अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आत्मानुभूति की शिक्षा। अज्ञान का नाश करना ज्ञान है (गीता के श्लोक १९-६६[१] पर ज्ञानेश्वरी भाष्य की ओवी १३९६ में इस प्रकार वर्णन है :- हे अर्जुन ! यदि तुम्हारी निद्रा और स्वप्न भंग हो, तब तुम स्वयं हो। वह इसी प्रकार है। गीता के अध्याय ५-१६ के आगे टीका में लिखा है :- क्या ज्ञान में अज्ञान नष्ट करने के अतिरिक्त कोई और भेद भी है ?) अंधकार नष्ट करने का अर्थ प्रकाश है। जब हम द्वैत नष्ट करने की चर्चा करते हैं, तो हम अद्वैत की बात करते हैं जब हम अंधकार नष्ट करने की बात करते हैं तो उसका अर्थ है कि प्रकाश की बात करते हैं। यदि हम अद्वैत की स्थिति का अनुभव करना चाहते हैं तो हमें द्वैत की भावना नष्ट करनी चाहिए। यह अद्वैत स्थिति प्राप्त होने का लक्षण है। द्वैत में रहकर अद्वैत की चर्चा कौन कर सकता है ? जब तक वैसी स्थिति प्राप्त न हो, तब क्या उसका कोई अनुभव कर सकता है ?

शिष्य श्री सद्‌गुरु के समान ही ज्ञान की मूर्ति है ? उन दोनों में केवल अवस्था, उच्च अनुभूति, अद्‌भुत, अलौकिक सत्य, अद्वितीय योग्यता और ऐश्वर्य योग में भिन्नता होती है। सद्‌गुण निर्गुण निराकार सच्चिदानंद है। वस्तुतः वे केवल मनुष्य जाति और विश्व के कल्याण के निमित्त स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण करते हैं, परन्तु नर-देह धारण करने पर भी उनकी सत्ता की अनंतता में कोई बाबधा उपस्थित नहीं होती। उनकी आत्मापलब्धि, लाभ, दैविक शक्ति और ज्ञान सदा एक-से रहते हैं। शिष्य का भी तो यथार्थ में वही स्वरूप है, परन्तु अनगिनत जन्मों के कारण उसे अज्ञान उत्पन्न हो जाता

---

१. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गीता १८ ॥ ६६ ॥

है और उसी के वशीभूत होकर उसे भ्रम हो जाता है तथा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप की विस्मृति हो जाती है, गीता का अध्याय ५[१] देखो - ''अज्ञानेनावृतं ज्ञानं ने मुह्यन्ति जन्तवः।'' जैसा कि वहाँ बतलाया गया है, उसे भ्रम हो जाता है कि 'मैं' जीव हूँ, एक प्राणी हूँ, दुर्बल और असहाय हूँ। गुरु इस अज्ञानरूपी जड़ को काटकर फेंक देता है और इसीलिए उस उपदेश करना पड़ता है। ऐसे शिष्य को जो जन्म-जन्मांतरों से यह धारणा करता आया है कि, ''मैं तो जीव, दुर्बल और असहाय हूँ,'' गुरु सैकड़ों जन्मों तक ऐसी शिक्षा देते हैं कि तुम ही ईश्वर हो, सर्वशक्तिमान् और समर्थ हो, तब कहीं जाकर उसे किंचित्मात्र भास होता है कि यथार्थ में ''मैं ही ईश्वर हूँ।'' सतत भ्रम में रहने के कारण ही उसे ऐसा भास होता है कि, ''मैं शरीर हूँ, एक जीव हूँ, तथा ईश्वर और यह विश्व मुझ से एक भिन्न वस्तु है।'' यह तो केवल एक भ्रम मात्र है, जो अनेक जन्म धारण करने कारण उत्पन्न हो गया है। कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी की सुख दुःख की प्राप्ति होती है। इस भ्रम, इस त्रुटि और इस अज्ञान की जड़ को नष्ट करने के लिये हमें स्वयं अपने से प्रश्न करना चाहिए कि यह अज्ञान कैसे पैदा हो गया ? वह अज्ञान कहाँ है ? और इस त्रुटि का दिग्दर्शन कराने को ही उपदेश कहते हैं।

अज्ञान के नीच लिखे उदाहरण हैं :-

(१) मैं एक जीव (प्राणी) हूँ।

(२) शरीर ही आत्मा है। (मैं शरीर हूँ)

(३) ईश्वर, विश्व और जीव भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।

(४) मैं ईश्वर नहीं हूँ।

(५) शरीर आत्मा नहीं है - इसका बोध न होना।

(६) इसका ज्ञान न होना कि ईश्वर, विश्व और जीव एक ही हैं।

जब तक इन त्रुटियों का उसे दिग्दर्शन नहीं कराया जाता, तब जक

१. नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।। गीता ५ ।। १५ ।।

शिष्य को यह कभी अनुभव नहीं हो सकता कि ईश्वर, जीव और शरीर क्या हैं; उनमें क्या अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है तथा वे परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न हैं अथवा एक ही हैं ? इस प्रकार की शिक्षा देना और भ्रम को दूर करना ही ''अज्ञान'' का ज्ञानोपदेश कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि जीव जो स्वयं ज्ञान-मूर्ति है, उसे ज्ञान की क्या आवश्यकता है ? उपदेश का हेतु तो केवल त्रुटि को उसकी दृष्टि में लाकर अज्ञान को नष्ट करना है। बाबा ने आगे कहा -

(१) 'प्रणिपात' का अर्थ है 'शरणागति'।

(२) शरणागत होना चाहिए तन, मन, धन से (अर्थात् अनन्य भाव से)।

(३) कृष्ण अन्य ज्ञानियों की ओर क्यों संकेत करते हैं ? सद्भक्त के लिए तो प्रत्येक तत्व वासुदेव है। (भगवद्गीता[१] अ. ७-१९ अर्थात् कोई भी गुरु अपने भक्त के लिए कृष्ण है) और गुरु शिष्य को वासुदेव मानता है और कृष्ण इन दोनों को अपने प्राण और आत्मा। (भगवद्गीता अ. ७-१८ पर ज्ञानदेव की टीका) चूँकि श्रीकृष्ण को विदित था कि ऐसे अनेक भक्त और गुरु विद्यमान हैं। इसलिये उनका महत्व बढ़ाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से ऐसा उल्लेख किया।

समाधि-मन्दिर का निर्माण

बाबा जो कुछ करना चाहते थे, उसकी चर्चा वे कभी नहीं करते थे, प्रत्युत् आसपास ऐसा वातावरण और परिस्थिति का निर्माण कर देते थे कि लोगों को बाद में उनका निश्चित परिणाम देखकर बड़ा अचम्भा होता था। समाधि-मन्दिर इस विषय का उदाहरण है। नागपुर के प्रसिद्ध लक्षाधिपति श्रीमान बापूसाहेब बूटी सकुटुम्ब शिरडी मे रहते थे। एक बार उन्हें विचार आया कि शिरडी में स्वयं का एक वाड़ा होना चाहिए। कुछ समय के पश्चात् जब वे दीक्षित वाड़े में निद्रा ले रहे थे तो उन्हें एक स्वप्न हुआ। बाबा ने स्वप्न

---

१. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।। गीता ७ ।। १९ ।।

२. उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।। गीता ७ ।। १८ ।।

में आकर उनसे कहा कि, 'तुम अपना एक वाड़ा और एक मन्दिर बनवाओ ।' शामा भी वहीं शयन कर रहा था और उसने भी ठीक वैसा ही स्वप्न देखा । बापूसाहेब जब उठे तो उन्होंने शामा को रुदन करते देखकर उससे रोने का कारण पूछा । तब शामा कहने लगा –

''अभी–अभी मुझे एक स्वप्न आया था कि बाबा मेरे बिल्कुल समीप आए और स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि, ''मन्दिर के साथ वाड़ा बनवाओ । मैं समस्त भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण करूँगा ।'' बाबा के मधुर और प्रेमपूर्ण शब्द सुनकर मेरा प्रेम उमड़ पड़ा तथा गला रुँध गया और मेरी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी इसलिए मैं जोर से रोने लगा ।'' बापूसाहेब बूटी को आश्चर्य हुआ कि दोनों के स्वप्न एक से ही हैं । धनाढ्य तो वे थे ही, उन्होंने वाड़ा निर्माण करने का निश्चय कर लिया और शामा के साथ बैठकर एक नक्शा खीचाँ । काकासाहेब दीक्षित ने भी उसे स्वीकृत किया और जब नक्शा बाबा के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने भी तुरंत स्वीकृति दे दी । तब निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया और शामा की देखरेख में नीचे मंजिल, तहखाना और कुआँ बनकर तैयार हो गए । बाबा भी लेंडी को आते–जाते समय परामर्श दे दिया करते थे । आगे यह कार्य बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया । जब कार्य इस तरह चल ही रहा था, उसी समय बापूसाहेब जोग को एक विचार आया कि कुछ खुला स्थान भी अवश्य होना चाहिए, जिसके बीचोंबीच 'मुरलीधर' की मूर्ति की भी स्थापना की जाए । उन्होंने अपना विचार शामा को प्रकट किया तथा बाबा से अनुमति प्राप्त करने को कहा । जब बाबा वाड़े के पास से जा रहे थे, तभी शामा ने बाबा से प्रश्न कर दिया । शामा का प्रश्न सुनकर बाबा ने स्वीकृति देते हुए कहा कि, ''जब मन्दिर का कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब मैं स्वयं वहाँ निवास करूँगा,'' और वाड़े की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा, ''जब वाड़ा पूर्ण बन जाएगा, तब हम सब लोग उसका उपभोग करेंगे । वही रहेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे और एक दूसरे को हृदय से लगायेंगे तथा आनन्दपूर्वक विचरेंगे ।'' जब शामा ने बाबा से पूछा कि, क्या यह मूर्त्ति के मध्य–कक्ष की नींव के कार्य आरम्भ का शुभ मुहूर्त है ? तब उन्होंने स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया । तभी शामा ने एक नारियल लाकर तोड़ा और

कार्य प्रारम्भ कर दिया । ठीक समय में सब कार्य पूर्ण हो गया और 'मुरलीधर' की एक सुन्दर मूर्त्ति बनवाने का प्रबन्ध किया गया । अभी उसका निर्माण कार्य प्रारम्भ भी न हो पाया था कि एक नवीन घटना घटित हो गई । बाबा की स्थिति चिंताजनक हो गई और निराश से हो गए । उन्होंने सोचा कि यदि बाबा चले गए तो वाड़ा उनके पवित्र चरण-स्पर्श से वंचित रह जाएगा और मेरा सब (लगभग एक लाख) रुपया व्यर्थ हो जाएगा, परन्तु अंतिम समय बाबा के श्री मुख से निकले हुए वचनों ने ('मुझे वाड़े में ही रखना') केवल बूटी साहेब को ही सान्त्वना नहीं पहुँचाई, वरन् अन्य लोगों को भी शांति प्रदान कि । कुछ समय के पश्चात् बाबा का पवित्र शरीर मुरलीधर की मूर्त्ति के स्थान पर रख दिया गया । बाबा स्वयं 'मुरलीधर' बन गए और वाड़ा 'साईबाबा का समाधि मंदिर'।

उनकी अगाध लीलाओं की थाह कोई न पा सका । श्री बापूसाहेब बूटी धन्य हैं, जिनके वाड़े में बाबा का दिव्य और पवित्र पार्थिव शरीर अब विश्राम कर रहा है ।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४०

श्री साईबाबा की कथाएँ :

(१) श्री. बी. व्ही. देव की माता के उद्यापन समारोह में सम्मिलित होना, और

(२) हेमाडपंत के सहभोज में चित्र के रूप में प्रगट होना ।

इस अध्याय में दो कथाओं का वर्णन है -

(१) बाबा किस प्रकार श्रीमान् देव की माँ के यहाँ उद्यापन में सम्मिलित हुए । और (२) बाबा किस प्रकार होली त्योहार के भोजन समारोह के अवसर पर बाँद्रा में हेमाडपंत के गृह पधारे ।

प्रस्तावना

श्री साई समर्थ धन्य हैं, जिनका नाम बड़ा सुन्दर है ! वे सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही विषयों में अपने भक्तों को उपदेश देते हैं और भक्तों को अपना जीवनध्येय प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर उन्हें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं । वे भेदभाव की भावना को नष्ट कर उन्हें अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति कराते है । भक्त लोग साई के चरणों पर भक्तिपूर्वक गिरते हैं और श्री साईबाबा भी भेदभावरहित होकर प्रेमपूर्वक भक्तों को हृदय से लगाते हैं । वे भक्तगण में ऐसे सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे वर्षाऋतु में जल नदियों से मिलता तथा उन्हें अपनी शक्ति और मान देता है ।

श्रीमती देव का उद्यापन उत्सव

श्री. बी. व्ही. देव डहाणू (जिला ठाणे) में मामलतदार थे । उनकी माता ने लगभग पच्चीस या तीस व्रत लिये थे, इसलिये अब उनका उद्यापन करना आवश्यक था । उद्यापन के साथ-साथ सौ-दो सौ ब्राह्मणों का भोजन भी होने वाला था । श्री देव ने एक तिथि निश्चित कर बापूसाहेब जोग को एक पत्र शिरडी भेजा । उसमें उन्होंने लिखा कि, ''तुम मेरी ओर से श्री साईबाबा को

उद्यापन और भोजन में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि उनकी अनुपस्थिति में उत्सव अपूर्ण ही रहेगा। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अवश्य डहाणू पधार कर दास को कृतार्थ करेंगे।'' बापूसाहेब जोग ने बाबा को वह पत्र पढ़कर सुनाया। उन्होंने उसे ध्यानपूर्वक सुना और शुद्ध हृदय से प्रेषित निमंत्रण जानकर वे कहने लगे कि, **''जो मेरा स्मरण करता है, उसका मुझे सदैव ही ध्यान रहता है। मुझे यात्रा के लिए कोई भी साधन - गाड़ी, ताँगा या विमान की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो जो प्रेम से पुकारता है, उसके सम्मुख मैं अविलम्ब ही प्रगट हो जाता हूँ।''** उसे एक सुखद पत्र भेज दो कि मैं, और दो व्यक्तियों के साथ अवश्य आऊँगा। जो कुछ बाबा ने कहा था, जोग ने श्री देव को पत्र में लिखकर भेज दिया। पत्र पढ़कर देव को बहुत प्रसन्नता हुई, परन्तु उन्हें ज्ञात था कि बाबा केवल राहाता, रूई और नीमगाँव के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं जाते है। फिर उन्हें विचार आया कि उनके लिये क्या असंभव है ? उनकी जीवनी अपार चमत्कारों से भरी हुई है। वे तो सर्वव्यापी हैं। वे किसी भी वेश में अनायास ही प्रगट होकर अपना वचन पूर्ण कर सकते हैं।

उद्यापन के कुछ दिन पूर्व एक संन्यासी डहाणू स्टेशन पर उतरा, जो बंगाली संन्यासियों के समान वेशभूषा धारण किये हुये था। दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि वह गौरक्षा संस्था का स्वयंसेवक है। वह सीधा स्टेशनमास्टर के पास गया और उनसे चंदे के लिये निवदेन करने लगा। स्टेशनमास्टर ने उसे सलाह दी कि तुम यहाँ के मामलेदार के पास जाओ और उनकी सहायता से ही तुम यथेष्ट चंदा प्राप्त कर सकोगे। ठीक उसी समय मामलेदार भी वहाँ पहुँच गए। तब स्टेशन मास्टर ने संन्यासी का परिचय उनसे कराया और वे दोनों स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर बैठे वार्तालाप करते रहे। मामलेदार ने बताया कि यहाँ के प्रमुख नागरिक श्री रावसाहेब नरोत्तम सेठ ने धर्मार्थ कार्य के निमित्त चन्दा एकत्र करने की नामावली बनाई है। अतः अब एक और दूसरी नामावली बनाना कुछ उचित सा प्रतीत नहीं होता। इसलिये

श्रेयस्कर तो यही होगा कि आप दो-चार माह के पश्चात् पुनः यहाँ दर्शन दें। यह सुनकर संन्यासी वहाँ से चला गया और एक माह पश्चात् श्री देव के घर के सामने ताँगे से उतरा। तब उसे देखकर देव ने मन ही मन सोचा कि वह चन्दा माँगने ही आया है। उसने श्री देव को कार्यव्यस्त देखकर उनसे कहा, ''श्रीमान्! मैं चन्दे के निमित्त नहीं, वरन् भोजन करने के लिये आया हूँ।'' देव ने कहा ''बहुत आनन्द की बात है, आपका सहर्ष स्वागत है।''

संन्यासी - मेरे साथ दो बालक और हैं।

देव - तो कृपया उन्हें भी साथ ले आइये।

भोजन में अभी दो घण्टे का विलम्ब था। इसलिये देव ने पूछा - यदि आज्ञा हो तो मैं किसी को उनको बुलाने को भेज दूँ।

संन्यासी - आप चिंता न करें, मै निश्चित समय पर उपस्थित हो जाऊँगा। देव ने उनसे दोपहर में पधारने की प्रार्थना की। ठीक १२ बजे दोपहर को तीनों वहाँ पहुँचे और भोज में सम्मिलित होकर भोजन करके वहाँ से चले गए।

उत्सव समाप्त होने पर देव ने बापूसाहेब जोग को पत्र में उलाहना देते हुए बाबा पर वचन-भंग करने का आरोप लगाया। जोग वह पत्र लेकर बाबा के पास गए, परन्तु पत्र पढ़ने के पूर्व ही बाबा उनसे कहने लगे - ''अरे! मैंने वहाँ जाने को वचन दिया था तो मैंने उसे धोखा नहीं दिया। उसे सूचित करो कि मैं अन्य दो व्यक्तियों के साथ भोजन में उपस्थित था, परन्तु जब वह मुझे पहचान ही न सका, तब निमंत्रण देने का कष्ट क्यों उठाया था? उसे लिखो कि उसने सोचा होगा कि वह संन्यासी चन्दा माँगने आया है। परन्तु क्या मैंने उसका सन्देह दूर नहीं कर दिया था कि दो अन्य व्यक्तियों के साथ मैं भोजन के लिये आऊँगा, और क्या वे त्रिमूर्तियाँ ठीक समय पर भोजन में सम्मिलित नहीं हुईं? देखो! **मैं अपना वचन पूर्ण करने के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर दूँगा। मेरे शब्द कभी असत्य न निकलेंगे।**'' इस उत्तर से जोग के हृदय में बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने पूर्ण उत्तर लिखकर देव को भेज दिया। जब देव ने उत्तर पढ़ा तो उनकी आँखो से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन्हें अपने आप पर बड़ा क्रोध आ रहा था कि मैंने व्यर्थ ही बाबा पर दोषारोपण किया। वे आश्चर्यचकित से हो गए कि किस तरह मैंने संन्यासी की पूर्व यात्रा से धोखा

खाया, जो कि चन्दा माँगने आया था और संन्यासी के शब्दों का अर्थ भी न समझ पाया कि ''अन्य दो व्यक्तियों के साथ मैं भोजन पर आऊँगा।''

इस कथा से विदित होता है **जब भक्त अनन्य भाव से सद्‌गुरु की शरण में आता है, तभी उसे अनुभव होने लगता है कि उसके सब धार्मिक कृत्य उत्तम प्रकार से चलते हैं और निर्विघ्न समाप्त होते हैं।**

हेमाडपंत का होली त्योहार पर सहभोज

अब हम एक दूसरी कथा लें, जिसमें बतलाया गया है कि बाबा ने किस प्रकार चित्र रूप में प्रगट होकर अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण की।

सन् १९१७ में होली पूर्णिमा के दिन हेमाडपंत को एक स्वप्न हुआ। बाबा उन्हें एक संन्यासी के वेश में दिखे और उन्होंने हेमाडपंत को जगाकर कहा कि, ''मैं आज दोपहर को तुम्हारे यहाँ भोजन करने आऊँगा।'' जागृत करना भी स्वप्न का एक भाग ही था। परन्तु जब उनकी निद्रा सचमुच मे भंग हुई तो उन्हें न तो बाबा और न ही कोई अन्य संन्यासी ही दिखाई दिया। वे अपनी स्मृति दौड़ाने लगे और अब उन्हें संन्यासी के प्रत्येक शब्द की स्मृति हो आई। यद्यपि वे बाबा के सान्निध्य का लाभ गत सात वर्षों से उठा रहे थे तथा उन्हीं का निरंतर ध्यान किया करते थे , परंतु यह कभी भी आशा न थी कि बाबा भी कभी उनके घर पधारकर भोजन कर उन्हें कृतार्थ करेंगे। बाबा के शब्दों से अति हर्षित होते हुए वे अपनी पत्नी के पास गए और कहा कि - ''आज होली का दिन है। एक संन्यासी अतिथि भोजन के लिए अपने यहाँ पधारेंगे। इसलिये भात थोड़ा अधिक बनाना।'' उनकी पत्नी ने अतिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की। प्रत्युत्तर में हेमाडपंत ने बात गुप्त न रखकर स्वप्न का वृत्तांत सत्य-सत्य बतला दिया। तब वे सन्देहपूर्वक पूछने लगीं कि क्या यह भी कभी संभव है कि वे शिरडी के उत्तम भोजन त्यागकर इतनी दूर बान्द्रा में अपना रूखा-सूखा भोजन करने को पधारेंगे ? हेमाडपंत ने विश्वास दिलाया कि उनके लिये क्या असँभव है ? हो सकता है, वे स्वयं न आएं और कोई अन्य स्वरूप धारण कर यहाँ पधारें। इस कारण थोड़ा अधिक भात बनाने में हानि ही क्या है? इसके उपरान्त भोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं।

होलिका पूजन प्रारम्भ हो गया और पत्तलें बिछाकर उनके चारों ओर रँगोली डाल दी गईं। दो पंक्तियाँ बनाई गईं और बीच में अतिथि के लिए स्थान छोड़ दिया गया। घर के सभी कुटुम्बी-पुत्र, नाती, लड़कियाँ, दामाद इत्यादि ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया और भोजन परोसना भी प्रारम्भ हो गया। जब भोजन परोसा जा रहा था तो प्रत्येक व्यक्ति उस अज्ञात अतिथि की उत्सुकतापूर्वक राह देख रहा था। जब मध्याह्न भी हो गया और कोई भी न आया, तब द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी गई। अन्न शुद्धि के लिये घृत वितरण हुआ, जो कि भोजन प्रारम्भ करने का संकेत है। वैश्वदेव (अग्नि) को औपचारिक आहुति देकर श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पण किया गया फिर सभी लोग जैसे ही भोजन प्रारम्भ करने वाले थे कि इतने में सीढ़ी पर किसी की आहट स्पष्ट आने लगी। हेमाडपंत ने शीघ्र उठकर साँकल खोली और दो व्यक्तियों (१) अली मुहम्मद और (२) मौलाना इस्मू मुज़ावर को द्वार पर खड़े हुए पाया। इन लोगों ने जब देखा कि भोजन परोसा जा चुका है और केवल प्रारम्भ करना ही शेष है तो उन्होंने विनीत भाव में कहा कि आपको बड़ी असुविधा हुई, इसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप अपनी थाली छोड़कर दौड़े आए हैं तथा अन्य लोग भी आपकी प्रतिक्षा में है, इसलिये आप अपनी यह संपदा सँभालिये। इससे सम्बन्धित आश्चर्यजनक घटना किसी अन्य सुविधाजनक अवसर पर सुनाएँगे - ऐसा कहकर उन्होंने पुराने समाचार पत्रों में लिपटा हुआ एक पैकिट निकालकर उसे खोलकर मेज पर रख दिया। कागज के आवरण को ज्यों ही हेमाडपंत ने हटाया तो उन्हें बाबा का एक बड़ा सुन्दर चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ। बाबा का चित्र देखकर वे द्रवित हो गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी और उनके समूचे शरीर में रोमांच हो आया। उनका मस्तक बाबा के श्री चरणों पर झुक गया। वे सोचने लगे कि बाबा ने इस लीला के रूप में ही मुझे आशीर्वाद दिया है। कौतुहलवश उन्होंने अली मुहम्मद से प्रश्न किया कि बाबा का यह मनोहर चित्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ ? उन्होंने बताया कि मैंने इसे एक दुकान से खरीदा था। इसका पूर्ण विवरण मैं किसी अन्य समय के लिये शेष रखता हूँ। कृपया आप अब भोजन कीजिए, क्योंकि सभी आपकी ही प्रतिक्षा कर रहे हैं। हेमाडपंत ने

उन्हें धन्यवाद देकर नमस्कार किया और भोजन-गृह में आकर अतिथि के स्थान पर चित्र को मध्य में रखा तथा विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पण किया। सब लोगों ने ठीक समय पर भोजन प्रारम्भ कर दिया। चित्र में बाबा का सुन्दर मनोहर रूप देखकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्नता हुई और इस घटना पर आश्चर्य भी हुआ कि वह सब कैसे घटित हुआ ? इस प्रकार बाबा ने हेमाडपंत को स्वप्न में दिये अपने वचनों को पूर्ण किया।

इस चित्र की कथा का पूर्ण विवरण, अर्थात् अली मुहम्मद को चित्र कैसे प्राप्त हुआ, और किस कारण से उन्होने उसे लाकर हेमाडपंत को भेंट किया, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४१

चित्र की कथा, चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा।

गत अध्याय में वर्णित घटना के नौ वर्ष पश्चात् अली मुहम्मद हेमाडपंत से मिले और वह पिछली कथा निम्नलिखित रूप में सुनाई :-

''एक दिन बम्बई में घूमते-फिरते मैंने एक दुकानदार से बाबा का चित्र खरीदा। उसे फ्रेम कराया और अपने घर (मध्य बम्बई की बस्ती में) लाकर दीवार पर लगा दिया। मुझे बाबा से स्वाभाविक प्रेम था। इसलिये मैं प्रतिदिन उनका श्री दर्शन किया करता था। जब मैंने आपको (हेमाडपंत को) वह चित्र भेंट किया, उसके तीन माह पूर्व मेरे पैर में सूजन आने के कारण शल्यचिकित्सा भी हुई थी। मैं अपने साले नूर मुहम्मद के यहाँ पड़ा हुआ था। खुद मेरे घर पर तीन माह से ताला लगा था और उस समय वहाँ पर कोई नही था। केवल प्रसिद्ध बाबा अब्दुल रहमान, मौलाना साहेब मुहम्मद हुसैन, साई बाबा, ताजुद्दिन बाबा और अन्य सन्त चित्रों के रूप में ही वहाँ विराजमाने थे, परन्तु कालचक्र ने उन्हें भी न छोड़ा। मैं वहाँ (बम्बई) बीमार पड़ा हुआ था तो फिर मेरे घर में उन लोगों (फोटो) को कष्ट क्यों हो ? ऐसा समझ में आता है कि वे भी आवागमन (जन्म और मृत्यु) के चक्कर से मुक्त नहीं हैं ! अन्य चित्रों की गति तो उनके भाग्यानुसार ही हुई, परन्तु केवल श्री साईबाबा का ही चित्र कैसे बच निकला, इसका रहस्योद्‌घाटन अभी तक कोई नहीं कर सका है। इससे श्री साईबाबा की सर्वव्यापकता और उनकी असीम शक्ति का पता चलता है।''

''कुछ वर्ष पूर्व मुझे मुहम्मद हुसैन थारिया टोपण के सन्त बाबा अब्दुल रहमान का चित्र प्राप्त हुआ था, जिसे मैंने अपने साले नूर मुहम्मद पीरभाई को

दे दिया, जो गत आठ वर्षों से उसकी मेज पर पड़ा हुआ था। एक दिन उसकी दृष्टि इस चित्र पर पड़ी, तब उसने उसे फोटोग्राफर के पास ले जाकर उसकी बड़ी बनवाई और उसकी कापियाँ अपने कई रिश्तेदारों और मित्रों में वितरित कीं। उनमें से एक प्रति मुझे भी मिली थी, जिसे मैंने अपने घर की दीवार पर लगा रखा था। नूर मुहम्मद सन्त अब्दुल रहमान के शिष्य थे। जब सन्त अब्दुल रहमान साहेब का आम दरबार लगा हुआ था, तभी नूर मुहम्मद उन्हें उनकी वह फोटो भेंट करने हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए। फोटो को देखते ही वे अति क्रोधित हो नूर मुहम्मद को मारने दौड़े तथा उन्हें बाहर निकाल दिया। तब उन्हें बड़ा दुःख और निराशा हुई। फिर उन्हें विचार आया कि मैंने इतना रुपया व्यर्थ ही खर्च किया, जिसका परिणाम अपने गुरु के क्रोध और अप्रसन्नता का कारण बना। उनके गुरु मूर्तिपूजा के विरोधी थे, इसलिये वे हाथ में फोटो लेकर अपोलो बन्दर पहुँचे और एक नाव किराये पर लेकर बीच समुद्र में वह फोटो विसर्जित कर आए। नूर मुहम्मद ने अपने सब मित्रों और सम्बन्धियों से भी प्रार्थना कर सब फोटो वापस बुला लिये (कुल छः फोटो थे) और एक मछुए के हाथ से बांद्रा के निकट समुद्र में विसर्जित करा दिये।''

''इस समय मैं अपने साले के घर पर ही था। तब नूर मुहम्मद ने मुझसे कहा कि यदि तुम सन्तों के सब चित्रों को समुद्र में विसर्जित करा दोगे तो तुम शीघ्र स्वस्थ हो जाओगे। यह सुनकर मैंने मैनेजर मेहता को अपने घर पर भेजा और उसके द्वारा घर में लगे हुए सब चित्रों को समुद्र में विसर्जित किये। दो माह पश्चात् जब मैं अपने घर वापस लौटा तो बाबा का चित्र पूर्ववत् लगा देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। मैं समझ न सका कि मेहता ने अन्य सब चित्र तो निकालकर विसर्जित कर दिये, पर केवल यही चित्र कैसे बच गया ? तब मैंने तुरन्त ही उसे निकाल लिया और सोचने लगा कि कहीं मेरे साले की दृष्टि इस चित्र पर पड़ गई तो वह इसकी भी इतिश्री कर देगा। जब मैं ऐसा विचार कर ही रहा था कि इस चित्र कौन अच्छी तरह सँभाल कर रख सकेगा, तब स्वयं श्री साईबाबा ने सुझाया कि मौलाना इस्मू मुज़ावर के पास जाकर उनसे परामर्श करो और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करो। मैंने मौलाना साहेब से भेंट की और सब बातें उन्हें बतलाई। कुछ देर विचार करने के

पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुँचे कि इस चित्र को आपको (हेमाडपंत) ही भेंट करना उचित है, क्योंकि केवल आप ही इसे उत्तम प्रकार सँभालने के लिये सर्वथा सत्पात्र हैं। तब हम दोनों आप के घर आए और उपयुक्त समय पर ही यह चित्र आपको भेंट कर दिया। इस कथा से विदित होता है कि बाबा त्रिकालज्ञानी थे और कितनी कुशलता से समस्या हल कर भक्तों की इच्छायें पूर्ण किया करते थे। निम्नलिखित कथा इस बात का प्रतीक है कि आध्यात्मिक जिज्ञासुओं पर बाबा किस प्रकार स्नेह रखते तथा किस प्रकार उनके कष्ट का निवारण कर उन्हें सुख पहुँचाते थे।''

चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी का पठन

श्री बी. व्ही. देव, जो उस समय डहाणू के मामलेदार थे, को दीर्घकाल से अन्य धार्मिक ग्रन्थों क साथ-साथ ज्ञानेश्वरी के पठन की तीव्र इच्छा थी। (ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता पर श्री ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा रचित मराठी टीका हैं।) वे भगवद्गीता के एक अध्याय का नित्य पाठ करते तथा थोड़ा बहुत अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे। परन्तु जब भी वे ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो उनके समक्ष अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जातीं, जिससे वे पाठ करने से सर्वथा वंचित रह जाया करते थे। तीन मास की छुट्टी लेकर वे शिरडी पधारे और तत्पश्चात् वे अपने घर पौड में विश्राम करने क लिये भी गए। अन्य ग्रन्थ तो वे पढ़ा ही करते थे, परन्तु जब ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारंभ करते तो नाना प्रकार के कलुषित विचार उन्हें इस प्रकार घेर लेते कि लाचार होकर उसका पठन स्थगित करना पड़ता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उनको केवल दो चार पंक्तीयाँ पढ़ना भी दुष्कर हो गया, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि जब दयानिधि श्री साई ही कृपा करके इस ग्रन्थ के पठन की आज्ञा देंगे, तभी उसका श्रीगणेश करूँगा। सन् १९१४ के फरवरी मास में वे सकुटुम्ब शिरडी पधारे। तभी श्री जोग ने उनसे पूछा कि क्या आप ज्ञानेश्वरी का नित्य पठन करते हैं ? श्री देव ने उत्तर दिया कि, ''मेरी इच्छा तो बहुत है, परन्तु मैं ऐसा करने में सफलता नहीं पा रहा हूँ। अब तो जब बाबा की आज्ञा होगी, तभी प्रारम्भ करूँगा।'' श्री जोग ने सलाह दी कि ग्रन्थ की एक प्रति खरीद कर बाबा को भेंट करो और जब वे अपने करकमलों से स्पर्श कर उसे वापस लौटा दें,

तब उसका पठन प्रारम्भ कर देना । श्री देव ने कहा कि, ''मैं इस प्रणाली को श्रेयस्कर नहीं समझता, क्योंकि बाबा तो अन्तर्यामी हैं और मेरे हृदय की इच्छा उनसे कैसे गुप्त रह सकती है ? क्या वे स्पष्ट शब्दों में आज्ञा देकर मेरी मनोकामना पूर्ण न करेंगें ?''

श्री देव ने जाकर बाबा के दर्शन किये और एक रुपया दक्षिणा भेंट की । तब बाबा ने उनसे बीस रुपये दक्षिणा और माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी । रात्रि के समय श्री देव ने बालकराम से भेंट की और उनसे पूछा, ''आपने किस प्रकार बाबा की भक्ति तथा कृपा प्राप्त की है ?'' बालकराम ने कहा, ''मैं दूसरे दिन आरती समाप्त होने के पश्चात् आपको पूर्ण वृतान्त सुनाऊँगा ।' दूसरे दिन जब श्री देवसाहब दर्शनार्थ मस्जिद में आए तो बाबा ने फिर बीस रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष भेंट कर दी । मस्जिद में भीड अधिक होने के कारण वे एक ओर एकांत में जाकर बैठ गए ।बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने समीप बैठा लिया । आरती समाप्त होने के पश्चात् जब सब लोग अपने घर लौट गए, तब श्री देव ने बालकराम से भेंटकर उनसे उनका पूर्व इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रगट की तथा बाबा द्वारा प्राप्त उपदेश और ध्यानादि के संबंध में पूछताछ की । बालकाराम इन सब बातों का उत्तर देने ही वाले थे कि इतने में चन्द्रू कोढ़ी ने आकर कहा कि श्री देव को बाबा ने याद किया है । जब देव बाबा के पास पहुँचे तो उन्होंने प्रश्न किया कि वे किससे और क्या बातचीत कर रहे थे ? श्री देव ने उत्तर दिया कि वे बालकराम से उनकी किर्ति का गुणगान श्रवण कर रहे थे । तब बाबा ने उनसे पुनः २५ रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी । फिर बाबा उन्हें भीतर ले गए और अपना आसन ग्रहण करने के पश्चात् उन पर दोषारोपण करते हुए कहा कि, ''मेरी अनुमति के बिना तुमने मेरी चिन्दियों की चोरी की है।'' श्री देव ने उत्तर दिया, ''भगवन् ! जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है ।'' परन्तु बाबा कहाँ मानने वाले थे ? उन्होंने अच्छी तरह से ढूँढ़ने को कहा । उन्होंने खोज की, परन्तु कहीं कुछ भी न पाया । तब बाबा ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है । तुम्हीं चोर हो । तुम्हारे बाल तो सफ़ेद हो गए हैं और इतने वृद्ध होकर भी तुम यहाँ चोरी करने को आए हो ? इसके पश्चात् बाबा आपे से बाहर हो गए और

उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बुरी तरह से गालियाँ देने और डाँटने लगे । देव शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे । वे मार पड़ने की भी आशंका कर रहे थे कि एक घण्टे के पश्चात् ही बाबा ने उनसे वाड़े को लौटने को कहा । वाड़े लौटकर उन्होंने जो कुछ हुआ था, उसका पूर्ण विवरण जोग और बालकराम को सुनाया । दोपहर के पश्चात् बाबा ने सबके साथ देव को भी बुलाया और कहने लगे कि शायद मेरे शब्दों ने इस वृद्ध को पीड़ा पहुँचाई होगी । इन्होंने चोरी की है और इसे ये स्वीकार नहीं करते हैं । उन्होंने देव से पुनः बारह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने एकत्र करके सहर्ष भेंट करते हुए उन्हें नमस्कार किया । तब बाबा देव से कने लगे कि, तुम आजकल क्या कर रहे हो ?'' देव ने उत्तर दिया कि, ''कुछ भी नहीं ।'' तब बाबा ने कहा, ''प्रतिदिन पोथी (ज्ञानेश्वरी) का पाठ किया करो । जाओ, वाड़े में बैठकर क्रमशः नित्य पाठ करो और जो कुछ भी तुम पढ़ो, उसका अर्थ दूसरों को प्रेम और भक्तिपूर्वक समझाओ । मैं तो तुम्हें सुनहरा शेला (दुपट्टा) भेंट देना चाहता हूँ, फिर तुम दूसरों के समीप चिन्दियों की आशा से क्यों जाते हो ? क्या तुम्हें यह शोभा देता है ?''

पोथी पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करके देव अति प्रसन्न हुए । उन्होंने सोचा कि मुझे इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो गई है और अब मैं आनन्दपूर्वक पोथी (ज्ञानेश्वरी) पढ़ सकूँगा । उन्होंने पुनः साष्टांग नमस्कार किया और कहा कि, ''हे प्रभु ! मै आपकी शरण हूँ । आपका अबोध शिशू हूँ । मुझे पाठ में सहायता कीजिये ।'' अब उन्हें चिन्दियों का अर्थ स्पष्टतया विदित हो गया था । उन्होंने बालकराम से जो कुछ पूछा था, वह चिन्दि स्वरूप था । इन विषयों में बाबा को इस प्रकार का कार्य रूचिकर नहीं था। क्योंकि वे स्वयं प्रत्येक शंका का समाधान करने को सदैव तैयार रहते थे । दूसरों से निरर्थक पूछताछ करना वे अच्छा नहीं समझते थे, इसलिये उन्होंने डाँटा और क्रोधित हुए देव ने इन शब्दों को बाबा का शुभ आशीर्वाद समझा तथा वे सन्तुष्ट होकर घर लौट गए ।

यह कथा यहीं समाप्त नहीं होती । अनुमति देने के पश्चात् भी बाबा शान्त नहीं बैठे तथा एक वर्ष के पश्चात् वे श्री देव के समीप गए और उनसे प्रगति के विषय में पूछताछ की । २ अप्रैल, सन् १९१४ गुरुवार को सुबह

बाबा ने स्वप्न में देव से पूछा कि, ''क्या तुम्हें पोथी समझ में आयी ?'' जब देव ने स्वीकारात्मक उत्तर न दिया तो बाबा बोले कि, ''अब तुम कब समझोगे ?'' देव की आँखो से टप्-टप् करके अश्रुपात होने लगा और वे रोते हुए बोले कि, ''मैं निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ कि, हे भगवान् ! जब तक आपकी कृपा रूपी मेघवृष्टि नहीं होती, तब तक उसका अर्थ समझना मेरे लिये सम्भव नहीं है और यह पठन तो भारस्वरूप ही है।'' तब वे बोले कि, ''मेरे सामने मुझे पढ़कर सुनाओ । तुम पढ़ने मे अधिक शीघ्रता किया करते हो ।'' फिर पूछने पर उन्होंने अध्यात्म विषयक अंश पढ़ने को कहा । देव पोथी लाने गए और जब उन्होंने नेत्र खोले तो उनकी निद्रा भंग हो गई । अब पाठक स्वयं ही इस बात का अनुमान कर लें कि देव को इस स्वप्न के पश्चात् कितना आनंद प्राप्त हुआ होगा ?

(श्री देव अभी (सन् १९४४) जीवित हैं और मुझे गत ४-५ वर्षों के पूर्व उनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । जहाँ तक मुझे पता चला है, वह यही है कि वे अभी भी ज्ञानेश्वरी का पाठ किया करते हैं । उनका ज्ञान अगाध और पूर्ण है । यह उनके साई लीला के लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है । ता. १९.१०.१९४४)

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४२
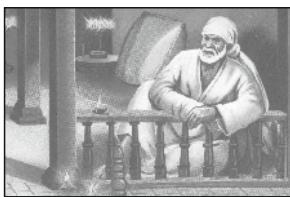
महासमाधि की ओर (१)

भविष्य की आगाही, रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना, लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान, समस्त प्राणियों में बाबा का वास, अन्तिम क्षण ।

बाबा ने किस प्रकार समाधि ली, इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है ।

प्रस्तावना

गत अध्यायों की कथाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरुकृपा की केवल एक किरण ही भवसागर के भय से सदा के लिये मुक्त कर देती है तथा मोक्ष का पथ सुगम करके दुःख को सुख में परिवर्तित कर देती है । यदि सद्गुरु के मोहविनाशक पूजनीय चरणों का सदैव स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे समस्त कष्टों और भवसागर के दुःखो का अन्त होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा हो जाएगा । इसलिये जो अपने कल्याणार्थ चिन्तित हों, उन्हें साई समर्थ के अलौकिक मधुर लीलामृत का पान करना चाहिए । ऐसा करने से उनकी मति शुद्ध हो जाएगी । प्रारम्भ में डॉक्टर पंडित का पूजन तथा किस प्रकार उन्होंने बाबा को त्रिपुंड लगाया, इसका उल्लेख मूल ग्रन्थ में किया गया है । इस प्रसंग का वर्णन ११ वें अध्याय में किया जा चुका है, इसलिये यहाँ उसको दुहराना उचित नहीं है ।

भविष्य की आगाही

पाठकों ! आपने अभी तक केवल बाबा के जीवन-काल की ही कथाएँ सुनी हैं । अब आप ध्यानपूर्वक बाबा के निर्वाणकाल का वर्णन सुनिये । २८ सितम्बर, सन् १९१८ को बाबा को साधारण-सा ज्वर आया । यह ज्वर २-३ दिन तक रहा । इसके उपरांत ही बाबा ने भोजन करना बिल्कुल त्याग दिया

। इससे उनका शरीर दिन – प्रतिदिन क्षीण एवं दुर्बल होने लगा । १७ दिनों के पश्चात् अर्थात् १५ अक्टूबर, सन् १९१८ को २ बजकर ३० मिनिट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग किया । (यह समय प्रो. जी. जी. नारके के तारीख ५-११-१९१८ के पत्र अनुसार है, जो उन्होंने दादासाहेब खापर्डे को लिखा था और साईलीला पत्रिका के पृष्ठ ७-८ (प्रथम वर्ष) में प्रकाशित हुआ था।) इसके दो वर्ष पूर्व ही बाबा ने अपने निर्वाण के दिन का संकेत कर दिया था, परन्तु उस समय कोई भी समझ नहीं सका । घटना इस प्रकार है । विजयादशमी के दिन जब लोग सन्ध्या के समय ''सीमोल्लंघन'' से लौट रहे थे तो बाबा सहसा ही क्रोधित हो गए । सिर का कपड़ा, कफनी और लँगोटी निकालकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके जलती हुई धूनी में फेंक दिये । बाबा के द्वारा आहुति प्राप्त कर धूनि द्विगुणित प्रज्ज्वलित होकर चमकने लगी और उससे भी कहीं अधिक बाबा के मुख-मंडल की कांति चमक रही थीं । वे पूर्ण दिगम्बर खड़े थे और उनकी आँखें अंगारे के समान चमक रही थीं । उन्होंने आवेश में आकर उच्च स्वर में कहा कि, ''लोगों ! यहाँ आओ, मुझे देखकर पूर्ण निश्चय कर लो कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान।'' सभी भय से काँप रहे थे । किसी को भी उनके समीप जाने का साहस न हो रहा था। कुछ समय बीतने के पश्चात् उनके भक्त भागोजी शिन्दे, जो महारोग से पीड़ित थे, साहस कर बाबा के समीप गए और किसी प्रकार उन्होंने उन्हें लँगोटी बाँध दी और उनसे कहा कि, ''बाबा! यह क्या बात है ? देव ! आज दशहरा (सीमोल्लंघन) का त्योहार है ।'' तब उन्होंने जमीन पर सटका पटकते हुए कहा कि, मेरा सीमोल्लंघन है । लगभग ११ बजे तक भी उनका क्रोध शान्त न हुआ और भक्तों को चावड़ी जुलूस निकलने में सन्देह होने लगा । एक घण्टे के पश्चात् वे अपनी सहज स्थिति में आ गए और सदा की भाँति पोशाक पहनकर चावड़ी जुलूस में सम्मिलित हो गए, जिसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है । इस घटना द्वारा बाबा ने इंगित किया कि जीवन-रेखा पार करने के लिये दशहरा ही उचित समय है । परन्तु उस समय किसी को भी उसका असली अर्थ समझ में न आया । बाबा ने और भी अन्य संकेत किये जो इस प्रकार हैं –

रामचन्द्र दादा पाटील की मृत्यु टालना

कुछ समय के पश्चात् रामचन्द्र पाटील बहुत बीमार हो गए । उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। सब प्रकार के उपचार किये गए, परन्तु कोई लाभ न हुआ और जीवन से हताश होकर वे मृत्यु के अंतिम क्षणों की प्रतिक्षा करने लगे । तब एक दिन मध्य रात्रि के समय बाबा अनायास ही उनके सिरहाने प्रगट हुए । पाटील उनके चरणों से लिपट कर कहने लगे कि मैंने अपने जीवन की समस्त आशाएँ छोड़ दी हैं । अब कृपा कर मुझे इतना तो निश्चित बतलाईए कि मेरे प्राण अब कब निकलेंगे ? दयासिन्धु बाबा ने कहा कि, ''घबराओ नहीं । तुम्हारी हुण्डी वापस ले ली गई है और तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे । मुझे तो केवल तात्या का भय है कि सन् १९१८ में विजयादशमी के दिन उसका देहान्त हो जाएगा । किन्तु यह भेद किसी से प्रगट न करना और न ही उसे बतलाना। अन्यथा वह अधिक भयभीत हो जाएगा ।'' रामचन्द्र अब पूर्ण स्वस्थ तो हो गए, परन्तु वे तात्या के जीवन के लिये निराश हुए । उन्हें ज्ञात था कि बाबा के शब्द कभी असत्य नहीं निकल सकते और दो वर्ष के पश्चात् ही तात्या इस संसार से विदा हो जाएगा । उन्होंने यह भेद बाला शिंपी के अतिरिक्त किसी से भी प्रगट न किया । केवल दो ही व्यक्ति - रामचंद्र दादा और बाला शिंपी, तात्या के जीवन के लिये चिन्ताग्रस्त और दुःखी थे ।

रामचंद्र ने शैया त्याग दी और वे चलने-फिरने लगे । समय तेजी से व्यतीत होने लगा । शके १८४० का भाद्रपद समाप्त होकर आश्विन मास प्रारम्भ होने ही वाला था कि बाबा के वचन पूर्णतः सत्य निकले । तात्या बीमार पड़ गए और उन्होंने चारपाई पकड़ ली । उनकी स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि अब वे बाबा के दर्शन को भी जाने में असमर्थ हो गए । इधर बाबा भी ज्वर से पीड़ित थे । तात्या का पूर्ण विश्वास बाबा पर था और बाबा का भगवान श्रीहरि पर, जो उनके संरक्षक थे । तात्या की स्थिति अब और अधिक चिन्ताजनक हो गई । वह हिलडुल भी न सकता था और सदैव बाबा का ही स्मरण किया करता था । इधर बाबा की भी स्थिति उत्तरोत्तर गंभीर होने लगी । बाबा द्वारा बतलाया हुआ विजयदशमी का दिन भी निकट आ गया । तब

रामचंद्र दादा और बाला शिंपी बहुत घबरा गए । उनके शरीर काँप रहे थे, पसीने की धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं, कि अब तात्या का अन्तिम समय है । जैसे ही विजयादशमी का दिन आया, तात्या की नाड़ी मन्द होने लगी और उसकी मृत्यु सन्निकट दिखलाई देने लगी । उस समय एक विचित्र घटना घटी । तात्या की मृत्यु टल गई और उसके प्राण बच गए, परन्तु उसके स्थान पर बाबा स्वयं प्रस्थान कर गए और ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कि परस्पर हस्तान्तरण हो गया हो । सभी लागे कहने लगे कि बाबा ने तात्या के लिये प्राण त्यागे । ऐसा उन्होंने क्यों किया, ये वे ही जानें, क्योंकि यह बात हमारी बुद्धि के बाहर है । ऐसा भी प्रतीत होता है कि बाबा ने अपने अन्तिम काल का संकेत तात्या का नाम लेकर ही किया था ।

दूसरे दिन १६ अक्टूबर को प्रातःकाल बाबा ने दासगणु को पंढरपुर में स्वप्न दिया कि मस्जिद अर्रा करके गिर पड़ी है । शिरडी के प्रायः सभी तेली तम्बोली मुझे कष्ट देते थे । इसलिये मैंने अपना स्थान छोड़ दिया है । मैं तुम्हें यह सूचना देने आया हूँ कि शीघ्र वहाँ जाकर मेरे शरीर पर हर तरह के फूल इकट्ठा कर चढ़ाओ । दासगणु को शिरडी से भी एक पत्र प्राप्त हुआ और वे अपने शिष्यों को साथ लेकर शिरडी आए तथा उन्होंने बाबा की समाधि के समक्ष अखंड कीर्तन और हरिनाम प्रारम्भ कर दिया । उन्होंने स्वयं फूलों की माला गूँथी और ईश्वर का नाम लेकर समाधि पर चढ़ाई । बाबा के नाम पर एक वृहद् भोज का भी आयोजन किया गया ।

लक्ष्मीबाई को दान

विजयदशमी का दिन हिन्दुओं के लिए बहुत शुभ है और सीमोल्लंघन के लिये बाबा द्वारा इस दिन का चुना जाना सर्वथा उचित ही है । इसके कुछ दिन पूर्व से ही उन्हें अत्यन्त पीड़ा हो रही थी, परन्तु आन्तरिक रूप में वे पूर्ण सजग थे । अन्तिम क्षण के पूर्व वे बिना किसी की सहायता लिये उठकर सीधे बैठ गए और स्वस्थ दिखाई पड़ने लगे । लोगों ने सोचा कि संकट टल गया और भय की कोई बात नहीं है तथा अब वे शीघ्र ही निरोग हो जाएँगे । परंतु वे तो जानते थे कि अब मैं शीघ्र ही विदा लेने वाला हूँ और इसलिये उन्होंने लक्ष्मीबाई शिन्दे को कुछ दान देने की इच्छा प्रगट की ।

समस्त प्राणियों में बाबा का वास

लक्ष्मीबाई एक उच्च कुलीन महिला थीं । वे मस्जिद में बाबा की दिन-रात सेवा किया करती थीं । केवल भगत म्हालसापति, तात्या और लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त रात को मस्जिद की सीढ़ियों पर कोई नही चढ़ सकता थो । एक बार सन्ध्या समय जब बाबा तात्या के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे, तभी लक्ष्मीबाई ने आकर उन्हें नमस्कार किया । तब बाबा कहने लगे कि, ''अरी लक्ष्मी, मैं अत्यंत भूखा हूँ ।'' वे यह कहकर लौट पड़ीं कि, ''बाबा, थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आपके लिये रोटी लेकर आती हूँ ।'' उन्होंने रोटी और साग लाकर बाबा के सामने रख दिया, जो उन्होंने एक भूखे कुत्ते को दे दिया । तब लक्ष्मीबाई कहने लगी कि, ''बाबा यह क्या ? मैं तो शीघ्र गई और अपने हाथ से आपके लिये रोटी बना लाई । आपने एक ग्रास भी ग्रहण किये बिना उसे कुत्ते के सामने डाल दिया। तब आपने व्यर्थ ही मुझे कष्ट क्यों दिया ?'' बाबा ने उत्तर दिया कि, ''व्यर्थ दुःख न करो । **कुत्ते की भूख शांत करना मुझे तृप्त करने के बराबर ही है । कुत्ते की भी तो आत्मा है ।** प्राणी भले ही भिन्न आकृति-प्रकृति के हों, उनमें कोई बोल सकते हैं और कोई मूक हैं, परन्तु भूख सबकी एक सदृश ही है । इसे तुम सत्य जानो कि जो भूखों को भोजन कराता है, वह यथार्थ में मुझे ही भोजन कराता है । यह एक अकाट्य सत्य है ।'' इस साधारण-सी घटना के द्वारा बाबा ने एक महान् आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा प्रदान की कि बिना किसी की भावनाओं को कष्ट पहुँचाये किस प्रकार उसे नित्य व्यवहार में लाया जा सकता है । इसके पश्चात् लक्ष्मीबाई उन्हें नित्य ही प्रेम और भक्तिपूर्वक दूध, रोटी व अन्य भोजन देने लगीं, जिसे वे स्वीकार कर बड़े चाव से खाते थे । वे उसमें से कुछ खाकर शेष लक्ष्मीबाई के द्वारा ही राधाकृष्णमाई के पास भेज दिया करते थे । इस उच्छिष्ट अन्न को वे प्रसाद स्वरूप समझ कर प्रेमपूर्वक सेवन करती थी । इस रोटी की कथा को असंबद्ध नहीं समझना चाहिए । इससे सिद्ध होता है कि सभी प्राणियों में बाबा का निवास है, जो सर्वव्यापी, जन्म-मृत्यु से परे और अमर है ।

बाबा ने लक्ष्मीबाई की सेवाओं को सदैव स्मरण रखा । बाबा उनको भूला भी कैसे सकते थे ? देह-त्याग के बिल्कुल पूर्व बाबा ने अपनी जेब में हाथ डाला और पहले उन्होंने लक्ष्मी को पाँच रुपये और बाद में चार रुपये, इस प्रकार कुल नौ रुपये दिये । यह नौ की संख्या इस पुस्तक के अध्याय १२ में वर्णित नवविधा भक्ति की द्योतक है अथवा यह सीमोल्लंघन के समय दी जानेवाली दक्षिणा भी हो सकती है । लक्ष्मीबाई एक सुसंपन्न महिला थी । अतएव उन्हें रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं थी । इस कारण संभव है कि बाबा ने उनका ध्यान प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ११, अध्याय १० के श्लोक सं. ६ की ओर आकर्षित किया हो, जिसमें उत्कृष्ट कोटि के भक्त के नौ लक्षणों[१] का वर्णन है, जिसमें से पहले ५ और बाद मे ४ लक्षणों का क्रमशः प्रथम और द्वितीय चरणों में उल्लेख हुआ है । बाबा ने भी उसी क्रम का पालन किया (पहले ५ और बाद में ४; कुल ९) केवल ९ रुपये ही नहीं, बल्कि नौ के कई गुने रुपये लक्ष्मीबाई के हाथों में आए-गये होंगे, किन्तु बाबा द्वारा प्रदत्त ये नौ (रुपये) का उपहार वह महिला सदैव स्मरण रखेगी ।

अंतिम क्षण

बाबा सदैव सजग और चैतन्य रहते थे और उन्होंने अन्तिम समय भी पूर्ण सावधानी से काम लिया । उन्होंने अन्तिम समय सबको वहाँ से चले जाने का आदेश दिया । चिन्तामग्न काकासाहेब, बूटी और अन्य महानुभाव, जो मस्जिद में बाबा की सेवा में उपस्थित थे, उनको भी बाबा ने वाड़े मे जाकर भोजन करके लौट आने को कहा । ऐसी स्थिति में वे बाबा को अकेला छोड़ना तो नहीं चाहते थे, परन्तु उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी तो नही कर सकते थे । इसलिये इच्छा न होते हुए भी उदास और दुःखी हृदय से उन्हें वाड़े को जाना पड़ा । उन्हें विदित था कि बाबा की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है और इस

---

१. अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः ।
असत्वरोऽर्थ जिज्ञासुर्नसूयुमोघवाक् ।।

प्रकार उन्हें अकेले छोड़ना उचित नहीं है। वे भोजन करने के लिये बैठे तो, परन्तु उनके मन कहीं और (बाबा के साथ) थे। अभी भोजन समाप्त भी न हो पाया था कि बाबा के नश्वर शरीर त्यागने का समाचार उनके पास पहुँचा और वे अधपेट ही अपनी अपनी थाली छोड़कर मस्जिद की ओर भागे तथा जाकर देखा कि बाबा सदा के लिये बयाजी आपा कोते की गोद में अंतिम विश्राम कर रहे हैं। न वे नीचे लुढ़के और न शेया पर ही लेटे, अपने ही आसन पर शान्तिपूर्वक बैठे हुए ओर अपने हाथों से दान देते हुए उन्होंने यह मानव-शरीर त्याग दिया। सन्त स्वयं ही देह धारण करते तथा कोई निश्चित ध्येय लेकर इस संसार में प्रगट होते हैं और जब ध्येय पूर्ण हो जाता है तो वे जिस सरलता और आकस्मिकता के साथ प्रगट होते हैं, उसी प्रकार लुप्त भी हो जाया करते हैं।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

। सप्ताह पारायणः षष्ठ विश्राम ।

अध्याय-४३-४४
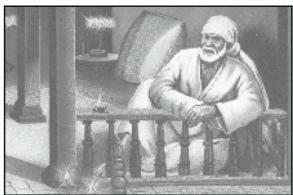
महासमाधि की ओर (२)

पूर्व तैयारी-समाधि मन्दिर, ईट का खंडन, ७२ घण्टे की समाधि, बापूसाहेब जोग का संन्यास, बाबा के अमृततुल्य वचन ।

इन ४३ और ४४ अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है, इसलिये वे यहाँ संयुक्त रूप में लिखे जा रहे हैं ।

पूर्व तैयारी-समाधि मंदिर

हिन्दुओं में यह प्रथा प्रचलित है कि जब किसी मनुष्य का अन्तकाल निकट आ जाता है तो उसे धार्मिक ग्रन्थ आदि पढ़कर सुनाये जाते हैं । इसका मुख्य कारण केवल यही है कि जिससे उसका मन सांसारिक झंझटो से मुक्त होकर आध्यात्मिक विषयों मे लग जाए और वह प्राणी कर्मवश अगले जन्म में जिस योनि को धारण करे, उसमें उसे सद्गति प्राप्त हो । सर्वसाधारण को यह विदित ही है कि जब राजा परिक्षित को एक ब्रह्मर्षि पुत्र ने शाप दिया और एक सप्ताह के पश्चात् ही उनका अन्तकाल निकट आया तो महात्मा शुकदेव ने उन्हें उस सप्ताह में श्रीमद्भागवत पुराण का पाठ सुनाया, जिससे उनका मोक्ष की प्राप्ति हुई । यह प्रथा अभी भी अपनाई जाती है । महानिर्वाण के समय गीता, भागवत और अन्य ग्रन्थों का पाठ किया जाता है । बाबा तो स्वयं अवतार थे, इसलिये उन्हें बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु केवल दूसरों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करने के हेतु ही उन्होंने इस प्रथा की उपेक्षा नहीं की । जब उन्हें विदित हो गया कि मैं अब शीघ्र इस नश्वर देह का त्याग करूँगा, तब उन्होंने श्री वझे को 'रामविजय' प्रकारण सुनारे की आज्ञा दी । श्री वझे ने एक सप्ताह प्रतिदिन पाठ सुनाया । तत्पश्चात् बाबा ने उन्हें आठों प्रहर पाठ करने की आज्ञा कर दी । श्री वझे ने उस अध्याय की द्वितीय आवृत्ती तीन दिन में पूर्ण कर दी और इस प्रकार ११ दिन बीत गए । फिर तीन दिन और उन्होंने पाठ

किया । अब श्री वझे बिल्कुल थक गए । इसलिये उन्हें विश्राम करने की आज्ञा हुई । बाबा अब बिल्कुल शान्त बैठ गए और आत्मस्थित होकर वे अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा करने लगे । दो-तीन दिन पूर्व ही प्रातःकाल से बाबा ने भिक्षाटन करना स्थगित कर दिया और वे मस्जिद में ही बैठे रहे । वे अपने अन्तिम क्षण के लिये पूर्ण सचेत थे, इसलिये वे अपने भक्तों को धैर्य तो बँधाते रहते, पर उन्होंने किसी से भी अपने महानिर्वाण का निश्चित समय प्रगट न किया । इन दिनों काकासाहेब दीक्षित और श्रीमान् बूटी, बाबा के साथ मस्जिद में नित्य ही भोजन करते थे । महानिर्वाण के दिन (१५ अक्टूबर को) आरती समाप्त होने के पश्चात् बाबा ने उन लोगों को भी अपने निवासस्थान पर ही भोजन करके लौटने को कहा । फिर भी लक्ष्मीबाई शिंदे, भागोजी शिंदे, बयाजी, लक्ष्मण बाला शिम्पी और नानासाहेब निमोणकर वहीं रह गए । शामा नीचे मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे थे । लक्ष्मीबाई शिन्दे को ९ रुपये देने के पश्चात् बाबा ने कहा कि, ''मुझे मस्जिद में अब अच्छा नहीं लगता है, इसलिये मुझे बुटी वाड़े में ले चलो, जहाँ मै सुखपूर्वक रहूँगा ।'' ये ही अन्तिम शब्द उनके श्रीमुख से निकले । इसी समय बाबा बयाजी के शरीर की ओर झुक गए और अन्तिम श्वास छोड़ दी । भागोजी ने देखा कि बाबा की श्वास रूक गई है, तब उन्होंने नानासाहेब निमोणकर को पुकार कर यह बात कही । नानासाहेब ने कुछ जल लाकर बाबा के श्रीमुख में डाला, जो बाहर लुढ़क आया । तभी उन्होंने जोर से आवाज लगाई ''अरे ! देवा !'' तब बाबा ऐसे दिखाई पड़े, जैसे उन्होंने धीरे से नेत्र खोलकर धीमे स्वर में ''ओह'' कहा हो । परन्तु अब स्पष्ट विदित हो गया कि उन्होंने सचमुच ही पंचभूत शरीर त्याग दिया है ।

''बाबा समाधिस्थ हो गए'' - यह हृदयविदारक दुःसंवाद दावानल की भाँति तुरन्त चारों ओर फैल गया । शिरडी के सब नर-नारी और बालकगण मस्जिद की ओर दौड़े । चारों ओर हाहाकार मच गया । सभी के हृदय पर वज्रपात हुआ । उनके हृदय विचलित होने लगे । कोई जोर-जोर से चिल्लाकर रुदन करने लगा । कोई सड़कों पर लोटने लगा और बहुत से बेसुध होकर

वहीं गिर पड़े । प्रत्येक की आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे । प्रलय काल के वातावरण में तांडव नृत्य का जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है, वही गति शिरडी के नर-नारियों के रुदन से उपस्थित हो गई । उनके इस महान् दुःख में कौन आकर उन्हें धैर्य बँधाता, जब कि उन्होंने साक्षात् सगुण परब्रह्म का सान्निध्य खो दिया था ? इस दुःख का वर्णन भला कर ही कौन सकता है ?

''अब कुछ भक्तों को श्री साई बाबा के वचन याद आने लगे । किसी ने कहा कि महाराज (साई बाबा) ने अपने भक्तों से कहा था कि, ''भविष्य में वे आठ वर्ष के बालक के रूप में पुनः प्रगट होंगे ।'' कृष्णावतार में भी चक्रपाणि (भगवान विष्णु) ने ऐसी ही लीला की थी । श्रीकृष्ण माता देवकी के सामने आठ वर्ष की आयु वाले एक बालक के रूप में प्रगट हुये, जिनका दिव्य तेजोमय स्वरूप था और जिनके चारों हाथों में आयुध (शंख, चक्र गदा और पद्म) सुशोभित थे। अपने उस अवतार में भगवान श्रीकृष्ण ने भू-भार हल्का किया था । साई बाबा का यह अवतार अपने भक्तों के उत्थान के लिए हुआ था । संतो की कार्यप्रणाली अक्षम्य होती है । साईबाबा का अपने भक्तों के साथ यह संपर्क केवल एक पीढ़ी का नहीं, बल्कि पिछले कई जन्मों का संपर्क है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध विकसित करके महाराज (श्री साई बाबा) दौरे पर चले गए हैं और भक्तों को दृढ़ विश्वास है कि वे शीघ्र ही पुनः वापस आ जाएँगे ।''

अब समस्या उत्पन्न हुई कि बाबा के शरीर की अन्तिम क्रिया किस प्रकार की जाए? कुछ यवन लोग कहने लगे कि उनके शरीर को कब्रिस्तान में दफ़न कर उसके ऊपर एक मकबरा बना देना चाहिए । खुशालचन्द और अमीर शक्कर को भी यही धारणा थी, परंतु ग्राम्य अधिकारी श्री रामचंद्र पाटील ने दृढ़ निश्चयात्मक स्वर में कहा कि, 'तुम्हारा निर्णय मुझे मान्य नहीं है । शरीर को वाड़े के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं रखा जाएगा ।'' इस प्रकार लोगों में मतभेद उत्पन्न हो गया और वह वादविवाद ३६ घण्टों तक चलता रहा।

बुधवार के दिन प्रातःकाल बाबा ने लक्ष्मण मामा जोशी को स्वप्न दिया

और उन्हें अपने हाथ से खींचते हुए कहा कि, ''शीघ्र उठो, बापूसाहेब समझता है कि मैं मृत हूँ। इसलिये वह तो आएगा नहीं। तुम पूजन और काकड़ आरती करो।'' लक्ष्मण मामा ग्राम के ज्योतिषी, शामा के मामा तथा एक कर्मठ ब्राह्मण थे। वे नित्य प्रातःकाल बाबा का पूजन किया करते, तत्पश्चात् ही ग्राम देवियों और देवताओं का। उनकी बाबा पर दृढ़ निष्ठा थी, इसलिये इस दृष्टांत के पश्चात् वे पूजन की समस्त सामग्री लेकर वहाँ आए और ज्यों ही उन्होंने बाबा के मुख का आवरण हटाया तो उस निर्जीव अलौकिक महान् प्रदीप्त प्रतिभा के दर्शन कर वे स्तब्ध हो गए, मानो हिमांशु ने उन्हें अपने पाश में आबद्ध करके जड़वत् बना दिया हो। स्वप्न की स्मृति ने उन्हें अपना कर्तव्य करने को प्रेरित कर दिया। फिर उन्होंने मौलवियों के विरोध की कुछ चिंता न कर विधिवत् पूजन और काकड़ आरती की। दोपहर बापूसाहेब जोग भी अन्य भक्तों के साथ आए और सदैव की भाँति मध्याह्न आरती की।

बाबा के अन्तिम श्री वचनों को आदरपूर्वक स्वीकार करके लोगों ने उनके शरीर को बूटी वाड़े में ही रखने का निश्चय किया और वहाँ का मध्य भाग खोदना आरम्भ कर दिया। मंगलवार की सन्ध्या को राहाता से सब-इन्स्पेक्टर और भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक लोग आकर वहाँ एकत्र हुए। सब लोगों ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल बम्बई से अमीर भाई और कोपरगाँव से मामलेदार भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि लोग अभी भी एकमत नहीं है। तब उन्होंने मतदान करवाया और पाया कि अधिकांश लोगों का बहुमत वाड़े के पक्ष में ही है। फिर भी वे इस विषय में कलेक्टर की स्वीकृति अति आवश्यक समझते थे। तब काकासाहेब स्वयं अहमदनगर जाने को उद्यत हो गए, परन्तु बाबा की प्रेरणा से विपक्षियों ने भी प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन सबने मिलकर अपना मत भी वाड़े के ही पक्ष में दिया। अतः बुधवार की सन्ध्या को बाबा का पवित्र शरीर बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ वाड़े में लाया गया और विधिपूर्वक उस स्थान पर समाधि बना दी गई, जहाँ ''मुरलीधर'' की मूर्ति स्थापित होने को थी। सच तो यह है कि बाबा ''मुरलीधर'' बन गए और वाड़ा, समाधि मंदिर एवं भक्तों का एक पवित्र देवस्थान जहाँ अनेकों भक्त आया जाया करते और अभी भी

नित्य-प्रति वहाँ आकर सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं । बालासाहेब भाटे और बाबा के अनन्य भक्त श्री उपासनी ने बाबा की विधिवत् अन्तिम क्रिया की।

जैसा प्रोफेसर नारके को देखने में आया, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाबा का शरीर ३६ घण्टे के उपरांत भी जड़ नहीं हुआ और उनके शरीर का प्रत्येक अवयव लचीला बना रहा, जिससे उनके शरीर पर से कफनी बिना चिरे हुए सरलता से निकाली जा सकी ।

ईंट का खण्डन

बाबा के निर्वाण के कुछ समय पूर्व एक अपशकून हुआ, जो इस घटना की पूर्वसूचना-स्वरूप था । मस्जिद में एक पुरानी ईंट थी, जिसपर बाबा अपना हाथ टेककर रखते थे । रात्रि के समय बाबा उस पर सिर रखकर शयन किया करते थे । यह अनेक वर्षों तक चला । एक दिन बाबा की अनुपस्थिति में एक बालक ने मस्जिद में झाडू लगाते समय वह ईंट अपने हाथ में उठाई। दुर्भाग्यवश वह ईंट उसके हाथ से गिर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गए । जब बाबा को इस बात की सूचना मिली तो उन्हें उसका बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि, ''यह ईंट नहीं फूटी है, मेरा भाग्य ही फूटकर छिन्न-भिन्न हो गया है । यह तो मेरी जीवनसंगिनी थी और इसको अपने पास रखकर मै आत्म-चिंतन किया करता था । यह मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय थी और उसने आज मेरा साथ छोड़ दिया है ।'' कुछ लोग यहाँ शंका कर सकते हैं कि बाबा को ईंट जैसी एक तुच्छ वस्तु के लिये इतना शोक क्यों करना चाहिए ? इसका उत्तर हेमाडपंत इस प्रकार देते हैं कि सन्त जगत के उद्धार तथा दीन और अनाश्रितों के कल्याणार्थ ही अवतीर्ण होते हैं । जब वे नरदेह धारण करते हैं और जनसम्पर्क में आते हैं तो वे इसी प्रकार आचरण किया करते हैं, अर्थात् बाह्य रूप से वे अन्य लोगों के समान ही हँसते, खेलते और रोते हैं, परन्तु आन्तरिक रूप से वे अपने अवतार-कार्य और उसके ध्येय के लिये सदैव सजग रहते हैं।

७२ घण्टे की समाधि

इसके ३२ वर्ष पूर्व भी बाबा ने अपनी जीवन-रेखा पार करने का एक प्रयास किया था । १८८६ में मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन बाबा को दमा से अधिका पीड़ा हुई और इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने अपने प्राण ब्रह्मांड में चढ़ाकर समाधि लगाने का विचार किया । अतएव उन्होंने भगत म्हालसापति से कहा कि, ''तुम मेरे शरीर की तीन दिन तक रक्षा करना और यदि मैं वापस लौट आया तो ठीक है, नहीं तो उस स्थान (एक स्थान को इंगित करते हुए) पर मेरी समाधि बना देना और दो ध्वजाएँ चिह्न स्वरूप फहरा देना ।''- ऐसा कहकर बाबा रात में लगभग दस बजे पृथ्वी पर लेट गए । उनका श्वासोच्छ्‌वास बन्द हो गया और ऐसा दिखाई देने लगा कि जैसे उनके शरीर में प्राण ही न हों । सभी लोग, जिनमें ग्रामवासी भी थे, वहाँ एकत्रित हुए और शरीर परीक्षण के पश्चात् शरीर का उनके द्वारा बताये हुए स्थान पर समाधिस्थ कर देने का निश्चय करने लगे । परन्तु भगत म्हालसापति ने उन्हें ऐसा करने से रोका और उनके शरीर को अपनी गोद में रखकर वे तीन दिन तक उसकी रक्षा करते रहे । तीन दिन व्यतीत होने पर रात को लगभग तीन बजे प्राण लौटने के चिह्न दिखलाई पड़ने लगे । श्वासोच्छ्‌वास पुनः चालू हो गया और उनके अंग-प्रत्यंग हिलने डुलने लगे । उन्होंने नेत्र खोल दिये और करवट लेते हुए पुनः चेतना में आ गए ।

इस प्रसंग तथा अन्य प्रसंगो पर दृष्टिपात कर अब हम यह पाठकों पर छोड़ते है कि वे ही इसका निश्चय करें कि क्या बाबा अन्य लोगों की भाँति ही साढ़े तीन हाथ लम्बे एक देहधारी मानव थे, जिस देह को उन्होंने कुछ वर्षो तक धारण करने के पश्चात् छोड़ दिया, या वे स्वयं आत्मज्योति स्वरूप थे । पंच महाभूतों से शरीर निर्मित होने के कारण उसका नाश और अन्त तो सुनिश्चित है, परन्तु जो सद्‌वस्तु (आत्मा) अन्तःकरण में है, वही यथार्थ में सत्य है । उसका न रूप है, न अंत है और न नाश। यही शुद्ध चैतन्यघन या ब्रह्म- इन्द्रियों और मन पर शासन और नियंत्रण रखने वाला जो तत्व है, वही 'साई' है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है और जो सर्वव्यापी है । अपना

अवतार-कार्य करने के लिये ही उन्होंने देह-धारण किया था और वह कार्य पूर्ण होने पर उन्होंने उसे त्याग कर पुनः अपना शाश्वत और अनंत स्वरूप धारण कर लिया। श्री दत्तात्रेय के पूर्ण अवतार-गाणगापूर के श्री नृसिंह सरस्वती के समान श्री साई भी सदैव वर्तमान हैं। उनका निर्वाण तो एक औपचारिक बात है। वे जड़ और चेतन सभी पदार्थों में व्याप्त हैं तथा सर्वभूतों के अन्तःकरण के संचालक और नियंत्रणकर्ता हैं। इसका अभी भी अनुभव किया जा सकता है और अनेकों के अनुभव में आ भी चुका है, जो अनन्य भाव से उनके शरणागत हो चुके हैं और जो पूर्ण अंतःकरण से उनके उपासक हैं।

यद्यपि बाबा का स्वरूप अब देखने को नहीं मिल सकता है, फिर भी यदि हम शिरडी जाएँ तो हमें वहाँ उनका जीवित-सदृश चित्र मस्जिद (द्वारकामाई) को शोभायमान करते हुए अब भी देखने मे आएगा। यह चित्र बाबा के एक प्रसिद्ध भक्त-कलाकार श्री शामराव जयकर ने बनाया था। एक कल्पनाशील और भक्त दर्शक को यह चित्र अभी भी बाबा के साक्षात दर्शन के समान ही सन्तोष और सुख पहुँचाता है। अब बाबा देह में स्थित नहीं हैं, परन्तु वे सर्वभूतों में व्याप्त हैं और भक्तो का कल्याण पूर्ववत् ही करते हैं, करते रहेंगे, जैसा कि वे सदेह रहकर किया करते थे। बाबा अमर हैं, चाहे वे नरदेह धारण कर लें, जो कि एक आवरण मात्र है, परन्तु वे तो स्वयं भगवान श्री हरि हैं, जो समय-समय पर भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

बापूसाहेब जोग का संन्यास

जोग के संन्यास की चर्चा कर हेमाडपंत यह अध्याय समाप्त करते हैं। श्री सखाराम हरी उर्फ बापूसाहेब जोग पूने के प्रसिद्ध वारकरी विष्णु बुवा जोग के काका थे। वे लोक निर्माण विभाग (पी. डब्ल्यु. डी.) में पर्यवेक्षक थे। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् वे सपत्नीक शिरडी में आकर रहने लगे। उनके कोई सन्तान न थी। पति और पत्नी दोनों की ही साई चरणों में अटल श्रद्धा थी। वे दोनों उनकी पूजा और सेवा करने में ही अपने दिन व्यतीत किया करते थे। मेघा की मृत्यु के पश्चात् बापूसाहेब जोग ने बाबा की महासमाधिपर्यन्त मस्जिद और चावड़ी में आरती की। उनको साठे वाड़ा में श्री ज्ञानेश्वर और श्री

एकनाथी भागवत का वाचन तथा उसका भावार्थ श्रोताओं को समझाने का कार्य भी दिया गया था । इस प्रकार अनेक वर्षो तक सेवा करने के पश्चात् उन्होंने एक बार बाबा से प्रार्थना की कि – ''हे मेरे जीवन के एकमात्र आधार ! आपके पूजनीय चरणों की अनेक वर्षों से निरंतर सेवा कर रहा हूँ, परन्तु क्या कारण है कि आपके चरणों की छाया के सन्निकट होते हुए भी मैं उनकी शीतलता से वंचित हूँ । मेरे इस जीवन में कौन-सा सुख है, यदि मेरा चंचल मन शान्त और स्थिर बनकर आपके श्रीचरणों मे लीन नहीं हो ? क्या इतने वर्षों का मेरा सन्त समागम व्यर्थ ही जाएगा ? मेरे जीवन में वह शुभ घड़ी कब आएगी, जब आपकी कृपादृष्टि मुझपर होगी ?''

भक्त की प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई । उन्होंने उत्तर दिया कि थोड़े ही दिनों में अब तुम्हारे अशुभ कर्म समाप्त हो जाएँगे तथा पाप और पुण्य जलकर शीघ्र ही भस्म हो जाएँगे । मैं तुम्हें उस दिन ही भाग्यशाली समझूँगा, जिस दिन तुम ऐन्द्रिक-विषयों को तुच्छ जानकर समस्त पदार्थों से विरक्त होकर पूर्ण अनन्य भाव से ईश्वर भक्ति कर संन्यास धारण कर लोगे । कुछ समय पश्चात् बाबा के वचन सत्य सिद्ध हुये । उनकी स्त्री का देहान्त हो जाने पर उनकी अन्य कोई जिम्मेदारी शेष न रही । वे अब स्वतंत्र हो गए और उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व संन्यास धारण कर अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया । (बापूसाहेब जोग की समाधि साकुरीमे उपासनी आश्रम के आवासमे स्थित है ।)

बाबा के अमृततुल्य वचन

दयानिधि कृपालु श्री साई समर्थ ने मस्जिद (द्वारिकामाई) में अनेक बार निम्नलिखित अमृत वचन कहे थे :-

'जो मुझे अत्यधिक प्रेम करता है, वह सदैव मेरा दर्शन पाता है । उसके लिए मेरे बिना सारा संसार ही सूना है । वह केवल मेरा ही लीलागान करता है । वह सतत् मेरा ही ध्यान करता है और सदैव मेरा ही नाम जपता है । जो पूर्ण रूप से मेरी शरण में आ जाता है और सदा मेरा ही स्मरण करता है, अपने ऊपर उसका यह ऋण मैं उसे मुक्ति (आत्मोपलब्धि) प्रदान करके चुका दूँगा ।

जो मेरा ही चिन्तन करता है, और मेरा प्रेम ही जिसकी भूख-प्यास है और जो पहले मुझे अर्पित किये बिना कुछ भी नहीं खाता, मैं उसके अधीन हूँ। जो इस प्रकार मेरी शरण में आता है, वह मुझसे मिलकर उसी तरह एकाकार हो जाता है, जिस तरह नदियाँ समुद्र से मिलकर तदाकार हो जाती है। अतएव महत्ता और अहंकार का सर्वथा परित्याग करके तुम्हें मेरे प्रति, जो तुम्हारे हृदय में आसीन है, पूर्ण रूप से समर्पित हो जाना चाहिए।''

यह 'मै' कौन है ?

श्री साईबाबा ने अनेक बार समझाया कि यह 'मै' कौन है। इस 'मै' को ढूँढ़ने के लिये अधिक दूर जाने की आवश्यकता नही है। तुम्हारे नाम और आकार से परे मैं तुम्हारे अन्तःकरण और समस्त प्राणियों में चैतन्यघन स्वरूप में विद्यमान हूँ और यही 'मै' का स्वरूप है। ऐसा समझकर तुम अपने तथा समस्त प्राणियों में मेरा ही दर्शन करो। यदि तुम इसका नित्य प्रति अभ्यास करोगे तो तुम्हें मेरी सर्वव्यापकता का अनुभव शीघ्र हो जाएगा और मेरे साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।

अतः हेमाडपंत पाठकों को नमन कर उनसे प्रेम और आदरपूर्वक विनम्र प्रार्थना करते हैं कि उन्हें समस्त देवताओं, सन्तों और भक्तों का आदर करना चाहिए। बाबा सदैव कहा करते थे कि जो दूसरों को पीड़ा पहुँचता है, वह मेरे हृदय को दुःख देता है तथा मुझे कष्ट पहुँचाता हैं, इसके विपरीत जो स्वयं कष्ट सहन करता है, वह मुझे अधिक प्रिय है। बाबा समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं और उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं। समस्त जीवों से प्रेम करो, यही उनकी आंतरिक इच्छा है। इस प्रकार का विशुद्ध अमृतमय स्त्रोत उनके श्री मुख से सदैव झरता रहता था। अतः जो प्रेमपूर्वक बाबा का लीलागान करेंगे या उन्हें भक्तिपूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें 'साई' से अवश्य अभिन्नता प्राप्त होगी।

।। श्री सद्‌गुरू साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४५

संदेह निवारण

काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के शयन के लिये लकड़ी का तख्ता।

प्रस्तावना

गत तीन अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब बाबा का साकार स्वरूप लुप्त हो गया है, परन्तु उनका निराकार स्वरूप सदैव विद्यमान रहेगा। अभी तक केवल उन्हीं घटनाओं और लीलाओं का उल्लेख किया गया है, जो बाबा के जीवनकाल में घटित हुई थीं। उनके समाधिस्थ होने के पश्चात्‌ भी अनेक लीलाएँ हो चुकी हैं और अभी भी देखने में आ रहीं हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि बाबा अभी भी विद्यमान हैं और पहले के ही भाँति अपने भक्तों को सहायता पहुँचाया करते हैं। बाबा के जीवन-काल में जिन व्यक्तियों को उनका सान्निध्य या सत्संग प्राप्त हुआ, यथार्थ में उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है ? यदि किसी को फिर भी ऐंद्रिक और सांसारिक सुखों से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सका तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जो उस समय आचरण में लाया जाना चाहिए था और अभी भी लाया जाना चाहिए, वह है अनन्य भाव से बाबा के पूजन और सेवा की ओर लगाना चाहिए। कृत्रिम पूजन से क्या लाभ ? यदि पूजन या ध्यानादि करने की ही अभिलाषा है तो वह शुद्ध मन और अन्तःकरण से होनी चाहिए।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का विशुद्ध प्रेम अपने पति पर होता है, इस प्रेम की उपमा कभी-कभी लोग शिष्य और गुरु के प्रेम से भी दिया करते हैं। परन्तु फिर भी शिष्य और गुरु-प्रेम के समक्ष पतिव्रता का प्रेम फिका है और

उसकी कोई समानता नहीं की जा सकती । माता, पिता, भाई या अन्य सम्बन्धी जीवन का ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) प्राप्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते । इसके लिये हमें स्वयं अपना मार्ग अन्वेषण कर आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर होना पड़ता है । नित्य और अनित्य में विवेक, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का त्याग, इन्द्रियनिग्रह और केवल मोक्ष की धारणा रखते हुए अग्रसर होना पड़ता है । दूसरों पर निर्भर रहने के बदले हमें आत्मविश्वास बढ़ाना उचित है । जब हम इस प्रकार विवेक-बुद्धि से कार्य करने का अभ्यास करेंगे तो हमें अनुभव होगा कि यह संसार नाशवान् और मिथ्या है । इस प्रकार की धारणा से सांसारिक पदार्थों में हमारी आसक्ति उत्तरोत्तर घटती जाएगी और अन्त में हमें उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा । तब कहीं आगे चलकर यह रहस्य प्रकट होगा कि ब्रह्म हमारे गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, वरन् यथार्थ में वे ही सद्वस्तु (परमात्मा) हैं; और यह रहस्योद्घाटन होता है कि यह दृश्यमान जगत् उनका ही प्रतिबिम्ब है । अतः इस प्रकार हम सभी प्राणियों में उनके ही रूप का दर्शन कर उनका पूजन करना प्रारम्भ कर देते हैं और यही समत्वभाव दृश्यमान जगत् से विरक्ति प्राप्त करानेवाला मूलमंत्र है । इस प्रकार जब हम ब्रह्म या गुरु की अनन्यभाव से भक्ति करेंगे तो हमें उनसे अभिन्नता की प्राप्ति होगी और आत्मानुभूति की प्राप्ति सहज हो जाएगी । संक्षेप में यह कि सदैव गुरु का कीर्तन और उनका ध्यान करना ही हमें सर्वभूतों में भगवत् दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है और इसी से परमानंद की प्राप्ति होती है । निम्नलिखित कथा इस तथ्य का प्रमाण है ।

काकासाहेब का सन्देह तथा आनन्दराव का स्वप्न

यह तो सर्वविदित ही है कि बाबा ने काकासाहेब दीक्षित को श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रन्थ (१) श्रीमद्भागवत और (२) भावार्थ रामायण का नित्य पठन करने की आज्ञा दी थी । काकासाहेब इन ग्रन्थों का नियमपूर्वक पठन बाबा के समय से करते आए हैं और बाबा के समाधिस्थ होने के उपरांत अभी

भी वे उसी प्रकार अध्ययन कर रहे हैं । एक समय चौपाटी (बम्बई) में काकासाहेब प्रातःकाल एकनाथी भागवत का पाठ कर रहे थे । माधवराव देशपांडे (शामा) और काका महाजनी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा ये दोनों ध्यानपूर्वक पाठ श्रवण कर रहे थे । उस समय ११ वें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का वाचन चल रहा था, जिसमें नवनाथ अर्थात् ऋषभ वंश के सिद्ध यानी कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन का वर्णन है, जिन्होंने भागवत धर्म की महिमा राजा जनक को समझायी थी । राजा जनक ने इन नव-नाथों से बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे और इन सभी ने उनकी शंकाओं का बड़ा सन्तोषजनक समाधान किया था, अर्थात् कवि ने भागवत धर्म, हरि ने भक्ति की विशेषताएँ, अंतरिक्ष ने माया क्या है, प्रबुद्ध ने माया से मुक्त होने की विधि, पिप्पलायन ने परब्रह्म के स्वरूप, आविर्होत्र ने कर्म के स्वरूप, द्रुमिल ने परमात्मा के अवतार और उसके कार्य, चमस ने नास्तिक की मृत्यु के पश्चात् की गति एवं करभाजन ने कलिकाल में भक्ति की पद्धतियों का यथाविधि वर्णन किया । इन सबका अर्थ यही था कि कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन केवल हरिकिर्तन या गुरु-चरणों का चिंतन ही है । पठन समाप्त होने पर काकासाहेब बहुत निराशापूर्ण स्वर में माधवराव और अन्य लोगों से कहने लगे कि नवनाथों की भक्ति पद्धति का क्या कहना है, परन्तु उसे आचरण में लाना कितना दुष्कर है ? नाथ तो सिद्ध थे, परन्तु हमारे समान मूर्खों में इस प्रकार की भक्ति का उत्पन्न होना क्या कभी संभव हो सकता है ? अनेक जन्म धारण करने पर भी वैसी भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती तो फिर हमें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकेगा ? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिये तो कोई आशा ही नहीं है । माधवराव को यह निराशावादी धारणा अच्छी न लगी । वे कहने लगे कि हमारा अहोभाग्य है, जिसके फलस्वरूप ही हमें साई सदृश अमूल्य हीरा हाथ लग गया है, तब फिर इस प्रकार निराशा का राग अलापना उचित नहीं है । यदि तुम्हें बाबा पर अटल विश्वास है तो फिर इस प्रकार चिंतित होने की आवश्यकता ही क्या है ? माना कि नवनाथों की भक्ति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ और प्रबल होगी, परन्तु क्या

हम लोग भी प्रेम और स्नेहपूर्वक भक्ति नहीं कर रहे है ? क्या बाबा ने अधिकारपूर्ण वाणी में नहीं कहा है कि श्रीहरि या गुरु के नामजाप से मोक्ष की प्राप्ति होती है ? तब फिर भय और चिन्ता का स्थान ही कहाँ रह जाता है ? परन्तु फिर भी माधवराव के वचनों से काकासाहेब का समाधान न हुआ । वे फिर भी दिन भर व्यग्र और चिन्तित ही बने रहे । यह विचार उनके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहा था कि किस विधि से नवनाथों के समान भक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी ?

एक महाशय, जिनका नाम आनन्दराव पाखाडे था, माधवराव को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ आ पहुँचे । उस समय भागवत का पठन हो रहा था । श्री पाखाडे भी माधवराव के समीप ही जाकर बैठ गए और उनसे धीरे-धीरे कुछ वार्ता करने लगे । वे अपना स्वप्न माधवराव को सुना रहे थे । इनकी कानाफूसी के कारण पाठ में विघ्न उपस्थित होने लगा। अतएव काकासाहेब ने पाठ स्थगित कर माधवराव से पूछा कि क्यों, क्या बात हो रही है? माधवराव ने कहा कि कल तुमने जो सन्देह प्रकट किया था, यह चर्चा भी उसी का समाधान है । कल बाबा ने श्री पाखडे को जो स्वप्न दिया है, उसे इनसे ही सुनो । इसमें बताया गया है कि **विशेष भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं, केवल गुरु को नमन या उनका पूजन करना ही पर्याप्त है ।** सभी को स्वप्न सुनने की तीव्र उत्कंठा थी और सबसे अधिक काकासाहेब को । सभी के कहने पर श्री पाखडे अपना स्वप्न सुनाने लगे, जो इस प्रकार है - ''मैंने देखा कि मैं एक अथाह सागर मे खड़ा हुआ हूँ । पानी मेरी कमर तक है और अचानक ही जब मैंने ऊपर देखा तो साईबाबा के श्री-दर्शन हुए । वे एक रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे और उनके श्री-चरण जल के भीतर थे । यह सुन्दर दृश्य और बाबा का मनोहर स्वरूप देख मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ । इस स्वप्न को भला कौन स्वप्न कह सकेगा ? मैंने देखा कि माधवराव भी बाबा के समीप ही खड़े है और उन्होंने मुझसे भावपूर्ण शब्दों में कहा कि, ''आनन्दराव ! बाबा के श्रीचरणों पर गिरो।'' मैंने उत्तर दिया कि, ''मैं भी तो यही करना चाहता हूँ, परन्तु उनके श्रीचरण तो जल के भीतर हैं । अब बताओ

कि मैं कैसे अपना शीश उनके चरणों पर रखूँ । मैं तो निस्सहाय हूँ ।'' इन शब्दों को सुनकर शामा ने बाबा से कहा कि, ''अरे देवा ! जल में से कृपाकर अपने चरण बाहर निकालिये न ।'' बाबा ने तुरन्त चरण बाहर निकाले और मैं तुरन्त उनसे लिपट गया । बाबा ने मुझे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि ''अब तुम आनंदपूर्वक जाओ । घबराने या चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं । अब तुम्हारा कल्याण होगा ।'' उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि, एक ज़रीके किनारों की धोती मेरे शामा को दे देना, इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा ।''

बाबा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिये ही श्री पाखाडे धोती लाये और काकासाहेब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे माधवराव को दे दीजिये, परन्तु माधवराव ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कहा कि जब तक बाबा से मुझे कोई आदेश या अनुमति प्राप्त नहीं होती ऐसा करने में असमर्थ हूँ । कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् काका ने दैवी आदेशसूचक पर्चियाँ निकालकर इस बात का निर्णय करने का विचार किया। काकासाहेब का यह नियम था कि जब उन्हें कोई सन्देह हो जाता तो वे कागज की दो पर्चियों पर ''स्वीकार-अस्वीकार'' लिखकर उसमें से एक पर्ची निकालते और जो कुछ उत्तर प्राप्त होता था, उसके अनुसार ही कार्य किया करते थे । इसका भी निपटारा करने के लिये उन्होंने उपर्युक्त विधि के अनुसार ही दो पर्चियाँ लिखकर बाबा के चित्र के समक्ष रखकर एक अबोध बालक को उसमें से एक पर्ची उठाने को कहा । बालक द्वारा उठाई गई पर्ची जब खोलकर देखी गई तो वह स्वीकारसूचक पर्ची ही निकली और तब माधवराव को धोती स्वीकार करनी पड़ी । इस प्रकार आनंदराव और माधवराव सन्तुष्ट हो गए और काकासाहेब का भी सन्देह दूर हो गया ।

इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि **हमें अन्य संतों के वचनो का उचित आदर करना चाहिए, परन्तु साथ ही साथ यह भी परम आवश्यक है कि हमे अपनी माँ अर्थात् गुरु पर पूर्ण विश्वास रख, उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करना चाहिए, क्योंकि अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे कल्याण की उन्हें अधिक चिन्ता है ।**

बाबा के निम्नलिखित वचनों को हृदयपटल पर अंकित कर लो – **''इस विश्व में असंख्य सन्त हैं, परन्तु अपना पिता (गुरु) ही सच्चा पिता (सच्चा गुरु) है। दूसरे चाहे कितने ही मधुर वचन क्यों न कहते हों, परन्तु अपना गुरु-उपदेश कभी नहीं भूलना चाहिए।** संक्षेप में सार यही है कि शुद्ध हृदय से अपने गुरु से प्रेम कर, उनकी शरण जाओ और उन्हें श्रद्धापूर्वक साष्टांग नमस्कार करो। तभी तुम देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख भवसागर का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा सूर्य के समक्ष अँधेरे का।''

बाबा के शयन के लिए लकड़ी का तख्ता

बाबा अपने जीवन के पूर्वार्ध में एक लकड़ी के तख्ते पर शयन किया करते थे। वह तख्ता चार हाथ लम्बा और एक बित्ता चौड़ा था, जिसके चारों कोनों पर चार मिट्टी के जलते दीपक रखे जाया करते थे। बाद में बाबा ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। (जिसका वर्णन गत अध्याय दस में हो चुका है)। एक समय बाबा उस पटिये की महत्ता का वर्णन काकासाहेब को सुना रहे थे, जिसको सुनकर काकासाहेब ने बाबा से कहा कि यदि अभी भी आपको उससे विशेष स्नेह है तो मैं मस्जिद में एक दूसरी पटिया लटकाये देता हूँ। आप सुखपूर्वक उस पर शयन किया करें। तब बाबा कहने लगे कि, ''अब म्हालसापति को नीचे छोड़कर मैं ऊपर नहीं सोना चाहता।''

काकासाहेब ने कहा कि, ''यदि आज्ञा दें तो मैं एक और तख्ता म्हालसापति के लिये भी टाँग दूँ।''

बाबा बोले कि, ''वे इस पर कैसे सो सकते हैं ? क्या यह कोई सहज कार्य है ? जो उस गुण से सम्पन्न हो, वही ऐसा कार्य कर सकता है। जो खुले नेत्र रखकर निद्रा ले सके, वही इसके योग्य है। जब मैं शयन करता हूँ, तो बहुधा म्हालसापति को अपने बाजू में बैठाकर उनसे कहता हूँ कि मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर देखते रहो कि कहीं मेरा भगवद् जाप बन्द न हो जाए और मुझे यदि थोड़ा-सा भी निद्रित देखो तो तुरंत जागृत कर दो, परन्तु उससे तो यह भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं ही झपकी लेने लगता है और निद्रामग्न

होकर अपना सिर डुलाने लगता है और जब मुझे भगत का हाथ पत्थर-सा भारी प्रतीत होने लगता है तो मैं जोर से पुकार उठता हूँ कि "ओ भगत"। तब कहीं वह घबरा कर नेत्र खोलता है। जो पृथ्वी पर ही अच्छी तरह बैठ और सो नहीं सकता तथा जिसका आसन सिद्ध नहीं है, और जो निद्रा का दास है, वह क्या तख्ते पर सो सकेगा?"[१] अन्य अनेक अवसरों पर वे भक्तों के स्नेहवश ऐसा कहा करते थे कि, "अपना अपने साथ और उसका उसके साथ।"

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

---

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।। गीता २ ।। ६९ ।।

अध्याय-४६

बाबा की गया यात्रा, बकरों के पूर्व जन्म की कथा।

इस अध्याय में शामा की काशी, प्रयाग व गया की यात्रा और बाबा किस प्रकार वहाँ इनके पूर्व ही (चित्र के रूप में) पहुँच गए तथा दो बकरों के गत जन्मों का इतिहास आदि का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

हे साई ! आपके श्रीचरण धन्य हैं और उनका स्मरण कितना सुखदायी है ! आपके भवभयविनाशक स्वरूप का दर्शन भी धन्य है, जिसके फलस्वरूप कर्मबन्धन छिन्नभिन्न हो जाते हैं। यद्यपि अब हमें आपके सगुण स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता, फिर भी यदि भक्तगण आपके श्रीचरणों में श्रद्धा रखें तो आप उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव दे दिया करते है। आप एक अज्ञात आकर्षण शक्ति द्वारा निकटस्थ या दूरस्थ भक्तों को अपने समीप खींचकर उन्हें एक दयालु माता के समान हृदय से लगाते हैं। हे साई ! भक्त नहीं जानते कि आपका निवास कहाँ है, परन्तु आप इस कुशलता से उन्हें प्रेरित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भासित होने लगता है कि आपका अभयहस्त उनके सिर पर है और यह आपकी कृपा-दृष्टि का परिणाम है कि उन्हें अज्ञात सहायता सदैव प्राप्त होती रहती है। अहंकार के वशीभूत होकर उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर पुरुष भी इस भवसागर की दलदल में फँस जाते हैं। परन्तु हे साई ! आप केवल अपनी शक्ति से असहाय और सुहृदय भक्तों को इस दलदल से उबारकर उनकी रक्षा किया करते हैं। पर्दे की ओट में छिपे रहकर आप ही तो सब न्याय कर रहे हैं। फिर भी आप की संपूर्ण जीवन गाथा न जान सका।

इसलिए यही श्रेयस्कर है कि हम अनन्य भाव से आपके श्रीचरणों की शरण में आ जाएँ और अपने पापों से मुक्त होने के लिये एकमात्र आपका ही नामस्मरण करते रहें । आप अपने निष्काम भक्तों की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर उन्हें परमानंद की प्राप्ति करा दिया करते हैं । केवल आपके मधुर नाम का उच्चारण ही भक्तों के लिये अत्यन्त सुगम पथ है । इस साधन से उनमें राजसिक और तामसिक गुणों का ह्रास होकर सात्विक और धार्मिक गुणों का विकास होगा । इसके साथ ही साथ उन्हें क्रमशः विवेक, वैराग्य और ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाएगी । तब उन्हें आत्मस्थित होकर गुरु से भी अभिन्नता प्राप्त होगी, और इसका ही दूसरा अर्थ है गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना । इसका निश्चित प्रमाण केवल यही है कि तब हमारा मन स्थिर और शांत हो जाता है । इस शरणागति, भक्ति और ज्ञान की महता अद्वितीय है, क्योंकि इनके साथ ही शांति, वैराग्य, किर्त्ति, मोक्ष इत्यादि की भी प्राप्ति सहज ही हो जाती है ।

यदि बाबा अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं तो वे सदैव ही उनके समीप रहते हैं, चाहे भक्त कहीं भी क्यों न चला जाए, परन्तु वे तो किसी न किसी रूप में पहले ही वहाँ पहुँच जाते हैं । यह निम्नलिखित कथा से स्पष्ट है ।

गया यात्रा

बाबा से परिचय होने के कुछ काल पश्चात् ही काकासाहेब दीक्षित ने अपने ज्येष्ठ पुत्र बापू का नागपुर में उपनयन संस्कार करने का निश्चय किया और लगभग उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र की ग्वालियर में शादी करने का कार्यक्रम बनाया । दीक्षित और चाँदोरकर दोनों ही शिरडी आए और प्रेमपूर्वक उन्होंने बाबा को निमंत्रण दिया । तब उन्होंने अपने प्रतिनिधि शामा को ले जाने को कहा, परन्तु जब उन्होंने स्वयं पधारने के लिये उनसे आग्रह किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि ''बनारस और प्रयाग निकल

जाने के पश्चात्, मै शामा से पहले ही पहुँच जाऊँगा ।'' पाठकगण ! कृपया इन शब्दों को थोड़ा ध्यान में रखें क्योंकि ये शब्द बाबा की सर्वज्ञता के बोधक हैं ।

बाबा की आज्ञा प्राप्त कर शामा ने इस उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये पहले नागपुर, ग्वालियर और इसके पश्चात् काशी, प्रयाग और गया जाने का निश्चय किया । अप्पा कोते भी शामा के साथ जाने को तैयार हो गए । प्रथम तो वे दोनों उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने नागपुर पहुँचे । वहाँ काकासाहेब दीक्षित ने शामा को दो सौ रूपये खर्च के निमित्त दिये । वहाँ से वे लोग विवाह में सम्मिलित होने ग्वालियर गए । वहाँ नानासाहेब चाँदोरकर ने सौ रुपये और उनके संबंधी श्री जठार ने भी सौ रुपये शामा को भेंट किये । फिर शामा काशी पहुँचे, जहाँ श्री जठार ने लक्ष्मी-नारायण जी के भव्य मदिर में उनका उत्तम स्वागत किया । अयोध्या में जठारके व्यवस्थापक ने भी शामा का अच्छा स्वागत किया । शामा और कोते अयोध्या में २१ दिन तथा काशी (बनारस) में दो मास ठहर कर फिर गया को रवाना हो गए । गया में प्लेग फैलने का समाचार रेलगाड़ी में सुनकर इन लोगों को थोड़ी चिन्ता सी होने लगी । फिर भी रात्रि को वे गया स्टेशन पर उतरे और एक धर्मशाला में जाकर ठहरे । प्रातःकाल गयावाला पूजारी (पंडा), जो यात्रियों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था किया करता था, आया और कहने लगा कि सब यात्री तो प्रस्थान कर चुके हैं, इसलिये अब आप भी शीघ्रता करें । शामा ने सहज ही उससे पूछा कि क्या गया में प्लेग फैला है ? तब पूजारी ने कहा कि, ''नहीं । आप निर्विघ्न मेरे यहाँ पधारकर वस्तुस्थिति का स्वयं अवलोकन कर लें ।'' तब वे उसके साथ उसके मकान पर पहुँचे। उसका मकान क्या, एक विशाल भवन था, जिसमें पर्याप्त यात्री विश्राम पा सकते थे । शामा को भी उसी स्थान पर ठहराया

गया, जो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। बाबा का एक बड़ा चित्र, जो कि मकान के अग्रिम भाग के ठीक मध्य में लगा था, देखकर वे अति प्रसन्न हो गए। उनका हृदय भर आया और उन्हें बाबा के शब्दों की स्मृति हो आई कि, ''मैं काशी और प्रयाग निकल जाने के पश्चात् शामा से आगे ही पहुँच जाऊँगा।'' शामा की आँखो से अश्रुओं की धारा बहने लगी और उनके शरीर में रोमांच हो आया तथा कंठ रूँध गया और रोते-रोते उनकी घिग्घियाँ बँध गई। पुजारी ने शामा की जो ऐसी स्थिति देखी तो उसने सोचा कि यह व्यक्ति प्लेग की सूचना से भयभीत होकर रुदन कर रहा है, परन्तु शामा ने उसकी कल्पना के विपरीत ही प्रश्न किया कि यह बाबा का चित्र तुम्हें कहाँ से मिला ? उसने उत्तर दिया कि मेरे दो-तीन सौ दलाल मनमाड और पुणताम्बे क्षेत्र में कार्य करते हैं। वहाँ शिरडी के साई महाराज की कीर्ति मुझे सुनाई पड़ी। लगभग बारह वर्ष हुए, मैंने स्वयं शिरडी जाकर बाबा के श्रीदर्शन का लाभ उठाया था और वहीं शामा के घर में लगे हुए उनके चित्र से मैं आकर्षित हुआ था। तभी बाबा की आज्ञा से शामा ने जो चित्र मुझे भेंट किया था, यह वही चित्र है। शामा की पूर्वस्मृति जागृत हो आई और जब गया वाले पूजारी को यह ज्ञात हुआ कि ये वही शामा हैं, जिन्होंने मुझे इस चित्र द्वारा अनुग्रहीत किया था और आज मेरे यहाँ अतिथि बनकर ठहरे हैं तो उसके आनंद की सीमा न रही। दोनों बड़े प्रेमपूर्वक मिलकर हर्षित हुए। फिर पुजारी ने शामा का बादशाही ढंग से भव्य स्वागत किया। वह एक धनाढ्य व्यक्ति था। स्वयं डोली में और शामा को हाथी पर बिठाकर खूब घूमाया तथा हर प्रकार से उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा। इस कथा ने सिद्ध कर दिया कि बाबा के वचन सत्य निकले। उनका अपने भक्तों पर कितना स्नेह था, इसको तो छोड़ो। वे तो सब प्राणियों पर एक-सा प्रेम किया करते थे और उन्हें अपना ही स्वरूप समझते थे। यह निम्नलिखित कथा से भी विदित हो जाएगा।

दो बकरे

एक बार जब बाबा लेंडी बाग से लौट रहे थे तो उन्होंने बकरों का एक झुंड आते देखा। उनमें से दो बकरों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। बाबा ने जाकर प्रेम-से उनका शरीर अपने हाथ से थपथपाया और उन्हें ३२ रुपये में खरीद लिया। बाबा का यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि बाबा तो इस सौदे में ठगे गए हैं, क्योंकि एक बकरे का मूल्य उस समय तीन-चार रुपये से अधिक न था और व दो बकरे अधिक से अधिक आठ रुपये में प्राप्त हो सकते थे।

उन्होंने बाबा को कोसना प्रारंभ किया, परंतु बाबा शान्त बैठे रहे। जब शामा और तात्या ने बकरे मोल लेने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि, ''मेरे कोई घर या स्त्री तो है नहीं, जिसके लिये मुझे पैसे इकट्ठे करके रखने है।'' फिर उन्होंने चार सेर दाल बाजार से मँगाकर उन्हें खिलाई। जब उन्हें खिला-पिला चुके तो उन्होंने उन बकरों के पूर्वजन्मों की कथा इस प्रकार सुनाई - ''शामा और तात्या, तुम सोचते हो कि मैं इस सौदे में ठगा गया हूँ ? परन्तु ऐसा नहीं, इनकी कथा सुनो। गत जन्म में दोनों सगे भाई थे और पहले इनमें परस्पर बहुत प्रेम था, किन्तु छोटा भाई बहुत परिश्रमी था, जिसने पर्याप्त धन उपार्जन कर लिया था, जिससे बड़ा भाई अपने छोटे भाई से ईर्ष्या किया करता था। इसलिये उसने छोटे भाई की हत्या करके उसका धन हड़प की ठानी और अपना आत्मीय सम्बन्ध भूलकर वे एक-दूसरे से बुरी तरह झगड़ने लगे। बड़े भाई ने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु वह छोटे भाई की हत्या में असफल रहा। तब वे एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु बन गए। एक दिन बड़े भाई ने छोटे भाई के सिर पर लाठी से प्रहार किया। तब बदले में छोटे भाई ने भी बड़े भाई के सिर कुल्हाड़ी चलाई और परिणामस्वरूप वहीं दोनो की मृत्यु हो गई। फिर अपने कर्मों के अनुसार ये दोनों बकरे की योनि को प्राप्त हुए।

जैसे ही वे मेरे समीप से निकले तो मुझे उनके पूर्व इतिहास का स्मरण हो आया और मुझे दया आ गई । इसलिये मैंने उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने तथा सुख देने का विचार किया । यही कारण है कि मैंने इनके लिये पैसे खर्च किये, जो तुम्हें महँगे प्रतीत हुए हैं । तुम लोगों को यह लेन-देन अच्छा नहीं लगा, इसलिये मैंने उन बकरों को गड़रिये को वापस कर दिया । केवल मनुष्य ही नहीं, सभी प्राणियों के लिए बाबा के हृदय में अपार प्रेम था ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४७

पुनर्जन्म : वीरभद्रप्पा और चेनबसाप्पा (सर्प व मेंढक) की वार्ता ।
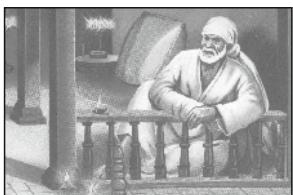
गत अध्याय में बाबा द्वारा बताई गई दो बकरों के पूर्व जन्मों की वार्ता थी । इस अध्याय मे कुछ और भी पूर्व जन्मों की स्मृतियों का वर्णन किया जाता है । प्रस्तुत कथा वीरभद्रप्पा ओर चेनबसप्पा के सम्बन्ध में है ।

प्रस्तावना

हे त्रिगुणातीत ज्ञानवतार श्री साई ! तुम्हारी मूर्ति कितनी भव्य और सुन्दर है । हे अन्तर्यामिन् ! तुम्हारे श्रीमुख की आभा धन्य है । उसका क्षणमात्र भी अवलोकन करने से पूर्व-जन्मों के समस्त दुःखों का नाश होकर सुख का द्वार खुल जाता है । परन्तु हे मेरे प्यारे श्री साई! यदि तुम अपने स्वभाववश ही कुछ कृपाकटाक्ष करो, तभी इसकी कुछ आशा हो सकती है । तुम्हारी दृष्टिमात्र से ही हमारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हमें आनन्द की प्राप्ति हो जाती है । गंगा में स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गंगामाई भी संतों के आगमन की सदैव उत्सुकता पूर्वक राह देखा करती है कि वे कब पधारें और मुझे अपनी चरण-रज से पावन करें । श्री साई तो संत-चूड़ामणि हैं । अब उनके द्वारा ही हृदय पवित्र बनाने वाली यह कथा सुनो ।

सर्प और मेंढक

श्री साईबाबा ने कहा - ''एक दिन प्रातःकाल ८ बजे जलपान के पश्चात् मैं घूमने निकला । चलते - चलते मैं एक छोटीसी नदी के किनारे पहुँचा । मैं अधिक थक चुका था, इस कारण वहाँ बैठकर कुछ विश्राम करने

लगा। कुछ देर के पश्चात् ही मैंने हाथ-पैर धोये और स्नान किया। तब कहीं मेरी थकावट दूर हुई और मुझे कुछ विश्रांति का अनुभव होने लगा। उस स्थान से एक पगडंडी और बैलगाड़ी के जाने का मार्ग था, जिसके दोनों ओर सघन वृक्ष थे। मलय-बयार मंद-मंद बह रही थी। मैं चिलम भर ही रहा था कि इतने में मेरे कानों में एक मेंढक के बुरी तरह टर्राने की ध्वनि पड़ी। मै चकमक सुलगा ही रहा था कि इतने में एक यात्री वहाँ आया और मेरे समीप आकर मुझे प्रणाम किया और घर पर पधारकर भोजन तथा विश्राम करने का आग्रह करने लगा। उसने चिलम सुलगा कर मेरी ओर पीने के लिए बढ़ाई। मेंढक के टर्राने की ध्वनि सुनकर वह उसका रहस्य जानने के लिये उत्सुक हो उठा। मैंने उसे बतलाया कि एक मेंढक कष्ट में है, जो अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। **पूर्वजन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना पड़ता हैं, अतः अब उसका चिल्लाना व्यर्थ है।** एक कश लेकर उसने चिलम मेरी ओर बढ़ाई। ''थोड़ा देखूँ तो, आखिर बात क्या है ?'' ऐसा कहकर वह उधर जाने लगा। मैंने असे बतलाया कि एक बड़े साँप ने एक मेंढक को मुँह में दबा लिया है, इस कारण वह चिल्ला रहा है। दोनों ही पूर्वजन्म में बड़े दुष्ट थे और अब इस शरीर में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। आगन्तुक ने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि सचमुख एक बड़े सर्प ने एक बड़े मेंढक को मुँह में दबा रखा है।

उसने वापस आकर मुझे बताया कि लगभग घड़ी-दो-घड़ी में ही साँप मेंढक को निगल जाएगा। मैंने कहा - ''नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, मैं उसका संरक्षक पिता हूँ और इस समय यहाँ उपस्थित हूँ। फिर सर्प की क्या सामर्थ्य है कि मेंढक को निगल जाए? क्या मैं व्यर्थ ही यहाँ बैठा हूँ ? देखो, मैं अभी उसकी किस प्रकार रक्षा करता हूँ।'' दुबारा चिलम पीने के पश्चात् हम लोग उस स्थान पर गए। आगन्तुक डरने लगा और उसने मुझे आगे बढ़ने से रोका कि कहीं सर्प आक्रमण न कर दे। मैं उसकी बात की उपेक्षा कर आगे बढ़ा और दोनों से कहने लगा कि, ''अरे वीरभद्रप्पा ! क्या तुम्हारे शत्रु को

पर्याप्त फल नहीं मिल चुका है, जो उसे मेंढक की और तुम्हें यह सर्प की योनि प्राप्त हुई है ? अरे ! अब तो अपना वैमनस्य छोड़ो । यह बड़ी लज्जाजनक बात है । अब तो इस ईर्ष्या को त्यागो और शांति से रहो ।'' इन शब्दों को सुनकर सर्प ने मेंढक को छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी में लुप्त हो गया । मेंढक भी कूदकर भागा और झाड़ियों में जा छिपा ।

उस यात्री को बड़ा अचम्भा हुआ । उसकी समझ में न आया कि बाबा के शब्दों को सुनकर साँप ने मेंढ़क को क्यों छोड़ दिया और वीरभद्रप्पा व चेनबसाप्पा कौन थे ? उनके वैमनस्य का कारण क्या था ? इस प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे । मैं उसके साथ उसी वृक्ष के नीचे लौट आया और धूम्रपान करने के पश्चात् उसे इसका रहस्य सुनाने लगा -

''मेरे निवासस्थान से लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक पवित्र स्थान था, जहाँ महादेव का एक मंदिर था । मंदिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था, सो वहाँ के निवासियों ने उसका जीर्णोद्धार करने के हेतु कुछ चन्दा इकट्ठा किया । पर्याप्त धन एकत्रित हो गया और वहाँ नित्य पूजन की व्यवस्था कर मंदिर के निर्माण की योजनाएँ तैयार की गईं । एक धनाढ्य व्यक्ति को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर उसको समस्त कार्य की देखभाल का भार सौंप दिया गया । उसको कार्य, व्यय आदि का यथोचित विवरण रखकर ईमानदारी से सब कार्य करना था । सेठ तो एक उच्च कोटि का कंजूस था । उसने मरम्मत में अत्यन्त अल्पराशि व्यय की, इस कारण मंदिर का जीर्णोद्धार भी उसी अनुपात में हुआ । उसने सब राशि व्यय कर दी तथा कुछ अंश स्वयं हड़प लिया और उसने अपनी गाँठ से एक पाई भी व्यय न की । उसकी वाणी अधिक रसीली थी, इसलिये उसने लोगों को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया और कार्य पूर्ववत् ही अधूरा रह गया । लोग फिर संगठित होकर उसके पास जाकर कहने लगे - सेठसाहेब ! कृपया कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिये । आपके प्रयत्न के अभाव में यह कार्य पूर्ण होना कदापि संभव नहीं । अतः आप पुनः योजना बनाईयें । हम और

भी चन्दा आपको वसूल करके देंगे । लोगों ने पुनः चन्दा एकत्रित कर सेठ को दे दिया । उसने रूपये तो ले लिये, परन्तु पूर्ववत् ही शांत बैठा रहा । कुछ दिनों के पश्चात् उसकी स्त्री को भगवान् शंकर ने स्वप्न दिया कि, उठो और मंदिर पर कलश चढ़ाओ । जो कुछ भी तुम इस कार्य में व्यय करोगी, मैं उसका सौ गुना अधिक तुम्हें दूँगा । उसने यह स्वप्न अपने पति को सुना दिया । सेठ भयभीत होकर सोचने लगा कि यह कार्य तो ज्यादा रुपये खर्च कराने वाला है इसलिये उसने यह बात हँसकर टाल दी कि यह तो एक निरा स्वप्न ही है और उस पर भी कहीं विश्वास किया जा सकता है ? यदि ऐसा होता तो महादेव मेरे समक्ष ही प्रगट होकर यह बात मुझसे न कह देते ? मैं क्या तुमसे अधिक दूर था ? यह स्वप्न शुभदायक नहीं । यह तो पति-पत्नी के सम्बन्ध बिगाड़ने वाला है । इसलिये तुम बिल्कुल शांत रहो । भगवान् को ऐसे द्रव्य की आवश्यकता ही कहाँ, जो दानियों की इच्छा के विरुद्ध एकत्र किया गया हो । वे तो सदैव प्रेम के भूखे हैं तथा प्रेम और भक्तिपूर्वक दिये गए एक तुच्छ ताँबे का सिक्का भी सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं । महादेव ने पुनः सेठानी को स्वप्न में कह दिया कि तुम अपने पति की व्यर्थ बातों और उनके पास संचित धन की ओर ध्यान न दो और न उनसे मंदिर बनवाने के लिए आग्रह ही करो । मैं तो तुम्हारे प्रेम और भक्ति का ही भूखा हूँ । जो कुछ भी तुम्हारी व्यय करने की इच्छा हो, सो अपने पास से करो । उसने अपने पति से विचार-विनिमय करके अपने पिता से प्राप्त आभूषणों को विक्रय करने का निश्चय किया । तब कृपण सेठ अशान्त हो उठा । इस बार उसने भगवान को भी धोखा देने की ठान ली । उसने कौड़ी-मोल केवल एक हजार रुपयों में ही अपनी पत्नी के समस्त आभूषण स्वयं खरीद डाले और एक बंजर भूमि का भाग मंदिर के निमित्त लगा दिया, जिसे उसकी पत्नी ने भी चुपचाप स्वीकार कर लिया । सेठ ने जो भूमि दी, वह उसकी स्वयं की न थी, वरन् एक निर्धन स्त्री ''दुबकी'' की थी, जो इसके यहाँ दो सौ रुपयों में गिरवी रखी हुई थी । दीर्घकाल तक वह ऋण

चुकाकर उसे वापस न ले सकी, इसलिये उस धूर्त कृपण ने अपनी स्त्री, ''दुबकी'' और भगवान् को धोखा दे दिया। भूमि पथरीली होने के कारण उसमें उत्तम ऋतु में भी कोई पैदावार न होती थी। इस प्रकार यह लेन-देन समाप्त हुआ। भूमि उस मंदिर के पुजारी को दे दी गई, जो उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।''

कुछ समय के पश्चात् एक विचित्र घटना हुई। एक दिन बहुत जोरों से झंझावात आया और अतिवृष्टि हुई। उस कृपण के घर पर बिजली गिरी और फलस्वरूप पति-पत्नी दोनों की मृत्यु हो गई। दुबकी ने भी अंतिम श्वास छोड़ दी। अगले जन्म में वह कृपण मथुरा के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ और उसका नाम ''वीरभद्रप्पा'' रखा गया। उसकी धर्मपत्नी उस मंदिर के पुजारी के घर कन्या होकर उत्पन्न हुई और उसका नाम ''गौरी'' रखा गया। ''दुबकी'' पुरुष बनकर मंदिर के गुरव (सेवक) वंश में पैदा हुई और उसका नाम चेनबसाप्पा रखा गया। पुजारी मेरा मित्र था और बहुधा मेरे पास आता जाता, वार्तालाप करता और मेरे साथ चिलम पिया करता था। उसकी पुत्री गौरी भी मेरी भक्त थी। वह दिनोंदिन सयानी होती जा रही थी, जिससे उसका पिता भी उसके हाथ पीले करने की चिंता में रहता था। मैंने उससे कहा कि चिंता की कोई आवश्यकता नहीं, वर स्वयं तुम्हारे घर लड़की की खोज में आ जाएगा। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसी की जाति का वीरभद्रप्पा नामक एक युवक भिक्षा माँगते-माँगते उसके घर पहुँचा। मेरी सम्मति से गौरी का विवाह उसके साथ सम्पन्न हो गया। पहले तो वह मेरा भक्त था, किन्तु अब वह कृतघ्न बन गया। इस नूतन जन्म में भी उसकी धन-तृष्णा नष्ट न हुई। उसने मुझसे कोई उद्योग धंधा सुझाने को कहा, क्योंकि इस समय वह वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी एक विचित्र घटना हुई। अचानक ही प्रत्येक वस्तुओं के भाव ऊँचे चढ़ गए। गौरी के भाग्य से जमीन की माँग अधिक होने लगी और समस्त भूमि एक लाख रुपयों में, आभूषणों के मूल्य

से १०० गुना अधिक मूल्य में बिक गई । ऐसा निर्णय हुआ कि ५० हजार रूपये नगद और २००० रूपये प्रतिवर्ष किश्त पर चुकता कर दिये जाएँगे । सबको यह लेनदेन स्वीकार था, परन्तु धन में हिस्से के कारण उनमें परस्पर विवाद होने लगा । वे परामर्श लेने मेरे पास आए और मैंने कहा कि यह भूमि तो भगवान् की है, जो पुजारी को सौंपी गई थी, इसकी स्वामिनी ''गौरी'' ही है, और एक पैसा भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना उचित नहीं तथा उसके पति का इसपर कोई अधिकार नहीं है । मेरे निर्णय को सुनकर वीरभद्रप्पा मुझसे क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम गौरी को फुसलाकर उसका धन हड़पना चाहते हो । इन शब्दों को सुनकर मैं भगवत् नाम लेकर चुप बैठ गया । वीरभद्र ने अपनी स्त्री को पीटा भी । गौरी ने दोपहर के समय आकर मुझसे कहा कि आप उन लोगों के कहने का बुरा न मानें । मै तो आपकी लड़की हूँ । मुझ पर कृपादृष्टि ही रखें । वह इस प्रकार मेरी शरण में आई तो मैंने उसे वचन दे दिया कि **मैं सात समुद्र पार भी तुम्हारी रक्षा करूँगा ।** तब उस रात्रि को गौरी को एक दृष्टांत हुआ । महादेव ने आकर कहा कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है और इसमें से किसी को कुछ न दो । चेनबसाप्पा की सलाह से कुछ राशि मंदिर के कार्य के लिये खर्च करो । यदि और किसी भी कार्य में तुम्हें खर्च करने की इच्छा हो तो मस्जिद में जाकर बाबा (स्वयं मै) के परामर्श से करो । गौरी ने अपना दृष्टांत मुझे सुनाया और मैंने इस विषय में उचित सलाह भी दी । मैंने उससे कहा कि मूलधन तो तुम स्वयं ले लो और ब्याज की आधी रकम चेनबसाप्पा को दे दो । वीरभद्र का इसमें कोई सम्बन्ध नही है। जब मैं यह बात कर ही रहा था, वीरभद्र और चेनबसाप्पा दोनों ही वहाँ झगड़ते हुए आए । मैंने दोनों को शांत करने का प्रयत्न किया तथा गौरी को हुआ महादेव का स्वप्न भी सुनाया । वीरभद्र क्रोध से उन्मत्त हो गया और चेनबसाप्पा को टुकड़े-टुकड़े कर मार डालने की धमकी देने लगा । चेनबसाप्पा बड़ा डरपोक था । वह मेरे पैर पकड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा । तब मैंने शत्रु से उसका

छुटकारा करा दिया। कुछ समय पश्चात् ही दोनों की मृत्यु हो गई। वीरभद्र सर्प बना और चेनबसाप्पा मेंढक। चेनबसाप्पा की पुकार सुनकर और अपने पूर्व वचन की स्मृति करके यहाँ आया और इस तरह से उसकी रक्षा कर मैंने अपने वचन पूर्ण किये। **संकट के समय भगवान् दौड़कर अपने भक्त के पास जाते हैं। उसने मुझे यहाँ भेजकर चेनबसाप्पा की रक्षा कराई। यह सब ईश्वरीय लीला है।**''

शिक्षा

इस कथा की यही शिक्षा है कि **जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जब तक कि भोग पूर्ण नहीं होता।** पिछला ऋण और अन्य लोगों के साथ लेन-देन का व्यवहार जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक छुटकारा भी संभव नहीं है। धनतृष्णा मनुष्य का पतन कर देती है और अन्त में इससे ही वह विनाश को प्राप्त होता है।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

अध्याय-४८

सद्‌गुरु के लक्षण

(१) श्री शेवड़े और (२) श्री सपटणेकर व श्रीमती सपटणेकर (३) संतति दान ।

अध्याय प्रारम्भ करने से पूर्व किसी ने हेमाडपंत से प्रश्न किया कि साईबाबा गुरु थे या सद्‌गुरु ? इसके उत्तर में हेमाडपंत ने सद्‌गुरु के लक्षणों का निम्नप्रकार वर्णन करते है ।

सद्‌गुरु के लक्षण

जो वेद और वेदान्त तथा छः शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करके ब्रह्मविषयक मधुर व्याख्यान देने में पारंगत हो तथा जो अपने श्वासोच्छ्‌वास क्रियाओं पर नियंत्रण कर सहज ही मुद्राएँ लगाकर अपने शिष्यों को मंत्रोपदेश दे, निश्चित अवधि में यथोचित संख्या का जाप करने का आदेश दे, और केवल अपने वाक्‌चातुर्य से ही उन्हें जीवन के अंतिम ध्येय का दर्शन कराता हो तथा जिसे स्वयं आत्मसाक्षात्कार न हुआ हो, वह सद्‌गुरु नहीं । वरन्‌ जो अपने आचरणों से लौकिक व पारलौकिक सुखों से विरक्ति की भावना का निर्माण कर हमें आत्मानुभूति का रसास्वादन करा दे तथा जो अपने शिष्यों को क्रियात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मानुभूति) करा दे, उसे ही सद्‌गुरु कहते हैं । जो स्वयं ही आत्मसाक्षात्कार से वंचति है, वे भला अपने अनुयायियों को किस प्रकार अनुभूति करा सकते हैं ? सद्‌गुरु स्वप्न में भी अपने शिष्य से कोई लाभ या सेवा-शुश्रुषा की लालसा नहीं करते, वरन्‌ स्वयं उनकी सेवा करने को ही उद्यत रहते हैं । उन्हें यह कभी भी भान नहीं होता है कि मैं कोई महान्‌ हूँ और मेरा शिष्य मुझसे तुच्छ है, अपितु उसे अपने ही सदृश (या ब्रह्मस्वरूप) समझा करते हैं । सद्‌गुरु की मुख्य विशेषता यही है कि उनके

हृदय में सदैव परम शांति विद्यमान रहती है । वे कभी अस्थिर या अशांत नहीं होते और न उन्हें अपने ज्ञान का ही लेशमात्र गर्व होता है । उनके लिए राजा-रंक, स्वर्ग-अपवर्ग सब एक ही समान हैं ।

हेमाडपंत कहते हैं कि मुझे गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप श्री साईबाबा सदृश सद्‌गुरु के चरणों की प्राप्ति तथा उनके कृपापात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वे अपनी युवावस्था में चिलम के अतिरिक्त कुछ संग्रह न किया करते थे । न उनके बाल-बच्चे तथा मित्र थे, न घरबार था और न उन्हें किसी प्रकार का आश्रय प्राप्त था । १८ वर्ष की अवस्था से ही उनका मनोनिग्रह बड़ा विलक्षण था । वे निर्भय होकर निर्जन स्थानों में विचरण करते एवं सदा आत्मलीन रहते थे । उनका कथन था कि **मैं सदा भक्त के पराधीन रहता हूँ ।** जब वे शरीर में थे, उस समय भक्तों ने जो अनुभव किये, उनके समाधिस्थ होने पश्चात् आज भी जो उनके शरणागत हो चुके हैं, उन्हें उसी प्रकार अनुभव होते हैं । भक्तों को तो केवल इतना ही यथेष्ट है कि यदि वे अपने हृदय को भक्ति और विश्वास का दीपक बनाकर उसमें प्रेम की ज्योति प्रज्जवलित करें तो ज्ञानज्योति (आत्मसाक्षात्कार) स्वयं प्रकाशित हो उठेगी । प्रेम के अभाव में शुष्क ज्ञान व्यर्थ है । ऐसा ज्ञान किसी को भी लाभप्रद नहीं हो सकता, प्रेम के अभाव में संतोष नहीं होता । इसलिए हमारा प्रेम असीम और अटूट होना चाहिए । प्रेम की कीर्ति का गुणगान कौन कर सकता है, जिसकी तुलना में समस्त वस्तुएँ तुच्छ जान पड़ती हैं ? प्रेमरहित पठनपाठन सब निष्फल है। प्रेमांकुर के उदय होते ही भक्ति, वैराग्य, शांति और कल्याणरूपी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है । जब तक किसी वस्तु के लिए प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसे प्राप्त करने की भावना ही उत्पन्न नहीं होती । इसलिए जहाँ व्याकुलता और प्रेम है, वहाँ भगवन् स्वयं प्रकट हो जाते हैं । भाव में ही प्रेम अंतर्निहित है और वही मोक्ष का कारणीभूत है । यदि कोई व्यक्ति कलुषित भाव से भी किसी सच्चे संत के चरण पकड़ ले तो भी यह निश्चित है

कि वह अवश्य तर जाएगा। ऐसी ही कथा नीचे दर्शाई गई है।

श्री शेवड़े

‘‘अक्कलकोट’’ (सोलापूर जिला) के श्री सपटणेकर वकालत का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनकी अपने सहपाठी श्री शेवड़े से भेंट हुई। अन्य और भी विद्यार्थी वहाँ एकत्रित हुए और सब ने अपनी-अपनी अध्ययन संबंधी योग्यता का परस्पर परीक्षण किया। प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया कि सब से कम अध्ययन श्री शेवड़े का है और वे परीक्षा में बैठने के अयोग्य हैं। जब सब मित्रों ने मिलकर उनका उपहास किया तब शेवड़े ने कहा कि, ‘‘यद्यपि मेरा अध्ययन अपूर्ण है तो भी मैं परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरे साईबाबा ही सबको सफलता देने वाले हैं।’’ श्री सपटणेकर को यह सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री शेवड़े से पूछा कि, ये साईबाबा कौन हैं, जिनका तुम इतना गुणगान कर रहे हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि ‘‘वे एक फकीर हैं, जो शिरडी (अहमदनगर) की एक मस्जिद में निवास करते हैं। वे महान् सत्‌पुरुष हैं। ऐसे अन्य संत भी हो सकते हैं, परन्तु वे उनसे अद्वितीय हैं। जब तक पूर्व जन्म के शुभ संस्कार संचित न हों, तब तक उनसे भेंट होना दुर्लभ है। मेरी तो उन पर पूर्ण श्रद्धा है। उनके श्रीमुख से निकले वचन कभी असत्य नहीं होते। उन्होंने ही मुझे विश्वास दिलाया है कि मैं अगले वर्ष परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरा भी अटल विश्वास है कि मैं उनकी कृपा से परीक्षा में अवश्य ही सफलता पाऊँगा।’’ श्री सपटणेकर को अपने मित्र के ऐसे विश्वास पर हँसी आ गई और साथ ही श्री साईबाबा का भी उन्होंने उपहास किया। भविष्य में जब शेवड़े दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए। तब सपटणेकर को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री सपटणेकर

श्री सपटणेकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् अक्कलकोट में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी। दस वर्षों के पश्चात्

सन् १९१३ में उनके इकलौते पुत्र की गले की बीमारी से मृत्यु हो गई, जिससे उनका हृदय विचलित हो उठा। मानसिक शांति प्राप्त कने हेतु उन्होंने पंढरपुर, गाणगापुर और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की परन्तु उनकी अशांति पूर्ववत् ही बनी रही। उन्होंने वेदांत का भी श्रवण किया, परन्तु वह भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। अचानक उन्हें शेवड़े के वचनों तथा श्री साईबाबा के प्रति उनके विश्वास की स्मृति हो आई और उन्होंने विचार किया कि मुझे भी शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करना चाहिए। वे अपने छोटे भाई पंडितराव के साथ शिरडी आए। बाबा के दर्शन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। जब उन्होंने समीप जाकर नमस्कार करके शुद्ध भावना से श्रीफल भेंट किया तो बाबा तुरन्त क्रोधित हो उठे और बोले कि, ''यहाँ से निकल जाओ।'' सपटणेकर का सिर झुक गया और वे कुछ हटकर पीछे बैठ गए। वे जानना चाहते थे कि किस प्रकार उनके समक्ष उपस्थित होना चाहिए। किसी ने उन्हें बाला शिम्पी का नाम सुझा दिया। सपटणेकर उनके पास गए और उनसे सहायता करने की प्रार्थना करने लगे। तब वे दोनों बाबा का एक चित्र मोल लेकर मस्जिद को आए। बाला शिम्पी ने अपने हाथ में चित्र लेकर बाबा हाथ में दे दिया और पूछा कि यह किसका चित्र है ? बाबा ने सपटणेकर की ओर संकेत कर कहा कि, ''यह तो इसके (सपटणेकर की तरफ इशारा करके) यार का है।'' यह कहकर वे हँसने लगे और साथ ही सब भक्त मंडली भी हँसने लगी। बाला शिम्पी के संकेत पर जब सपटणेकर उन्हें प्रणाम करने लगे तो वे पुनः चिल्ला पड़े कि 'चल हट्'। सपटणेकर की समझ में नही आता था कि वे क्या करें। तब वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बाबा के सामने बैठ गए, परन्तु बाबा ने उन्हें तुरन्त ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। वे दोनों बहुत ही निराश हुए। उनकी आज्ञा कौन टाल सकता था ? आखिर सपटणेकर खिन्न-हृदय शिरडी से वापस चले आए। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि, ''हे साई ! मैं आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ। कम से कम इतना ही आश्वासन दे दीजिये कि मुझे

भविष्य में कभी न कभी आपके श्री दर्शनों की अनुमति मिलेगी ।''

श्रीमती सपटणेकर

एक वर्ष बीत गया, फिर भी उनके मन में शांति न आई । वे गाणगापुर गए, जहाँ उनके मन में अशांति और अधिक बढ़ गई । अतः वे माढेगाँव विश्राम के लिये पहुँचे और वहाँ से ही काशी जाने का निश्चय किया । प्रस्थान करने के दो दिन पूर्व उनकी पत्नी को स्वप्न हुआ कि वह स्वप्न में एक गागर ले लक्कड़शाह के कुएँ पर जल भरने जा रही है । वहाँ नीम के नीचे एक फकीर बैठा है । सिर पर एक कपड़ा बँधा हुआ है । फकीर उसके पास आकर कहने लगा कि, ''मेरी प्रिय बच्ची ! तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठा राही हो ? मैं तुम्हारी गागर निर्मल जल से भर देता हूँ ।'' तब फकीर के भय से वह खाली गागर लेकर ही लौट आई । फकीर भी उसके पीछे-पीछे चला आया। इतने में ही घबराहट में उसकी निद्रा भंग हो गई और उसने आँखे खोल दीं । यह स्वप्न उसने अपने पति को सुनाया । उन्होंने इसे शुभ शकुन जाना और वे दोनों शिरडी को रवाना हो गए । जब वे मस्जिद पहुँचे तो बाबा वहाँ उपस्थित न थे । वे लेण्डी बाग गए हुये थे । उनके लौटने की प्रतीक्षा में वे वहीं बैठे रहे । जब बाबा लौटे तो उन्हें देखकर उनकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में जिस फकीर के उसने दर्शन किये थे, उनकी आकृति बाबा से बिल्कुल मिलती-जुलती थी । उसने अति आदरसहित बाबा को प्रणाम किया और वहीं बैठे-बैठे उन्हें निहारने लगी । उसका विनम्र स्वभाव देखकर बाबा अत्यन्त प्रसन्न हो गए । अपनी पद्धति के अनुसार वे एक तीसरे व्यक्ति को अपने अनोखे ढंग से एक कहानी सुनाने लगे - ''मेरे हाथ, उदर, शरीर तथा कमर में बहुत दिनों से दर्द हुआ करते था । मैंने अनेक उपचार किये, परन्तु मुझे कोई लाभ न पहुँचा । मैं औषधियों से ऊब उठा, क्योंकि मुझे उनसे कोई लाभ न हो रहा था, परन्तु अब मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है कि मेरी समस्त पीड़ाये एकदम ही जाती रहीं ।'' यद्यपि किसी का नाम नहीं लिया गया था, परन्तु यह

चर्चा स्वयं श्रीमती सपटणेंकर की थी। उनकी पीड़ा जैसा बाबा ने अभी कहा, सर्वथा मिट गई और वे अत्यन्त प्रसन्न हो गई।

संतति-दान

तब श्री सपटणेकर दर्शन के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनका पूर्वोक्त वचनों से ही स्वागत हुआ कि 'चल हट्'। इस बार वे बहुत धैर्य और नम्रता धारण करके आए थे। उन्होंने कहा कि पिछले कर्मों के कारण ही बाबा मुझसे अप्रसन्न हैं और उन्होंने अपना चरित्र सुधारने का और बाबा से एकान्त में भेंट करके अपने पिछले कर्मों की क्षमा माँगने का निश्चय किया। उन्होंने वैसा ही किया भी और अब जब उन्होंने अपना मस्तक उनके श्रीचरणों पर रखा तो बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अभी सपटणेकर उनके चरण दबाते हुए बैठे ही थे कि इतनेमें एक गड़ेरिन आई और बाबा की कमर दबाने लगी। तब वे सदैव की भाँति एक बनिये की कहानी सुनाने लगे। जब उन्होंने उसके जीवन के अनेकों परिर्वतन तथा उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु का हाल सुनाया तो सपटणेकर को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि जो कथा वे सुना रहे है, वह तो मेरी ही है। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि उनको मेरे जीवन की प्रत्येक बात का पता कैसे चल गया ? अब उन्हें विदित हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं और सबके ह्रदय का पूरा-पूरा रहस्य जानते हैं। यह विचार उनके मन में आया ही था कि गड़रिन से वार्तालाप चालू रखते हुए बाबा सपटणेकर की ओर संकेत कर कहने लगे कि, ''यह भला आदमी मुझ पर दोषारोपण करता है कि मैंने ही इसके पुत्र को मार डाला हैं। क्या मैं लोगों के बच्चों के प्राण-हरण करता हूँ ? फिर ये महाशय मस्जिद में आकर अब क्यों चीख-पुकार मचाते हैं ? अब मैं एक काम करूँगा। अब मैं उसी बालक को फिर से इनकी पत्नी के गर्भ में ला दूँगा।'' ऐसा कहकर बाबा ने अपना वरद्हस्त सपटणेकर के सिर पर रखा और उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि, **''ये चरण अधिक पुरातन तथा पवित्र हैं**

। जब तुम चिंता से मुक्त होकर मुझ पर पूरा विश्वास करोगे, तभी तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी ।'' सपटणेकर का हृदय गद्‌गद हो उठा । तब अश्रुधारा से उनके चरण धोकर वे अपने निवासस्थान पर लौट आए और फिर पूजन की तैयारी कर नैवेद्य आदि लेकर वे सपत्नीक मस्जिद में आए । वे इसी प्रकार नित्य नैवेद्य चढ़ाते और बाबा से प्रसाद ग्रहण करते रहे । मस्जिद में अपार भीड़ होते हुए भी वे वहाँ जाकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते थे । एक दूसरे से सिर टकराते देखकर बाबा ने उनसे कहा कि, ''**प्रेम तथा श्रद्धा द्वारा किया हुआ एक नमस्कार ही मुझे पर्याप्त है ।**'' उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी का उत्सव देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हें बाबा ने पांडुरंग के रूप में दर्शन दिये ।

जब वे दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने विचार किया कि पहले दक्षिणा में बाबा को एक रूपया दूँगा । यदि उन्होंने और माँगे तो अस्वीकार करने के बजाए एक रुपया और भेंट में चढ़ा दूँगा । फिर भी यात्रा कि लिए शेष द्रव्यराशि पर्याप्त होगी । जब उन्होंने मस्जिद जाकर बाबा को एक रुपया दक्षिणा दी तो बाबा ने भी उनकी इच्छा जानकर एक रुपया उनसे माँगा । जब सपटणेकर ने उसे सहर्ष दे दिया तो बाबा ने भी उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि, ''यह श्रीफल ले जाओ और इसे अपनी पत्नी की गोद में रखकर निश्चिंत होकर घर जाओ।'' उन्होंने वैसा ही किया और एक वर्ष के पश्चात् ही उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ । आठ मास का शिशु लेकर वह दम्पत्ति फिर शिरडी को आए और बाबा के चरणों पर बालक को रखकर फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि, ''हे श्रीसाईनाथ ! आपके ऋण हम किस प्रकार चुका सकेंगे ? आपके श्रीचरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है । हम दीनों पर आप सदैव कृपा करते रहियेगा, क्योंकि हमारे मन में सोते-जागते हर समय न जाने क्या-क्या संकल्प-विकल्प उठा करते हैं । आपके भजन में ही हमारा मन लीन हो जाए,

ऐसा आशीर्वाद दीजिए।''

उस पुत्र का नाम ''मुरलीधर'' रखा गया। बाद में उनके दो पुत्र (भास्कर और दिनकर) और उत्पन्न हुए। इस प्रकार सपटणेकर दम्पति को अनुभव हो गया कि बाबा के वचन कभी असत्य और अपूर्ण नहीं होते।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-४९

परीक्षा :

(१) हरि कानोबा

(२) सोमदेव स्वामी

(३) नानासाहेब चाँदोरकर की कथाएँ।

प्रस्तावना

जब वेद और पुराण ही ब्रह्म या सद्गुरु का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं, तब मैं एक अल्पज्ञ प्राणी अपने सद्गुरु श्री साईबाबा का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ? मेरा स्वयं का तो यह मत है कि इस विषय में मौन धारण करना ही अति उत्तम है। सच पूछा जाए तो मूक रहना ही सद्गुरु की विमल पताकारूपी विरुदावली का उत्तम प्रकार से वर्णन करना है। परन्तु उनमें जो उत्तम गुण हैं, वे हमें मूक कहाँ रहने देते हैं ? यदि स्वादिष्ट भोजन बने और मित्र तथा सम्बन्धी आदि साथ बैठकर न खायें तो वह नीरस-सा प्रतीत होता है ; और जब वही भोजन सब एक साथ बैठकर खाते है, तब उसमें एक विशेष प्रकार की सुस्वादुता आ जाती है । वैसी ही स्थिति साईलीलामृत के सम्बन्ध में भी है। इसका एकांत मे रसास्वादन कभी नहीं हो सकता। यदि मित्र और पारिवारिक जन सभी मिलकर इसका रस लें तो और अधिक आनन्द आ जाता हैं। श्री साईबाबा स्वयं ही अंतःप्रेरणा कर अपनी इच्छानुसार ही इन कथाओं को मुझसे वर्णित करा रहे हैं। इसलिये हमारा तो केवल इतना ही कर्तव्य है कि अनन्यभाव से उनके शरणागत होकर उनका ही ध्यान करें। तप-साधन, तीर्थ यात्रा, व्रत एवं यज्ञ और दान से हरिभक्ति श्रेष्ठ है, और सद्गुरु का ध्यान इन सबमें परम श्रेष्ठ है। इसलिये सदैव मुख से, साईनाम का स्मरण कर उनके उपदेशों का निदिध्यासन एवं स्वरूप का चिन्तन कर हृदय में उनके प्रति सत्य और प्रेम के भाव से समस्त चेष्टाएँ

उनके ही निमित्त करनी चाहिए । भवबन्धन से मुक्त होने का इससे उत्तम साधन और कोई नहीं । यदि हम उपर्युक्त विधि से कर्म करते जाएँ तो साई को विवश होकर हमारी सहायता कर हमें मुक्ति प्रदान करनी ही पड़ेगी । अब इस अध्याय की कथा श्रवण करें ।

हरि कानोबा

बम्बई के हरि कानोबा नामक एक महानुभाव ने अपने कई मित्रों और संबन्धियों से साईबाबा की अनेक लीलाएँ सुनी थीं, परन्तु उन्हें विश्वास ही न होता था, क्योंकि वे संशयालु प्रकृति के व्यक्ति थे । अविश्वास उनके हृदयपटल पर अपना आसन जमाये हुये था । वे स्वयं बाबा की परीक्षा करने का निश्चय करके अपने कुछ मित्रों सहित बम्बई से शिरडी आए । उन्होंने सिर पर एक ज़री की पगड़ी और पैरों में नये सैंडिल पहन रखे थे । उन्होंने बाबा को दूर से ही देखकर उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम तो करना चाहा, परन्तु उनके नये सैंडिल इस कार्य में बाधक बन गए । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए । तब उन्होंने अपने सैंडिल मंडप के एक सुरक्षित कोने में रखे और मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किये । उनका ध्यान सैंडिलों पर ही लगा रहा । उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक बाबा को प्रणाम किया और उनसे प्रसाद और उदी प्राप्त कर लौट आए । पर जब उन्होंने कोने में दृष्टि डाली तो देखा कि सैंडिल तो अंतर्धान हो चुके हैं । पर्याप्त छानबीन भी व्यर्थ हुई और अन्त में निराश होकर वे अपने स्थान पर वापस आ गए ।

स्नान, पूजन और नैवेद्य आदि अर्पित करके वे भोजन करने को तो बैठे, परन्तु वे पूरे समय उन सैंडिलों के चिन्तन में ही निमग्न रहे । भोजन कर मुँह-हाथ धोकर जब वे बाहर आए तो उन्होंने एक मराठा बालक को अपनी ओर आते देखा, जिसके हाथ में डण्डे के कोने पर एक नये सैंडिलों को जोड़ा लटका हुआ था । उस बालक ने हाथ धोने के लिए बाहर आने वाले लोगों से कहा कि बाबा ने मुझे यह डण्डा हाथ में देकर रास्तों में घूम-घूम कर ''हरि के बेटा ज़री

का फेंटा'' की पुकार लगाने को कहा है तथा जो कोई कहे कि सैंडिल हमारे हैं, उससे पहले यह पूछना कि क्या उसका नाम हरि और उसके पिता का 'क' (अर्थात् कानोबा) से है ? साथ ही यह भी देखना कि वह ज़रीदार साफा बाँधे हुए है या नहीं, तब इन्हें उसे दे देना । बालक का कथन सुनकर हरि कानोबा को बेहद आनन्द व आश्चर्य हुआ । उन्होंने आगे बढ़कर बालक से कहा कि, ''ये हमारे ही सैंडिल हैं, मेरा ही नाम हरि और मैं ही 'क' (कानोबा) का पुत्र हूँ। यह मेरा ज़री का साफा देखो,'' बालक सन्तुष्ट हो गया और सैंडिल उन्हें दे दी । उन्होंने सोचा कि मेरी ज़रीदार पगड़ी तो सब को ही दिख रही थी । हो सकता है कि बाबा की भी दृष्टि में आ गई हो । परन्तु यह मेरी शिरडी-यात्रा का प्रथम अवसर है, फिर बाबा को यह कैसे विदित हो गया कि मेरा ही नाम हरि है और मेरे पिता का कानोबा ? वह तो केवल बाबा की परीक्षार्थ वहाँ आया था । उसे इस घटना से बाबा की महानता विदित हो गई । उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और वह सहर्ष घर लौट गया ।

सोमदेव स्वामी

अब एक दूसरे संशयालु व्यक्ति की कथा सुनिये, जो बाबा की परीक्षा करने आया था । काकासाहेब दीक्षित के भ्राता श्री भाईजी नागपुर में रहते थे । जब वे सन् १९०६ में हिमालय गए थे, तब उनका गंगोत्री घाटी के नीचे हरिद्वार के समीप उत्तरकाशी में एक सोमदेव स्वामी से परिचय हो गया । दोनों ने एक दूसरे के पते लिख लिये । पाँच वर्ष पश्चात् सोमदेव स्वामी नागपुर में आए और भाईजी के यहाँ ठहरे । वहाँ श्री साईबाबा की कीर्ति सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा हुई । मनमाड और कोपरगाँव निकल जाने पर वे एक ताँगे में बैठकर शिरडी को चल पड़े । शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्होंने दूर से ही मस्जिद पर दो ध्वज लहराते देखे । सामान्यतः देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न सन्तों का बर्त्ताव, रहन-सहन और बाह्य सामग्रियाँ प्रायः भिन्न प्रकार की रहा करती हैं । परन्तु

केवल इन से ही सन्तों की योग्यता का आकलन कर लेना बड़ी भूल है । सोमदेव स्वामी कुछ भिन्न प्रकृति के थे । उन्होंने जैसे ही ध्वजों को लहराते देखा तो वे सोचने लगे कि बाबा सन्त होकर इन ध्वजों में इतनी दिलचस्पी क्यों रखते हैं ? क्या इससे उनका सन्तपन प्रकट होता है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह सन्त अपनी किर्ति का इच्छुक है । अतएव उन्होंने शिरडी जाने का विचार त्याग कर अपने सहयात्रियों से कहा कि, मैं तो वापस लौटना चाहता हूँ । तब वे लोग कहने लगे कि, फिर व्यर्थ ही इतनी दूर क्यों आए ? अभी केवल ध्वजों को देखकर तुम इतने उद्विग्न हो उठे तो जब शिरडी में रथ, पालकी, घोड़ा और अन्य सामग्रियाँ देखोगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी ? स्वामी को अब और भी अधिक घबराहट होने लगी और उसने कहा कि मैंने अनेक साधु-सन्तों के दर्शन किये हैं, परन्तु यह सन्त कोई निराला ही है, जो इस प्रकार ऐश्वर्य की वस्तुएँ संग्रह कर रहा है । ऐसे साधु के दर्शन न करना ही उत्तम है, ऐसा कहकर वे वापस लौटने लगे । तीर्थयात्रियों ने प्रतिरोध करते हुए उन्हें आगे बढ़ने की सलाह दी और समझाया कि तुम यह संकुचित मनोवृत्ति छोड़ दो । मस्जिद में जो संत हैं, वे इन ध्वजाओं और अन्य सामग्रियों या अपनी कीर्ति का स्वप्न में भी सोच-विचार नहीं करते । ये सब तो उनके भक्तगण प्रेम और भक्ति के कारण ही उनको भेंट किया करते हैं । अन्त में वे शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने को तैयार हो गए । मस्जिद के मंडप में पहुँच कर तो वे द्रवित हो गए । उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और कंठ रुँध गया । अब उनके सब दूषित विचार हवा हो गए और उन्हें अपने गुरु के शब्दों की स्मृति हो आई कि **''मन जहाँ अति प्रसन्न और आकर्षित हो जाए, उसी स्थान को ही अपना विश्रामधाम समझना ।''** वे बाबा की चरण-रज में लोटना चाहते थे, परन्तु जब वे उनके समीप गए तो बाबा एकदम क्रोधित होकर जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगे कि, ''हमारा सामान हमारे ही साथ रहने दो, तुम अपने वापस लौट जाओ । सावधान ! यदि फिर कभी मस्जिद की सीढ़ी चढ़े तो । ऐसे संत के दर्शन ही क्यों करने चाहिए, जो मस्जिद पर

ध्वजाएँ लगाकर रखे ? क्या ये सन्तपन के लक्षण हैं ? एक क्षण भी यहाँ न रूको ।'' अब उसे अनुभव हो गया कि बाबा ने अपने ह्रदय की बात जान ली है और वे कितने सर्वज्ञ हैं ! उसे अपनी प्रवृत्ति पर हँसी आने लगी तथा उसे पता चल गया कि बाबा कितने निर्विकार और पवित्र हैं । उसने देखा कि वे किसी को ह्रदय से लगाते और किसी को हाथ से स्पर्श करते हैं तथा किसी को सान्त्वना देकर प्रेमदृष्टि से निहारते हैं । किसी को उदी प्रसाद देकर सभी प्रकार से भक्तों को सुख और सन्तोष पहुँचा रहे हैं तो फिर मेरे साथ ऐसा रूखा बर्ताव क्यों ? अधिक विचार करने पर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका कारण मेरे आन्तरिक विचार ही थे और इससे शिक्षा ग्रहण कर मुझे अपना आचरण सुधारना चाहिए । बाबा का क्रोध तो मेरे लिये वरदानस्वरूप है । अब यह कहना व्यर्थ ही होगा कि वे बाबा की शरण में आ गए और उनके परम भक्त बन गए ।

नानासाहेब चाँदोरकर

अन्त में नानासाहेब चाँदोरकर की कथा लिखकर हेमाडपंत ने यह अध्याय समाप्त किया है । एक समय जब नानासाहेब, म्हालसापति और अन्य लोगों के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे तो वैजापूर (औरंगाबाद) से एक सम्भ्रान्त यवन परिवार श्री साईबाबा के दर्शनार्थ आया । कुलवन्तियों की लाजरक्षण भावना देखकर नानासाहेब वहाँ से निकल जाना चाहते थे, परन्तु बाबा ने उन्हें रोक लिया । स्त्रियाँ आगे बढ़ी और उन्होंने बाबा के दर्शन किये । उनमें से एक महिला ने अपने मुँह पर से घूँघट हटाकर बाबा के चरणों में प्रणाम कर फिर घूँघट डाल लिया । नानासाहेब उसके सौंदर्य से आकर्षित हो गए और एक बार पुनः वह छवि देखने को लालायित हो उठे । नाना के मन की व्यथा जानकर उन लोगों के चले जाने के पश्चात् बाबा उनसे कहने लगे कि, ''नाना, क्यों व्यर्थ में मोहित हो रहे हो ? इन्द्रियों को अपना कार्य करने दो । हमें उनके कार्य में बाधक न होना चाहिए । भगवान् ने यह सुन्दर सृष्टि निर्माण की है । अतः

हमारा कर्तव्य हैं कि हम उसके सौन्दर्य की सराहना करें । यह मन तो क्रमशः ही स्थिर होता है, और जब सामने का द्वार खुला है, तब हमें पिछले द्वार से क्यों प्रविष्ट होना ? चित्त शुद्ध होते ही फिर किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता । यदि हमारे मन में कुविचार नहीं हैं तो हमें किसी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं । नेत्रों को अपना कार्य करने दो । इसके लिये तुम्हें लज्जित तथा विचलित न होना चाहिए ।'' उस समय शामा भी वहीं थे । उनकी समझ में न आया कि आखिर बाबा के कहने का तात्पर्य क्या है ? इसलिये लौटते समय इस विषय में उन्होंने नाना से पूछा । उस परम सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर जिस प्रकार वे मोहित हुए तथा यह व्यथा जानकर बाबा ने इस विषय पर जो उपदेश उन्हें दिये, उन्होंने उसका सम्पूर्ण वृतान्त उनसे कहकर शामा को इस प्रकार समझाया - ''हमारा मन स्वभावतः ही चंचल है, पर हमें उसे लम्पट न होने देना चाहिए । इन्द्रियाँ चाहे भले ही चंचल हो जाएँ, परन्तु हमें अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखकर उसे अशांत न होने देना चाहिए । इन्द्रियाँ तो अपने विषयपदार्थों के लिये सदैव चेष्टा किया ही करती हैं, पर हमें उनके वशीभूत होकर उनके इच्छित पदार्थों के समीप न जाना चाहिए । क्रमशः प्रयत्न करते रहने से इस चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है । यद्यपि उन पर पूर्ण नियंत्रण संभव नहीं है तो भी हमें उनके वशीभूत न होना चाहिए । यदि हममें किसी प्रकार के कुविचार न आएँ तो इसमें लज्जा और भय की आवश्यकता ही क्या है । यदि मन को निरिच्छ बनाकर ईश्वर के सौन्दर्य को निहारो तो इन्द्रियाँ सहज और स्वभाविक रूप से अपने वश में आ जाएँगी और विषयानन्द लेते समय भी तुम्हें ईश्वर की स्मृति बनी रहेगी । यदि उसे बाह्य इन्द्रियों के पीछे दौड़ने तथा उनमें लिप्त रहने दोगे तो तुम्हारा जन्म-मृत्यु के पाश से कदापि छुटकारा न होगा । विषयपदार्थ इंद्रियों को सदा पथभ्रष्ट करने वाले होते हैं । अतएव हमें विवेक को सारथी बनाकर मन की लगाम

अपने हाथ में लेकर इन्द्रिय रूपी घोड़ों विष्णु-पद की प्राप्ति करा देगा, जो हमारा यथार्थ में परम सत्यधाम है, और जहाँ गया हुआ प्राणी फिर कभी यहाँ नहीं लौटता।''

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-५०
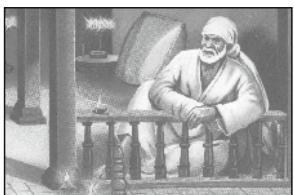
(१) काकासाहेब दीक्षित,
(२) श्री टेंबे स्वामी
(३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।

मूल सच्चरित्र के अध्याय ३९ और ४० को हमने एक साथ सम्मिलित कर लिखा है, क्योंकि इन दोनों अध्यायों का विषय प्रायः एक-सा ही है। अब सच्चरित्र का अध्याय ५१ यहाँ ५० वें अध्याय के रूप में लिखा जा रहा है। इस अध्याय में (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ हैं।

प्रस्तावना

उन श्रीसाई महाराज की जय हो, जो भक्तों के जीवनाधार एवं सद्गुरु हैं। वे गीताधर्म का उपदेश देकर हमें शक्ति प्रदान कर रहें हैं। हे साई, कृपादृष्टि से देखकर हमें आशीष दो। जैसे मलयगिरी में होनेवाला चन्दनवृक्ष समस्त तापों का हरण कर लेता है अथवा जिस प्रकार बादल जलवृष्टि कर लोगों को शीतलता और आनन्द पहुँचाते हैं, या जैसे वसन्त में खिले फूल ईश्वरपूजन के काम आते हैं, इसी प्रकार श्री साईबाबा की कथाएँ पाठकों तथा श्रोताओं को धैर्य एवं सान्त्वना देती हैं। जो कथा कहते या श्रवण करते हैं, वे दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि उनके कहने से मुख तथा श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं।

यह तो सर्वमान्य हैं कि चाहे हम सैकड़ों प्रकार की साधनाएँ क्यों न करें, जब तक सद्गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक हमें अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विषय में यह निम्नलिखित कथा सुनिये -

काकासाहेब दीक्षित (१८६४-१९२६)

श्री हरि सीताराम उपनाम काकासाहेब दीक्षित सन् १८६४ में वड़नगर के नागर ब्राह्मण कुल में खण्डवा में पैदा हुए थे । उनकी प्राथमिक शिक्षा खण्डवा और हिंगणघाट में हुई । माध्यमिक शिक्षा नागपुर में उच्च श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उन्होंने पहले विल्सन तथा बाद में एल्फिन्स्टन कॉलेज में अध्ययन किया । सन् १८८३ में उन्होंने विधी स्नातक (एल.एल.बी.) और कानूनी सलाहकार (सॉलीसिटर) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, और फिर वे सरकारी सॉलिसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी में कार्य करने लगे । इसके पश्चात् उन्होंने अपनी एक सॉलिसिटर फर्म शुरु कर दी ।

सन् १९०९ के पहले तो बाबा की कीर्ति उनके कानों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु इसके पश्चात् वे शीघ्र ही बाबा के परम भक्त बन गए । जब वे लोनावला में निवास कर रहे थे तो उनकी अचानक भेंट अपने पुराने मित्र नानासाहेब चाँदोरकर से हुई । दोनों ही इधर-उधर की चर्चाओं में समय बिताते थे । काकासाहेब ने उन्हें बताया कि जब वे लन्दन में थे तो रेलगाड़ी पर चढ़ते समय कैसे उनका पैर फिसला तथा कैसे उसमें चोट आई, इसका पूर्ण विवरण सुनाया । नानासाहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस लँगड़ेपन तथा कष्ट से मुक्त होना चाहते हो तो मेरे सद्गुरू श्री साईबाबा की शरण में जाओ । उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर उनके कथन को दुहराया कि, ''**मैं अपने भक्त को सात समुद्रों के पार से भी उसी प्रकार खींच लूँगा, जिस प्रकार कि एक चिड़िया को जिसका पैर रस्सी से बँधा हो, खींच कर अपने पास लाया जाता है।**'' उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न हो तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे । काकासाहेब को ये बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा, वे शिरडी जाकर बाबा से प्रार्थना करेंगे कि शारीरिक लँगड़ेपन के बदले उनके चंचल मन को अपंग बनाकर परमानन्द की प्राप्ति करा दें ।

कुछ दिनों के पश्चात्‌ ही बम्बई विधान सभा (Legislative Assembly) के चुनाव में मत प्राप्त करने के सम्बन्ध में काकासाहेब दीक्षित अहमदनगर गए और सरदार काकासाहेब मिरीकर के यहाँ ठहरे। श्री बालासाहेब मिरीकर जो कि कोपरगाँव के मामलतदार तथा काकासाहेब मिरीकर के सुपुत्र थे, वे भी इसी समय अश्वप्रदर्शनी देखने के हेतु अहमदनगर पधारे थे। चुनाव का कार्य समाप्त होने के पश्चात्‌ काकासाहेब दीक्षित शिरडी जाना चाहते थे। यहाँ पिता और पुत्र दोनों ही घर में विचार कर रहे थे कि काकासाहेब के साथ भेजने के लिये कौन सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और दूसरी ओर बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक सोचनीय है और उन्हें देखने वे शीघ्र अहमदनगर को आएँ। बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहाँ जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था। प्रदर्शनी को जाते समय नानासाहेब पानसे तथा अप्पासाहेब गद्रे की दृष्टि अचानक शामा पर पड़ी। उन्होंने शामा से मिरीकर के घर जाकर काकासाहेब दीक्षित से भेंट करने तथा उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने को कहा। उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काकासाहेब दीक्षित और मिरीकर को भी दे दी। सन्ध्या समय शामा मिरीकर के घर आए। मिरीकर ने शामा का काकासाहेब दीक्षित उनके साथ रात १० बजेवाली गाड़ी से कोपरगाँव को रवाना हो जाएँ। इस निश्चय के बाद ही एक विचित्र घटना घटी। बालासाहेब मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र पर से परदा हटाकर काकासाहेब दीक्षित को उनके दर्शन कराये तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरडी जानेवाला हूँ, वे ही इस चित्र रूप में मेरे स्वागत हेतु यहाँ विराजमान हैं। तब अत्यन्त द्रवित होकर वे बाबा की वन्दना करने लगे। यह चित्र मेघा का था और काँच लगाने के लिये मिरीकर के पास आया था। दूसरा काँच लगवा कर उसे काकासाहेब दीक्षित तथा शामा के हाथ

वापस शिरडी भेजने का प्रबन्ध किया गया। दस बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया। जब गाड़ी स्टेशन पर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। उसमें बैठने को तिलमात्र भी स्थान न था। भाग्यवश गार्डसाहेब काकासाहेब दीक्षित की पहचान के निकल आए और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया। इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगाँव स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर ही शिरडी को जानेवाले नानासाहेब चाँदोरकर को देखकर उनके हर्ष का पारावार न रहा। शिरडी पहुँचकर उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किये। तब बाबा कहने लगे कि, ''मैं बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेज दिया था।'' इसके पश्चात् काकासाहेब ने अनेक वर्ष बाबा की सानिध्य में व्यतीत किये। उन्होंने शिरडी में एक वाड़ा (दीक्षित वाड़ा) बनवाया, जो उनका प्रायः स्थायी घर हो गया। उन्हें बाबा से जो अनुभव प्राप्त हुए, वे सब स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्री साईलीला पत्रिका के विशेषांक (काकासाहेब दीक्षित) भाग १२ के अंक ६-९ तक देखें। उनके केवल एक दो अनुभव लिखकर हम यह कथा समाप्त करेंगे। बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया था कि अन्त समय आने पर बाबा उन्हें विमान में ले जाएँगे, जो सत्य निकला। तारीख ५ जुलाई, सन् १९२६ को वे हेमाडपंत के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे। दोनों में साईबाबा के विषय में बातें हो रही थीं। वे श्री साईबाबा के ध्यान में अधिक तल्लीन हो गए, तभी अचानक उनकी गर्दन हेमाडपंत के कन्धे से जा लगी और उन्होंने बिना किसी कष्ट तथा घबराहट के अपनी अंतिम श्वास छोड़ दी।

श्री टेंबे स्वामी

अब हम द्वितीय कथा पर आते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि सन्त परस्पर एक-दूसरे को किस प्रकार भ्रातृवत् प्रेम किया करते हैं। एक बार श्री

वासुदेवानन्द सरस्वती, जो श्री टेंबे स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने गोदावरी के तीर पर राजमहेंन्द्री में आकर डेरा डाला। वे भगवान् दत्तात्रेय के कर्मकांडी, ज्ञानी तथा योगी भक्त थे। नांदेड (निजाम स्टेट) के एक वकील अपने मित्रों के साथ उनसे भेंट करने आए और वार्तालाप करते-करते श्री साईबाबा की चर्चा भी निकल पड़ी। बाबा का नाम सुनकर स्वामीजी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया और पुंडलीकराव (वकील) को एक श्रीफल देकर उन्होंने कहा कि, तुम जाकर मेरे भ्राता श्री साई को प्रणाम कर कहना कि मुझे न बिसरें तथा सदैव मुझ पर कृपादृष्टि रखें। उन्होंने यह भी बतलाया कि सामन्यतः एक स्वामी दूसरे को प्रणाम नहीं करता, परन्तु यहाँ विशेष रूप से ऐसा किया गया है। श्री पुंडलीकराव ने श्रीफल लेकर कहा कि, ''मै इसे बाबा को दे दूँगा तथा आपका सन्देश भी कह दूँगा।''

एक मास के पश्चात् ही पुंडलीकराव अन्य मित्रों सहित श्रीफल लेकर शिरडी को रवाना हुए। जब वे मनमाड पहुँचे तो प्यास लगने के कारण एक नाले पर पानी पीने गए। खाली पेट पानी न पीना चाहिए, यह सोचकर उन्होंने कुछ चिवड़ा खाने को निकाला, जो खाने में कुछ अधिक तीखा-सा प्रतीत हुआ। उसका तीखापन कम करने के लिये किसी ने नारियल फोड़ कर उसमें खोपरा मिला दिया और इस तरह उन लोगों ने चिवड़ा स्वादिष्ट बनाकर खाय। अभाग्यवश जो नारियल उनके हाथ से फूटा, वह वही था, जो स्वामीजी ने पुंडलीकराव को भेंट में देने को दिया था। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें नारियल की स्मृति हो आई। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि भेंट स्वरूप दिये जाने वाला नारियल ही फोड़ दिया गया है। डरते-डरते और काँपते हुए वे शिरडी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने बाबा के दर्शन किये। बाबा को तो यहाँ नारियल के सम्बन्ध में स्वामी से बेतार का तार प्राप्त हो चुका था। इसीलिये उन्होंने पहले ही पुंडलीकराव से प्रश्न किया कि, ''मेरे भाई की भेजी हुई वस्तु लाओ।'' उन्होंने बाबा के चरण पकड़ कर अपना अपराध स्वीकार करते हुये

अपनी चूक के लिये उनसे क्षमा याचना की । वे उसके बदले में दूसरा नारियल देने को तैयार थे, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि, ''उस नारियल का मूल्य इस नारियल से कई गुना अधिक था और उसकी पूर्ति इस साधारण नारियल से नहीं हो सकती ।'' फिर वे बोले कि, ''अब तुम कुछ चिन्ता न करो । मेरी ही इच्छा से वह नारियल तुम्हें दिया गया तथा मार्ग में फोड़ा गया है । तुम स्वयं में कर्तापन की भावना क्यों लाते हो ?[१] कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ कर्म करते समय अपने को कर्ता न जानकर अभिमान तथा अहंकार से परे होकर ही कार्य करो, तभी तुम्हारी शीघ्रता से प्रगति होगी ।''[२] कितना सुन्दर था उनका यह आध्यात्मिक उपदेश ।

श्री बालाराम धुरन्धर (१८७८-१९१५)

सान्ताक्रूज, बम्बई के श्री बालाराम धुरन्धर प्रभु जाति के एक सज्जन थे । वे बम्बई के उच्च न्यायालय में एडवोकेट थे तथा किसी समय शासकीय विधि विद्यालय (Govt.of Law School) बम्बई के प्राचार्य भी थे । उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सात्विक तथा धार्मिक था । श्री बालाराम ने अपनी जाति की योग्य सेवा की और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई । इसके पश्चात् उनका ध्यान आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों पर गया । उन्होंने ध्यानपूर्वक गीता, उसकी टीका ज्ञानेश्वरी तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया । वे पंढरपुर के भगवान विठोबा के परम भक्त थे । सन् १९१२ में उन्हें श्री साईबाबा के दर्शनों का लाभ हुआ । छः मास पूर्व उनके भाई बाबुलजी और वामनराव ने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये थे और उन्होंने घर लौटकर अपने मधुर अनुभव भी श्री बालाराम व परिवार के अन्य लोगों

---

१. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।। गीता ३ ।। २७ ।।

२. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म साचार ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।। गीता ३ ।। १९ ।।

को सुनाये। तब सब लोगों ने शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। यहाँ शिरडी में उनके पहुँचने के पूर्व ही बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि ''आज मेरे बहुत से दरबारीगण आ रहे हैं।'' अन्य लोगों द्वारा बाबा के उपरोक्त वचन सुनकर धुरन्धर परिवार को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में किसी को भी इसकी पहले से सूचना न दी थी। सभी ने आकर बाबाको प्रणाम किया और बैठकर वार्तालाप करने लगे। बाबा ने अन्य लोगों को बतलाया कि, ''ये मेरे दरबारीगण हैं, जिनके सम्बन्ध में मैंने तुमसे पहले कहा था।'' फिर धुरन्धर भ्राताओं से बोले कि, ''मेरे और तुम्हारा परिचय ६० जन्म पुराना है।'' सभी नम्र और सभ्य थे, इसलिये वे सब हाथ जोड़े हुए बैठे-बैठे बाबा की ओर निहारते रहे। उनमें सब प्रकार के सात्विक भाव जैसे अश्रुपात, रोमांच तथा कण्ठावरोध आदि जागृत होने लगे और सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे सब अपने निवासस्थान को गए, और भोजन तथा थोड़ा विश्राम लेकर पुनः मस्जिद में आकर बाबा के पाँव दबाने लगे। इस समय बाबा चिलम पी रहे थे। उन्होंने बालाराम को भी चिलम देकर एक फूँक लगाने का आग्रह किया। यद्यपि अभी तक उन्होंने कभी धूम्रपान नहीं किया था, फिर भी चिलम हाथ में लेकर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक फूँक लगाई और आदरपूर्वक बाबा को लौटा दी। बालाराम के लिये तो यह अनमोल घड़ी थी। वे ६ वर्षों से श्वास-रोग से पीड़ित थे, पर चिलम पीते ही वे रोगमुक्त हो गए। उन्हें फिर भी कभी यह कष्ट न हुआ। ६ वर्षों के पश्चात् उन्हें एक दिन पुनः श्वास रोग का दौरा आया। यह वही महापुण्यशाली दिन था, जब कि बाबा ने महासमाधि ली। वे गुरूवार के दिन शिरडी आए थे। भाग्यवश उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी उत्सव देखने का अवसर मिल गया। आरती के समय बालाराम को चावड़ी में बाबा का मुखमंडल भगवान् पांडुरंग सरीखा दिखाई पड़ा। दूसरे दिन काकड़ आरती के समय उन्हें बाबा के मुखमंडल की प्रभा पुनः अपने परम इष्ट भगवान् पांडुरंग

के सदृश ही दिखाई दी ।

श्री बालाराम धुरन्धर ने मराठी में महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम का जीवनचरित्र लिखा है परन्तु खेद है कि पुस्तक प्रकाशित होने तक वे जीवित न रह सके । उनके बन्धुओं ने इस पुस्तक को सन् १९२८ मे प्रकाशित कराया । इस पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ ६ पर उनकी जीवनी से सम्बन्धित एक परिच्छेद में उनकी शिरडी यात्रा का पूरा वर्णन है ।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

अध्याय-५१

उपसंहार ः
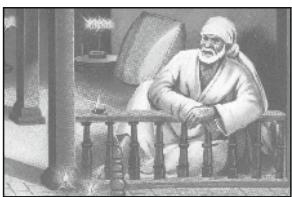
अध्याय - ५१ पूर्ण हो चुका है और अब अन्तिम अध्याय (मूल ग्रन्थ का ५२ वाँ अध्याय) लिखा जा रहा है । इसमें हेमाडपंत ने अन्तिम समालोचना की है और उसी प्रकार सूची लिखने का वचन दिया है, जिस प्रकार कि अन्य मराठी धार्मिक काव्यग्रन्थों में विषय की सूची अन्त में लिखी जाती है । अभाग्यवश हेमाडपंत के कागजपत्रों की छानबीन करने पर भी वह सूची प्राप्त न हो सकी । तब बाबा के एक योग्य तथा धार्मिक भक्त ठाणे के अवकाश प्राप्त मामलतदार श्री बी. व्ही. देव ने उसे रचकर प्रस्तुत किया । पुस्तक के प्रारम्भ में ही विषयसूची देने तथा प्रत्येक अध्याय में विषय का संकेत शीर्षक स्वरूप लिखना ही आधुनिक प्रथा है, इसलिये यहाँ अनुक्रमणिका नहीं दी जा रही है । अतः इस अध्याय को उपसंहार समझना ही उपयुक्त होगा । अभाग्यवश हेमाडपंत उस समय तक जीवित न रहे कि वे अपने लिखे हुए इस अध्याय की प्रति में संशोधन करके उसे छपने योग्य बनाते ।

सद्‌गुरु श्री साई की महानता

''हे साई, मैं आपकी चरण वन्दना कर आपसे 'शरण' याचना करता हूँ, क्योंकि आप ही इस अखिल विश्व के एकमात्र आधार हैं ।' यदि ऐसी ही धारणा लेकर हम उनका भजन-पूजन करें तो यह निश्चित है कि हमारी समस्त इच्छायें शीघ्र पूर्ण होंगी और हमें अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी । आज निन्दित विचारों के तट पर माया-मोह के झंझावात से धैर्य

रूपी समुद्र में तूफान उठ खड़ा हुआ है, जिसमें क्रोध और घृणा रूपी घड़ियाल तैरते हें, और अहंभाव एवं सन्देह रूपी नाना संकल्प-विकल्पों के भँवरो में निन्दा, घृणा और ईर्ष्यारूपी अगणित मछलियाँ विहार कर रही हैं। यद्यपि यह समुद्र इतना भयानक है तो भी हमारे सद्‌गुरु साई महाराज उसमें अगस्त्य स्वरूप ही हैं । इसलिये भक्तों को किचिंत्मान भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सद्‌गुरु तो जहाज हैं और वे हमें कुशलतापूर्वक इस भयानक भव-सागर से पार उतार देंगे।

प्रार्थना

श्री सच्चिदानंद साई महाराज को साष्टांग नमस्कार करके उनके चरण पकड़ कर हम सब भक्तों के कल्याणार्थ उनसे प्रार्थना करते हैं कि, ''हे साई ! हमारे मन की चंचलता और वासनाओं को दूर करो । हे प्रभु ! तुम्हारे श्री चरणों के अतिरिक्त हममें किसी अन्य वस्तु की लालसा न रहे। तुम्हारा यह चरित्र घर-घर पहुँचे और इसका नित्य पठन-पाठन हो और जो भक्त इसका प्रेमपूर्वक अध्ययन करें, उनके समस्त संकट दूर हों।''

फलश्रुति (अध्ययन का पुरस्कार)

अब इस पुस्तक के अध्ययन से प्राप्त होने वाले के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखूँगा। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से मनोवांछित फल की प्राप्ति होगी। पवित्र गोदावरी नदी में स्नान कर, शिरडी के समाधि मन्दिर में श्री साईबाबा की समाधि के दर्शन कर लेने के पश्चात् इस ग्रन्थ का पठन-पाठन या श्रवण प्रारम्भ करोगे तो तुम्हारी त्रिविध संकट भी दूर हो जाएँगे। समय-समय पर श्री साईबाबा की कथा-वार्ता करते रहने से तुम्हें आध्यात्मिक जगत् के प्रति अभिरूचि हो जाएगी और यदि तुम इस प्रकार नियम तथा प्रेमपूर्वक अभ्यास करते रहे तो तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो जाएँगे । **यदि सचमुच ही तुम आवागमन से मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें साई कथाओं का नित्य पठन-पाठन,**

स्मरण और उनके चरणों में प्रगाढ़ प्रीति रखनी चाहिए ।[१] **साई कथारूपी समुद्र मंथन कर उसमें से प्राप्त रत्नों को दूसरों को वितरण करो,** जिससे तुम्हें नित्य नूतन आनन्द का अनुभव होगा और श्रोतागण अधःपतन से बच जाएँगे । यदि भक्तगण अनन्य भाव से उनकी शरण आएँ तो उनका 'मैं' नष्ट होकर बाबा से अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी, जैसे कि नदी समुद्र में मिल जाती है । यदि तुम तीन अवस्थाओं (अर्थात्-जागृति, स्वप्न और निद्रा) में से किसी एक में भी साईचिन्तन में लीन हो जाओ तो तुम्हारा सांसारिक चक्र से छुटकारा हो जाएगा। **स्नान कर प्रेम और श्रद्धायुक्त होकर जो इस ग्रन्थ का एक सप्ताह में पठन समाप्त करेंगे उनके सारे कष्ट दूर हो जाएँगे**[२] **या जो इसका नित्य पठन या श्रवण करेंगे, उन्हें भयों से तुरन्त छुटकारा मिल जाएगा ।** इसके अध्ययन से हर एक को अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुसार फल मिलेगा । परन्तु इन दोनों के अभाव में किसी भी फल की प्राप्ति होना संभव नहीं है । यदि तुम इस ग्रन्थ का आदरपूर्वक पठन करोगे तो श्री साई प्रसन्न होकर तुम्हें अज्ञान और दरिद्रता के पाश से मुक्त कर ज्ञान, धन और समृद्धि प्रदान करेंगे । यदि एकाग्रचित्त होकर नित्य एक अध्याय ही पढ़ोगे तो तुम्हें अपरिमित सुख की प्राप्ति होगी । इस ग्रन्थ को अपने घर पर गुरु-पूर्णिमा, गोकुल अष्टमी, रामनवमी, विजयादशमी और दीपावली के दिन अवश्य पढ़ना चाहिए । यदि ध्यानपूर्वक तुम केवल इसी ग्रन्थ का अध्ययन करते रहोगे तो तुम्हें सुख और सन्तोष प्राप्त होगा और सदैव श्री साई चरणारविंदों का स्मरण बना रहेगा और इस प्रकार तुम भवसागर के सहज ही पार हो जाओगे । इसके अध्ययन से रोगियों को स्वास्थ, निर्धनों को धन,

---

१. महात्मानस्तु मां पार्थ प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।। गीता ९ ।। १३ ।।

२. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च भूतादिमव्ययम् ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।। गीता ९ ।। १४ ।।

दु:खित और पीड़ितों को शांति मिलेगी तथा मन के समस्त विकार दूर हो मानसिक शान्ति प्राप्त होगी।

मेरे प्रिय भक्त और श्रोतागण ! आपको प्रणाम करते हुए मेरा आपसे एक विशेष निवेदन है कि जिसकी कथा आपने इतने दिनों और महिनों से सुनी है, उनके कलिमलहारी और मनोहर चरणों को कभी विस्मृत न होने दें। जिस उत्साह, श्रद्धा और लगन के साथ आप इन कथाओं का पठन या श्रवण करेंगे, श्री साईबाबा वैसे ही सेवा करने की बुद्धी हमें प्रदान करेंगे। लेखक और पाठक इस कार्य में परस्पर सहयोग देकर सुखी होएँ।

प्रसाद-याचना

अन्त में हम इस पुस्तक को समाप्त करते हुए सर्वशक्तिमान परमात्मा से निम्नलिखित कृपा या प्रसादयाचना करते हैं -

''हे ईश्वर ! पाठकों और भक्तों को श्री साई-चरणों में पूर्ण और अनन्य भक्ति दो। श्री साई का मनोहर स्वरूप ही उनकी आँखो में सदा बसा रहे और वे समस्त प्राणियों में देवाधिदेव साई भगवान् का ही दर्शन करें। एवमस्तु।''

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायण : सप्तम विश्राम

।। ॐ श्री साई यश:काय शिरडीवासिने नम: ।।

समाप्त

आरती

आरती साई बाबा । सौख्यदातार जीवा । चरणरजतली द्यावा दासा विसावा, भक्तां विसावा । आरती ०।। जाळुनिया अनंग । स्वस्वरूपीं राहे दंग मुमुक्षु जना दावी । जिन डोळा श्रीरंग । आरती १।। जया मनीं जैसा भाव । तया तैसा अनुभव । दाविसी दयाघना ऐसी तुझी ही माव । आरती २।। तुमचे नाम घ्यातां । हरे संसृति व्यथा । अगाध तव करणीं। मार्ग दाविसी अनाथा, दाविसी अनाथा । आरती ३।। कलियुगीं अवतार । सगुण ब्रह्म साचार । अवतीर्ण झालासी । स्वामी दत्त दिगंबर । दत्त दिगंबर । आरती ४।। आठा दिवसां गुरुवारीं । भक्त करीती वारी । प्रभुपद पहावया । भव भय निवारी । भय निवारी । आरती ५ ।। माझा निज द्रव्य ठेवा । तव चरणरज सेवा । मागणें हेचि आतां । तुम्हां देवाधिदेवा, देवाधिदेवा । आरती ६ ।। इच्छित दीन चातक । निर्मल तोय निजसुख । पाजावें माधवा या । सांभाळ आपुली भाक, आपुली भाक । आरती साईबाबा । सौख्यदातार जीवा ।। ७ ।।

भावार्थ

हे जीवों को सुख देने वाले साईबाबा । हम तुम्हारी आरती करते हैं । अपने दास और भक्तों को अपने चरणों की शीतल छाया में स्थान दो । प्रदीप्त भाव से तुम सदा आत्मलीन रहते हो और मुमुक्ष जनों को ईश्वर की प्राप्ति करा देते हो । जैसा जिसका भाव होता है, उसे तुम वैसा ही अनुभव देते हो । हे दयालु ! तुम्हारा कुछ ऐसा ही वैशिष्ट्य हैं । तुम्हारें श्रीचरणों का ध्यानमात्र करने से भक्त इस संसार के भय से मुक्त हो जाता है । तुम सदैव दीन और अनाथों की रक्षा करते रहे हो । तुम्हारी कार्यशैली अपरंपार है । हे दत्त ! इस कलियुग में तुम सगुण ब्रह्म के रूप में अवतीर्ण हुए हो । इसीलिए जो भक्त नित्य गुरूवार को तुम्हारें पास आवें, उन्हें सांसारिक भय से मुक्त करके भगवद्-दर्शन योग्य बनाओ । हे देवाधिदेव ! तुम्हारें चरणकमल ही मेरी सम्पत्ति हैं । जिस प्रकार मेघ स्वाति नक्षत्र की बूँद से चातक पक्षी की प्यास बुझा देता है, उसी प्रकार माधव (यहाँ अपना नाम लगायें) की भी प्यास बुझाकर अपने वचनों का पालन करो ।

।। ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः ।।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः